I.S.S.N. 0975-6531

यू.जी.सी. केयरलिस्ट में सम्मिलित

वैचारिकी

भारतीय संस्कृति-साहित्य की शोध द्वैमासिकी

मई-जून 2025 * भाग 41 - अंक 3

शेखावाटी की हवेलियाँ

भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता

• वैचारिकी • मई-जून 2025 भाग 41 अंक 3

भारत के अद्‌भुत स्थापत्य

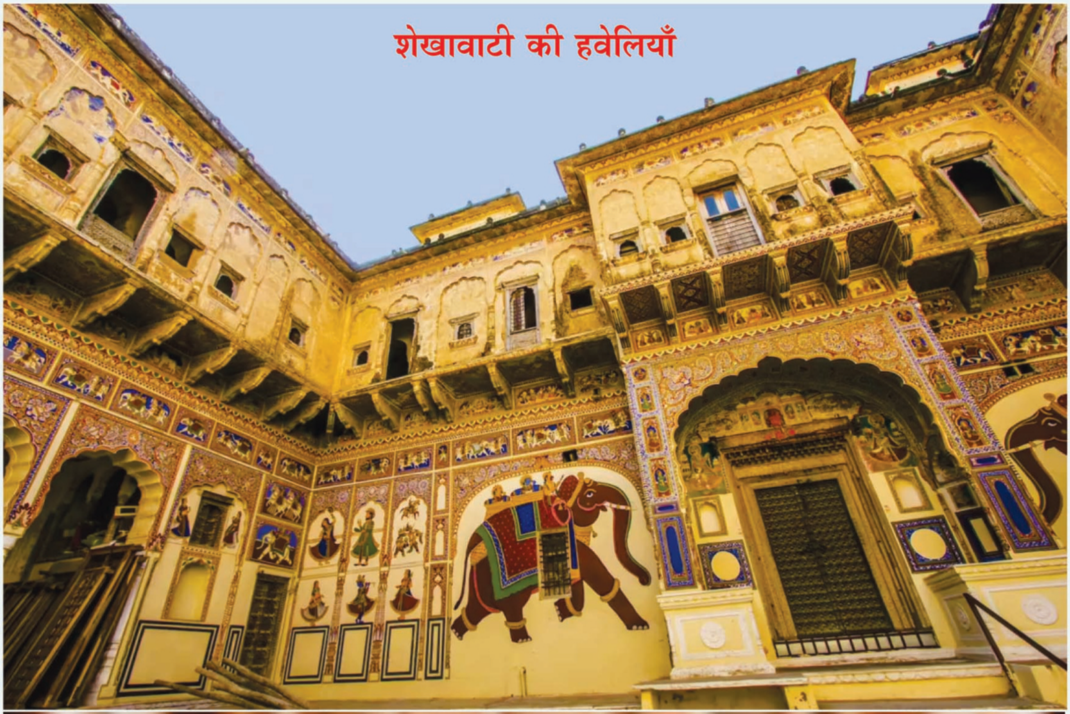

शेखावाटी की हवेलियाँ

वैचारिकी

भारतीय विद्या मन्दिर की द्वैमासिक शोध पत्रिका

अध्यक्ष व प्रधान-सम्पादक

डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा

सम्पादक

डॉ. बाबूलाल शर्मा

प्रबंध-सम्पादक

शंकरलाल सोमानी

I.S.S.N. 0975-6531

वैचारिकी

वर्ष 41 : अंक 3

(धर्म-दर्शन-विज्ञान, साहित्य-लोकसाहित्य, इतिहास-पुरातत्व, कला-लोककला)

यू.जी.सी. केयरलिस्ट में सम्मिलित

मई - जून 2025 ● बैशाख शुक्ल 04, आषाढ़ शुक्ल 5 वि. सं. 2082 ● रु. 50

अनुक्रम

- **अध्यक्षीय** 03
- **सम्पादकीय** (धर्म निरपेक्षता है भारत का एक सांस्कृतिक मूल्य) 05
- **भारतेंदु युगीन प्रयोगधर्मी रचनाकार : राधाचरण गोस्वामी** – विदुषी आमेटा 07
- **वसुधैव कुटम्बकम् के स्वप्नद्रष्टा रवीन्द्रनाथ टैगोर** – डॉ. हरिकिशोर प्र. सिंह 14
- **अपने परिवेश के प्रति सचेत है आज की गजल** – अशोक 'अंजुम' 20
- **नाटक स्कंदगुप्त पर छायावाद का प्रभाव** – डॉ. परम प्रकाश राय 23
- **कश्मीरी साहित्य के सूत्रपात में ललद्यद का अभिदान** – छविन्दर कुमार 26
- **प्रवासी हिन्दी कहानियों में बलात्कार से ध्वस्त स्त्री** – श्रीना एस. 30
- **हिन्दी के चयनित उपन्यासों में वृद्ध-विमर्श** – श्वेता शर्मा 36
- **हिन्दी दलित साहित्य : दृष्टि और अपेक्षा** – मनोज कुमार दास 42
- **स्वातंत्र्योत्तर स्वप्न भंग 'निन्यानबे' में : एक विश्लेषण** – डॉ. बिन्दु एम.जी. 45
- **यजुर्वेदीय संख्यायें : आधुनिक गणित के परिप्रेक्ष्य में** – आयुष नंदन 48
- **विष्णु पुराण में वर्णित अतिथि सत्कार** – संतोष कुमार पांडेय 51
- **भारत की पहली शिक्षिका सावित्रीबाई फुले** – बिंदु आर. 56
- **विभाजन की सीमारेखा : नाटक ड्राइंग द लाइन** – डॉ. ऐश्वर्या झा 59
- **संस्कृति और धर्म** – डॉ. आशीष 64
- **योगविद्या : कार्पल टनल सिंड्रोम प्रबंधन के संदर्भ में** – मयंक उनियाल 67
- **मीडिया ट्रायल : निष्पक्षता, उत्तरदायित्व एवं परिणाम** – डॉ. श्वेता 72
- **मृत्यु का पूर्वाभास** – डॉ. आनन्द शर्मा 78
- **महाश्वेता रात्रि में साहित्य-वीणा** – डॉ. श्रीराम परिहार 83
- **पाठक मंच** 90

▫ गीता की प्रासंगिकता ▫ हिन्दू और हिन्दी का प्रचलन ▫ विश्वशान्ति के प्रेरक स्वामी निश्चलानन्दजी।

- प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक-प्रकाशक की अनुमति आवश्यक।
- प्रकाशित लेखादि में अभिव्यक्त विचारों से प्रकाशक-सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
- समस्त विवादों के लिए न्यायालय क्षेत्र कोलकाता होगा।

योगः कर्मसु कौशलम्

कार्यालय

भारतीय विद्या मंदिर
12/1, नेली सेनगुप्ता सरणी
कोलकाता-700087
दूरभाष : 033-71001614
मो. : 09830559364
ई-मेल :
bvm.vaichariki@gmail.com
वेबसाइट :
www.bharatiyavidyamandir.com

सदस्यता शुल्क

वार्षिक 450/- रुपये
द्वैवार्षिक 900/- रुपये

सदस्यता शुल्क भेजने हेतु बैंक विवरण :-

A/c. Name :-
Bharatiya Vidya Mandir
Bank Name :-
State Bank of India
Current A/c. No.:-
32030320176
Branch :-
New Market, Kolkata
IFSC Code No. :-
SBIN0004662

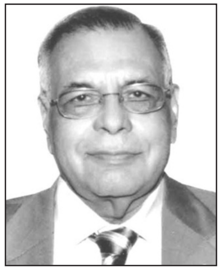

अध्यक्षीय

पहलगाम आतंकी हमले में पाकिस्तान-समर्थित आतंकवादियों ने धर्म पूछकर निरपराध हिंदू पर्यटकों की कायराना हत्या की। फलस्वरूप पाकिस्तान को सबक सिखाने के लिए भारत सरकार ने ऑपरेशन सिंदूर के तहत कड़ी कार्रवाई की। इस कार्रवाई में पाकिस्तान और पाकिस्तान के कब्जे वाले कश्मीर के उन आतंकी केन्द्रों को निशाना बनाया गया, जहां से भारत पर आतंकी हमलों की योजना बनाई गई थी और उन्हें अंजाम दिया गया था। हमारी वायु सेना ने आतंकी अड्डों पर सटीक हवाई हमले कर उन्हें नष्ट कर दिया। अगले दिन पाकिस्तान ने सैकड़ों ड्रोन और मिसाइल से भारत पर आक्रमण किया जिसे हमने न केवल शत-प्रतिशत विफल कर दिया, बल्कि पाकिस्तान के हवाई अड्डों और सैनिक अड्डों पर आक्रमण कर भारी क्षति पहुंचाई और पाकिस्तानी वायुसेना को पंगु कर दिया।

पाकिस्तान की भारतविरोधी गतिविधियों के मद्देनज़र भारत ने सिंधु और उसकी सहायक नदियों के जल को लेकर भारत-पाकिस्तान के बीच हुई सिंधु जल संधि को भी अनिश्चित काल के लिए निलम्बित करने की घोषणा की। भारत के प्रधानमंत्री मोदी जी ने स्पष्ट रूप से कहा कि 'खून और पानी एक साथ नहीं बह सकते' और यह भी कि हम 'परमाणु धमकी से डरेंगे नहीं। पाकिस्तान-प्रेरित कोई भी आतंकवादी कार्रवाई होने पर उसे युद्ध की कार्रवाई समझा जायेगा और भारत उसका उचित प्रत्युत्तर देगा।'

भारत की सैन्य कार्रवाई से पाकिस्तान को जो क्षति हुई है उसे सैटेलाइट से लिए गये फोटोग्राफ्स आदि के माध्यम से तथा भारतीय जल-थल और नभ सेना के वरिष्ठ अधिकारियों ने देश और दुनिया को वस्तुस्थिति से अवगत करवाया है। पकिस्तान में चूंकि मीडिया पर पूरी तरह प्रतिबंध है इसलिए वहां की जनता को पाकिस्तान की भारी क्षति का कोई अनुमान नहीं है। इसी बात का फायदा उठाकर पाकिस्तानी सेना और सरकार विजय का झूठा दावा कर रहे हैं। जबकि सारी दुनिया के सैन्य विशेषज्ञ इस बात से अवगत हैं कि ऑपरेशन सिंदूर से पाकिस्तान को भारी क्षति हुई है। पाकिस्तानी आवाम भी धीरे-धीरे इस सच से रू-ब-रू हो ही जायेगा।

पाकिस्तान की दहशतगर्दी को बढ़ावा देने की मानसिकता समझ में नहीं आती। गजवा-ए-हिंद करने का उसका दुराग्रह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है। वहां के राजनेता, सेना प्रमुख तथा धर्मगुरु अन्य धर्मावलम्बियों को मिटाने के दुराग्रह से ग्रसित हैं। एक देश के रूप में पाकिस्तान बरबाद होता जा रहा है लेकिन हमें परेशान करने को तत्पर है। देश के अंदर भी कट्टरपंथी मुसलमानों यथा वहाबियों का एक हिस्सा अन्य धर्मियों के प्रति वैर-भाव रखता दिखाई देता है। पाकिस्तान कट्टरपंथियों की इन हरकतों को अपना सहयोग और समर्थन देकर भारत के लिए मुश्किल बढ़ाने

के लिए कुख्यात है। दुर्भाग्य की बात यह भी है कि हमारे ही देश के कुछ राजनेता तात्कालिक राजनैतिक लाभ की लालसा में ऐसे तत्वों के समर्थन में देशहित की ओर पीठ फेर लेते हैं। ऐसे लोग हमारी सेना के शौर्य का भी अपमान करते हैं। किसी खास राजनैतिक दल या सरकार का विरोध करते-करते ये नेता राष्ट्र को क्षति पहुंचाने का जघन्य काम करने लगते हैं। जबकि समझदार और देशभक्त राजनेता, चाहे वे किसी भी दल या खेमे के क्यों न हों, पूरी दुनिया को सच्चाई से अवगत करवाने के लिए कटिबद्ध हैं। इस समय भारतवर्ष के सांसदों के सात दल विभिन्न देशों में जाकर पाकिस्तान की कायराना आतंकवादी हरकत और भारत के नीतिसम्मत दृढ़ प्रत्युत्तर से दुनिया के सभी देशों को अवगत करवा रहे हैं। इन दलों में विभिन्न राजनैतिक दलों के 57 संसद सदस्य शामिल हैं। इन सांसदों में विशेष रूप से श्री शशि थरूर और श्री असदुद्दीन ओवैसी जैसे विपक्षी सांसदों के हस्तक्षेप विशेष प्रशंसायोग्य रहे हैं। देश की भावनाओं को अंतरराष्ट्रीय पटल पर पूरी दम-खम से रखने वाले नेताओं में कई गणमान्य मुस्लिम नेता भी शामिल रहे हैं। हम उनके इस कार्य की हृदय-तल से सराहना करते हैं।

देश के पूर्व में बांग्लादेश में भी राजनैतिक नेतृत्व में परिवर्तन हुआ है। जो बांग्लादेश हमसे मैत्री-भाव रखता था, वह हमें अपना शत्रु समझने लगा है। चीन के साथ मिलकर वह हमारे देश के पूर्वोत्तर भाग को तोड़ने की चीन की भाषा बोलने लगा है। वह पूर्वोत्तर के राज्यों के साथ बंगाल, बिहार और उड़ीसा को मिलाकर बृहत्तर बांग्लादेश की बात करने लगा है। भारत विश्व में चतुर्थ आर्थिक शक्ति से तीसरी सबसे बड़ी आर्थिक शक्ति बनने जा रहा है। सैन्य शक्ति में तो भारत तीसरे स्थान पर है ही। भारतवर्ष की बढ़ती आर्थिक और सामरिक शक्ति चीन आदि देशों को बर्दाश्त नहीं हो रही है। वे किसी भी तरह भारत को क्षति पहुंचाने और उसकी प्रगति को बाधित करने के प्रयास में लगे रहते हैं। आश्चर्य की बात यह भी है कि भारत से आठ गुना बड़ी आर्थिक शक्ति होने के बावजूद ऐसा लगता है कि अमरीका भी भारत की इस प्रगति को सहन नहीं कर पा रहा है। भारत के उत्कर्ष के समय में हमारे आंतरिक और बाह्य शत्रु हम पर और अधिक हमलावर होंगे। परिस्थितियां और कठिन होंगी लेकिन भारत के पास वह क्षमता है कि वह इन परिस्थितियों का सामना कर सके। इस समय पाशविक शक्तियां एकत्र होकर हमारी क्षति करने को उन्मुख हैं। हमें इन शक्तियों का सामना धर्मबोध और कर्तव्यबोध 'सेंस ऑफ ड्यूटी' से करना है। चूंकि धर्मबोध मानवीय मूल्यों पर आधारित होता है, अतः परिवार और समाज में इन मूल्यों का ज्ञान आवश्यक है और इन मूल्यों के आधार पर समष्टिगत एवं व्यक्तिगत कर्तव्यबोध के प्रति सजग रहना आवश्यक है। हमारी संस्कृति में उदारता, वैचारिक स्वातंत्र्य और खुलापन खूब रहा है। धर्मबोध और कर्तव्यबोध के सम्बंध में विभिन्न मत रहे हैं और आज भी हैं। लेकिन सुखद बात यह है कि इस वैविध्य के बावजूद हमारा गंतव्य सदा एक रहा है। आज भी गंतव्य एक है और इसे हम एकजुट होकर सहज रूप से प्राप्त करेंगे यह बात समाज और परिवार में स्पष्ट होनी चाहिए। और यह भी कि इस समय हमारा राष्ट्रधर्म और समाजधर्म क्या है? इसके लिए धर्म, नीति, व्यवहार और कर्तव्य की शिक्षा और ज्ञान आवश्यक है। भारतीय विद्या मंदिर भी इस यज्ञ में अपनी छोटी-सी आहुति देने के प्रति प्रतिबद्ध है।

भारत इस समय दुनिया की सबसे तेज बढ़ती अर्थव्यवस्था है। हमारा देश साढ़े छह प्रतिशत की विकास दर के साथ आगे बढ़ रहा है। कुचक्रों और कठिन परिस्थितियों का सामना हमें साहस और एकजुटता के साथ करना है। इसलिए देश को, समाज को, हम सबको आत्मरक्षा और विकास हेतु एकजुट होकर रहने की आवश्यकता है। इसलिए हम सबको समय की आवश्यकताओं के प्रति जागरूक रहना चाहिए और अपने कर्तव्य का सम्यक रूप से पालन करते हुए राष्ट्रहित के लिए अपने को समर्पित करना चाहिए। सुकवि गिरिजा कुमार माथुर की इन पंक्तियों के साथ मैं अपनी बात समाप्त करूंगा : ऊंची हुई मशाल हमारी/ आगे कठिन डगर है/ शत्रु हट गया, लेकिन उसकी/ छायाओं का डर है ..... / किंतु आ रही नई जिंदगी/ यह विश्वास अमर है / जनगंगा में ज्वार/ लहर तुम प्रवहमान रहना/ पहरूए, सावधान रहना!

– डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा

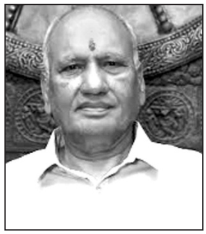

सम्पादकीय

धर्म निरपेक्षता है भारत का एक सांस्कृतिक मूल्य

2024 के स्वतंत्रता दिवस पर लाल किले की प्राचीर से दिए गए संबोधन में प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी ने देश को धर्म व ऊंच-नीच के आधार पर बांटने वाले कानूनों को खत्म करने की वकालत करते हुए सेकुलर सिविल कोड अर्थात धर्मनिरपेक्ष नागरिक संहिता लागू करने पर जोर दिया था। धर्मनिरपेक्ष नागरिक संहिता शब्द का इस्तेमाल करते हुए पीएम का यह कथन गौर करने लायक है कि देश का बड़ा वर्ग यह महसूस करता है कि वर्तमान नागरिक संहिता एक साम्प्रदायिक नागरिक संहिता है। सर्वोच्च न्यायालय ने भी समान नागरिक संहिता पर बार-बार चर्चा की है और ऐसे आदेश दिए हैं। राष्ट्र की एकता के लिए देश को धार्मिक आधार पर विभाजित करने वाले कानूनों को समाप्त किया जाना चाहिए। आधुनिक समाज में उनके लिए कोई जगह नहीं है। समय की मांग है कि एक धर्मनिरपेक्ष नागरिक संहिता (एससीसी) को अपनाए जाए और उस पर दृढ़तापूर्वक आचरण हो। धर्म निरपेक्षता शब्द यूरोप से, विशेष कर इंगलैंड से आयातित 'सेकुलिरिज्म' का अनुवाद है। इस शब्द का प्रवर्तन, यूरोप में इशाई धर्म-सत्ता अर्थात पोप द्वारा राज्यों के राजकाज में धर्माधारी हस्तक्षेप से तंग आकर किया गया था। स्पष्ट ही हमारे यहां भी इस शब्द की संविधान में प्रविष्टि इसी आशय से की गयी थी कि कोई भी धार्मिक सत्ता राजकाज या न्याय-व्यवस्था में हस्तक्षेप न करें। इस तरह धर्म निरपेक्षता का तातपर्य हुआ कि राज्य में किसी भी धर्म-समूह या सम्प्रदाय-पंथ के आंतरिक विधि-निषेधों से निरपेक्ष विधि-संहिता का पालन होगा जो प्राकृतिक या मानवीय आधारों या राज्य के हितों में होगी।

प्रधानमंत्री के संबोधन में 'धर्मनिरपेक्ष नागरिक संहिता' वाक्यांश इस्तेमाल होने के अपने निहितार्थ हैं। संभवतः समान नागरिक संहिता (यूसीसी) की जगह धर्मनिरपेक्ष नागरिक संहिता (एससीसी) का इस्तेमाल उन्होंने इसलिए किया ताकि संविधान में उल्लिखित 'धर्मनिरपेक्षता' शब्द और उसमें निहित दूरदर्शिता, भावनाओं एवं उसके औचित्य का शासन में निर्वाह हो सके। धर्मनिरपेक्ष नागरिक संहिता की वकालत संविधान सभा में डॉ. बीआर अंबेडकर द्वारा दिए गए तर्कों के बिल्कुल अनुरूप है। अनुच्छेद 44 (यूसीसी) को 23 नवंबर 1948 को संविधान सभा में डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने अनुच्छेद 35 के प्रारूप के रूप में पेश किया जो उसी दिन सर्वसम्मति से पारित भी कर दिया गया। इसमें कहा गया था कि जो राज्य, नागरिकों के लिए पूरे भारत में समान नागरिक संहिता सुनिश्चित करने का प्रयास करेगा। संविधान सभा में चर्चा के दौरान, हुसैन इमाम और कुछ अन्य सदस्यों द्वारा संशोधन पेश किए गए कि 'कोई भी समूह, वर्ग या समुदाय या लोग अपने व्यक्तिगत कानून को छोड़ने के लिए बाध्य नहीं होंगे, यदि उनके पास ऐसा कोई कानून है, और, बशर्ते कि किसी भी समुदाय का व्यक्तिगत कानून, जिसकी गारंटी कानून द्वारा दी गई है, समुदाय की पूर्व स्वीकृति के बिना नहीं बदला जाएगा। डॉ. बी. आर. अंबेडकर ने चर्चा के दौरान अपने जवाब में कहा- 'मुझे डर है कि मैं इस

अनुच्छेद में पेश किए गए संशोधनों को स्वीकार नहीं कर सकता। मेरे मित्र, हुसैन इमाम ने संशोधनों का समर्थन करते हुए पूछा कि क्या इतने विशाल देश के लिए एक समान कानून संहिता होना संभव और वांछनीय है। हमारे देश में मानवीय संबंधों के लगभग हर पहलू को कवर करने वाली एक समान कानून संहिता है। हमारे पास पूरे देश में एक समान और पूर्ण आपराधिक संहिता है, जो दंड संहिता और आपराधिक प्रक्रिया संहिता में निहित है। हमारे पास संपत्ति के हस्तांतरण का कानून है, जो संपत्ति से संबंधित है और जो पूरे देश में लागू है। फिर परक्राम्य लिखित अधिनियम (निगोशिएबल इंस्ट्रूमेंट्स एक्ट) है, और मैं ऐसे असंख्य अधिनियमों का हवाला दे सकता हूं जो साबित करेंगे कि इस देश में व्यावहारिक रूप से एक नागरिक संहिता है, जो समान है और पूरे देश में लागू है।' स्पष्ट ही हुसैन इमाम इत्यादि द्वारा पेश संशोधन मुस्लिम धर्म के सापेक्ष थे जो समान नागरिक संहिता की अवधारणा को खंडित करने वाले थे।

1985 में, भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश वाई.वी. चंद्रचूड़ ने 'शाह बानो मामले' में इसी तरह के विचार व्यक्त किए थे। यह मामला एक मुस्लिम तलाकशुदा शाह बानो बेगम के बारे में था। उसने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के तहत भरण-पोषण के लिए आवेदन किया था। उसके पक्ष में फैसला सुनाया गया था। पर पति मोहम्मद अहमद खान ने इस आधार पर सर्वोच्च न्यायालय में अपील की थी कि धारा 125 मुसलमानों पर लागू नहीं होनी चाहिए क्योंकि यह मुस्लिम पर्सनल लॉ के विपरीत है। सर्वोच्च न्यायालय ने इस तर्क को खारिज करते हुए कहा कि धारा 125 सभी व्यक्तियों पर लागू होती है, चाहे उनका धर्म या पर्सनल लॉ कुछ भी हो। यह भारतीय लोकतंत्र का दुर्भाग्य था कि उस पर तत्कालीन राजीव गांधी कांग्रेस सरकार ने माननीय न्यायालय एवं संविधान के धर्म निरपेक्ष चरित्र का निरादर करते हुए अपने प्रचंड बहुमत का दुरुपयोग कर संसद में संविधान संशोधन कर मुस्लिम तुष्टिकरण को थोप दिया। वर्ष 2003 में जॉन वल्लमट्टम बनाम भारत संघ मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने फिर कहा था कि 'यह खेद का विषय है कि संविधान के अनुच्छेद 44 (यूसीसी) को प्रभावी नहीं किया गया है।' सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार से पूछा कि क्या वे समान नागरिक संहिता लागू करने के लिए तैयार हैं। 'समान नागरिक संहिता का क्या हुआ? आप इसे क्यों नहीं बनाते और क्यों लागू नहीं करते?' चौधरी हैदर हुसैन और बॉम्बे हाई कोर्ट के पूर्व मुख्य न्यायाधीश एमसी छागला जैसे प्रख्यात मुस्लिम न्यायविदों ने भी अनुच्छेद 44 (यूसीसी) को मजबूती से बरकरार रखा था।

एससीसी को लागू करना डॉ. बी.आर. अंबेडकर के सपनों को पूरा करने के बराबर होगा क्योंकि उनके अनुसार कानूनों के संहिताकरण का धर्म अर्थात पंथों या संप्रदायों से कोई लेना-देना नहीं है। स्वतंत्रता के बाद कांग्रेस सरकारों ने संविधान संशोधनों के माध्यम से संविधान की आत्मा पर एक के बाद एक प्रहार कर उसे क्षत किया, संभवतः इसे ही अंदर खाते समझ कर ऐसे प्रहारों से 'संविधान की रक्षा' का प्रलाप राहुल गांधी कर रहे हों, परन्तु संविधान-रक्षा का कार्य तो वास्तविक रूप से 'धर्म निरपेक्ष नागरिक संहिता' से ही संभव है, नहीं तो शाहबानो केश जैसे मामले इसे आरक्षित करते रहेंगे। यह तत्थ है कि धर्म निरपेक्षता भारतीय संस्कृति के स्वभाव में हैं। इतिहास पर दृष्टिपात करें तो पूर्व मध्यकाल तक शासन-प्रशासन में यह स्वभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इस समय तक और इसके बाद भी किसी हिन्दू राजा-महाराजा ने दूसरे धर्म के लोगों को प्रताड़ित किया हो, इसका उदाहरण इतिहास में नहीं है, अपितु अभिलेखों में हिन्दू शासकों द्वारा मस्जिदों-मजारों-दरगाहों को भूमि-दान एवं अन्य अनुदानों के उल्लेख भरे पड़े हैं। मध्ययुगीन मुस्लिम सुल्तानों ने शासन-प्रशासन ने मुस्लिम सापेक्षता का जहर घोल दिया। मुगलकाल में बादशाह अकबर ने सर्वधर्म सापेक्षता की नीति अपनाई जो शाहजहां तक चलती रही, परंतु औरंगजेब ने 1669 ई. में हिन्दू मंदिरों-मूर्तियों के ध्वंस का फरमान जारी कर मुस्लिम धार्मिक कट्टरता का आचरण कर भारतीय आत्मा पर प्रचंड प्रहार कर दिया, हालांकि इससे कट्टर मुस्लिम खुश हो उठे क्योंकि उन्हें दूसरा धर्म जरा भी बर्दाश्त नहीं होता, जबकि भारतीयता यह है कि सब अपने-अपने धर्मों का पालन करने के लिए स्वतंत्र हैं और दूसरे की ऐसी स्वतंत्रता का आदर करते हैं अर्थात 'जीओ और जीने दो'। इस भारतीयता की रक्षा 'धर्मनिरपेक्ष नागरिक संहिता' से ही संभव है। वस्तुतः धर्म निरपेक्षता भारत का एक सांस्कृतिक मूल्य है।

– डॉ. बाबूलाल शर्मा

भारतेंदु युगीन प्रयोगधर्मी रचनाकार : राधाचरण गोस्वामी

विदुषी आमेटा

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का प्रथम उत्थान भारतेंदु युग की संज्ञा से विभूषित किया जाता है। भारतेंदु युग आधुनिक काल की आधार भूमि हैं, जिस पर वर्तमान हिन्दी साहित्य की संरचना विकसित और पल्लवित हुई है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का यह प्रथम उत्थान था। इस उत्थान में सबसे मूल्यवान तत्व था- साहित्यकारों का अदम्य उत्साह। उनमें हिन्दी के प्रति राष्ट्र और समाज के प्रति अटूट निष्ठा थी। उन्होंने हँसते-हँसते अपने को उत्सर्ग करके हिन्दी के विशाल भवन का निर्माण किया।'[1] भारतेन्दु एवं उनके सहयोगी अर्थात भारतेन्दु मण्डल के समस्त रचनाकार रीतिकालीन सामंती साहित्य से उलट जन साहित्य के पक्षधर थे। दरबारी परिवेश से बाहर निकलकर लोक को साहित्य का विषय बनाना और लोक के लिए साहित्य लेखन करना इनका लक्ष्य रहा। 'भारतेन्दुयुगीन काव्य में लोकचेतना का अपना विशिष्ट रूप है। इस युग की विचार पद्धति ने जन सामान्य को साग्रह होने की विशेष प्रेरणा दी थी। ईसाई धर्म का प्रचार, शिक्षा की नवीन पद्धति, भाषा समस्या, अंग्रेजों द्वारा विकसित वर्ण तथा रंगभेद, पूँजीपति तथा जमींदार वर्ग का शोषण, धार्मिक आंदोलन, नवीन अर्थनीति, राष्ट्रीयता की भावना आदि ने निम्नवर्गीय लोकचेतना को चौकन्ना कर दिया था। हिन्दी के भारतेन्दुयुगीन कवि तथा लेखक अधिकांशतः उसी वर्ग के थे।[2]

राधाचरण गोस्वामी भारतेन्दु युग के साहित्यिक परिवेश को निर्मित करने और हिन्दी साहित्य को प्राचीन विरासत से विकसित कर वर्तमान अस्तित्व देने वाले रचनाकारों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। राधाचरण गोस्वामी वृन्दावन के चैतन्य मत के अनुयायी परम वैष्णव थे। उन्होंने हिन्दी साहित्य को त्रिस्तरीय आधार देकर समृद्ध किया है। प्रथमतः स्वयं साहित्य सृजन किया, दूसरे साहित्य के सृजन और अध्ययन का विशिष्ट परिवेश निर्मित किया और तीसरा हिन्दी के भाषिक विकास में अवदान प्रदान किया। राधाचरण गोस्वामी के साहित्यिक अवदान की चर्चा इन तीन तथ्यों की भूमि पर होना आवश्यक है। उन्होंने कविता, उपन्यास, नाटक, लेख, निबंध, प्रहसन, एकांकी, जीवनी, आत्मकथा एवं समालोचना आदि गद्य-पद्य की समस्त विधाओं में लेखन कार्य किया है। राधाचरण गोस्वामी ने उपन्यास विधा को नवन्यास कहा है। कल्पलता, बालविधवा, वीरबाला, सर्वनाश, पश्चिमोत्तर की गुप्त कथा, अकलचन्द, अकलचन्द आख्यान, सौदामिनी आदि उनके मौलिक नवन्यास हैं। 'बाल विवाह' (सन् 1883-84 ई.) और 'विधवा विपत्ति (सन् 1888 ई.) समस्यामूलक उपन्यास हैं, जिसमें तत्कालीन बाल विवाह और विधवा स्त्रियों की दुर्दशा की समस्याओं को केन्द्रित किया गया है। भारतेन्दु युग की औपन्यासिक रचनाएँ समकालीन परिस्थितियों का जीवंत चित्रण करती है। इनमें सामाजिक-राष्ट्रीय समस्याओं पर उपदेशात्मक प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। विश्वनाथ त्रिपाठी इस पर टिप्पणी करते हैं कि 'उपन्यास का आरंभिक काल पाश्चात्य वैचारिक परम्परा से संपर्क का काल था, स्वतंत्रता, समता, बंधुता की उदारतावादी चेतना के

प्रभाव का काल था। स्वाभाविक रूप में उपदेशवादी नजरिया भी उपन्यास के लिए प्रेरणा देने लगा था। भारतेन्दु, श्रीनिवासदास, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्णदास, राधाचरण गोस्वामी, ठाकुर जगमोहन सिंह, किशोरीलाल गोस्वामी, लज्जाराम मेहता, गोपालराम गहमरी, ब्रजनंदन सहाय, राधिका रमण प्रसाद सिंह, अयोध्या सिंह उपाध्याय आदि नाम इस संदर्भ में सहज ही ध्यान में आते हैं।[3]

कथा सम्राट प्रेमचंद के प्रथम समस्यामूलक उपन्यास सेवासदन से पहले भारतेन्दुयुगीन रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में सामाजिक प्रश्नों पर बहस की है। प्रेमचंद पूर्व कथा साहित्य एक पूर्ण मजबूत स्थिति रखता था जिसकी विकसित परम्परा प्रेमचंद व परवर्ती रचनाकारों में दिखाई देती है। भारतेन्दु युग के बहुत से निबंध, चरित्र चित्रण और कथोपकथन की दृष्टि से उपन्यास की सीमा को छूते हुए दिखाई देते हैं। खासकर उनके व्यंग्य और हास्य में, सजीव शैली में और सामाजिक समस्याओं की छानबीन में प्रेमचंद के उपन्यासों से बहुत बड़ी समानता दिखाई देती है। इस श्रेणी में भारतेन्दु के निबंध 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न', 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन', राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द का 'राजा भोज का सपना', राधाचरण गोरवामी का 'यमपुर की यात्रा' आदि का जिक्र किया जा सकता है। वर्तमान समाज में शिक्षा की विडम्बना, धार्मिक पाखण्ड द्वारा समाज सुधार का विरोध, अंग्रेज शासकों द्वारा जनता का उत्पीड़न इन निबंधों के विषय हैं।... इसलिए यह समझना भूल होगी कि हिन्दी लेखकों ने जनता की शिक्षा और उसके मनोरंजन के लिए तिलस्मी किस्से कहानियों के अलावा कुछ न दिया।[4] राधाचरण गोस्वामी की लेखन क्षमता से प्रभावित होकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने उन्हें उपन्यास लेखन की सलाह दी थी। भारतेन्दु ने एक पत्र में लिखा था–'जैसे भाषा में कुछ नाटक बन गए हैं, अब तक उपन्यास नहीं बने हैं। आप या हमारे पत्र के योग्य सहकारी संपादक जैसे बाबू काशीनाथ व गोस्वामी राधाचरण जी कोई भी उपन्यास लिखें तो उत्तम हो।[5]

राधाचरण गोस्वामी एक कुशल नाटककार थे। उनका 'अमरसिंह राठौर' ऐतिहासिक नाटकों का स्वर्णिम प्रारंभ है। वृन्दावनलाल वर्मा से पूर्व नाटक के क्षेत्र में ऐतिहासिक कथानक को गोस्वामी जी ने महत्त्व प्रदान किया। सुदामा, सती चन्द्रावली, बाल विधवा संताप, गायत्री परिणय आदि उनके द्वारा रचित नाटक हैं। उन्होंने नाटक विधा के विविध रूप प्रहसन, एकांकी आदि की रचना भी की है। बूढे मुँह मुहासे लोग देखे तमासे, म्यूनिसिपल कमिश्नर, चंपकलता, कलिमा, यजमान और पुरोहित की दो-दो चोंचे, गुरु शिष्य का कथोपकथन, जैटिलमैन शिष्य, तन मन धन गोसाई जी के अर्पण, कामिनी कलानिधि आदि प्रहसन व एकांकी भी लिखे हैं। 'कामिनी कलानिधि' समस्या प्रधान एकांकी है। अनमेल विवाह पर आधारित इस एकांकी से एकांकी विधा का जन्म माना जा सकता है। यह रचना वर्तमान एकांकी के समस्त मानकों पर पूर्ण रूप से खरी उतरती है। साहित्य के इतिहास लेखकों द्वारा जयशंकर प्रसाद रचित 'एक घंटे' को हिन्दी का प्रथम एकांकी माना जाता है, उनका ध्यान राधाचरण गोस्वामी के लेखन पर शायद नहीं गया है। 'भारतेन्दु युग के एक अत्यंत प्रतिभाशाली नाटककार राधाचरण गोरवामी थे। विचारों की उग्रता और प्रगतिशीलता में यह अन्य सभी लेखकों से संभवतः आगे थे। इनका व्यंग्यपूर्ण निबंध 'यमलोक की यात्रा' एक उच्च कोटि की रचना है जिससे उनके उग्र और स्वाधीन विचारों का पता लगता है। व्यंग्य के छींटे इधर-उधर अपनी रचनाओं में बहुत से लेखक दे सकते हैं परन्तु, व्यंग्य जो शिथिल न हो और हास्य, जिसमें प्रयास न हो, जैसा यमलोक की यात्रा में पाया जाता है, वैसा अन्यत्र कम देखा जाता है। इनके नाटकों में तन मन धन श्री गुंसाई जी के अर्पण' तथा 'बूढे मुँह मुहासे' श्रेष्ठ हैं। इन नाटकों में उस नाटक परम्परा का पूर्ण विकास हमें मिलता है जिसमें व्यंग्य और हास्य के साथ कथावस्तु द्वारा समाज सुधार की चेष्टा की गयी है।[6] गोस्वामी जी के द्वारा रचित प्रहसन 'बूढे मुँह मुहासे, लोग देखे तमासे (सन् 1887 ई.) तथा तन मन धन गोसाई जी के अर्पण' (सन् 1890 ई.) श्रेष्ठ हास्य व्यंग्यात्मक रचनाएँ हैं। इस संबंध में कहा जा सकता है कि 'राधाचरण गोस्वामी का व्यंग्य अधिक सुथरा और उनके नाटक सुनिर्मित है।[7] भारतेन्दु युग के नाटकों में 'राधाचरण गोस्वामी की यह रचना (बूढे मुँह मुहासे) श्रेष्ठ है। इसका-सा नपा-तुला व्यंग्य, सधा हुआ

शिष्ट हास्य गढा हुआ कथानक, स्वाभाविक वार्तालाप आदि अन्य नाटकों में भी मिलेंगे परन्तु, हिन्दू-मुसलमान किसानों की एकता और जमींदार के प्रति उनकी विद्रोह भावना किसानों में नयी है। हिन्दू-मुसलमान तथा किसान-जमींदार समस्याओं का जैसा विवेचन युग चेतना ने किया था, वह इस नाटक से स्पष्ट है।[8] 'बूढे मुँह मुहासें' में इन्होंने किसान और जमींदार के संघर्ष को उसकी कथावस्तु बनाया है और उसमें भी मुसलमान और हिन्दू किसानों की एकता दिखाकर गाँवों के वर्ग युद्ध और हिन्दू-मुस्लिम समस्याओं पर प्रकाश डाला है।[9]

भारतेन्दु युगीन रचनाकारों के समस्त लेखन में निबंध विधा का उत्कृष्ट स्वरूप देखने को मिलता है। इस समय पत्र-पत्रिकाएँ आलेख प्रकाशन का महत्त्वपूर्ण माध्यम थी। राधाचरण गोस्वामी के दो सौ से अधिक आलेख व निबंध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे। डॉ. रामविलास शर्मा स्वीकार करते हैं कि 'जितनी सफलता भारतेन्दु युग के लेखकों को निबंध रचना में मिली, उतनी कविता और नाटकों में भी नहीं मिली। इसका एक कारण यह था कि पत्रिकाओं में नित्य प्रति निबंध लिखते रहने से उनकी शैली खूब निखर गयी थी। दूसरी बात यह कि निबंध ही एक ऐसा माध्यम था जिसके द्वारा उस युग के फक्कड़ लेखक बेतकल्लुफी से अपने पाठकों से बात कर सकते थे।[10] 'राधाचरण गोस्वामी की 'यमलोक की यात्रा' में उस समय की घटनाओं, आंदोलनों आदि का बहुतायत से उल्लेख है। इनका व्यंग्य राजनीतिक दमन, सामाजिक दुराचार आदि विशेष लक्ष्यों की ओर प्रेरित है।[11] 'व्यंग्य गोस्वामी जी के लेखन की बहुत बड़ी शक्ति है। हिन्दी निबंध परम्परा में व्यंग्य का जो वैशिष्ट्य है, वह गोस्वामी जी के निबंधों में विशेष रूप से प्रस्तुत है। निबंध की भावभूमि को आधुनिक कलेवर देते हुए उनके निबंध नवीन परिस्थितियों और नवीन विचारों को वहन करते हैं। राजनीतिक उत्पीड़न, सामाजिक कुरीतियों, आर्थिक समस्याएं, धार्मिक अंधविश्वास आदि विषयों को उन्होंने अपने व्यंग्य का विषय बनाया।[12] रेलवे स्तोत्र, यमलोक की यात्रा, नापित स्तोत्र जैसी हास्य-व्यंग्यात्मक रचनाएँ गोस्वामी जी के व्यंग्य के पैनेपन को प्रस्तुत करती हैं।

हिन्दी साहित्य में समालोचना विधा का जन्म भी राधाचरण गोस्वामी से माना जा सकता है। बालकृष्ण भट्ट के द्वारा सन् 1878 ई. में प्रकाशित आलेख को समालोचना का प्रथम प्रयास माना जाता है परन्तु, इससे पूर्व राजा शिवप्रसाद सिंह 'सितारे हिन्द' द्वारा लिखित 'हिन्दी व्याकरण' की समालोचना गोस्वामी जी 1876 ई. में कर चुके थे। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में गोस्वामी जी की कई समीक्षात्मक टिप्पणियां प्रकाशित हुई हैं। उन्होंने साहित्य, साहित्यकार, जीवन, राजनीति, व्यक्ति, समाज, धर्म, न्याय, मिथक जैसे कई विषयों को अपनी समालोचना का विषय बनाया है। हिन्दी साहित्य में आत्मकथा के प्रवर्तन का श्रेय भी राधाचरण गोस्वामी को दिया जा सकता है। उन्होंने 'मेरा संक्षिप्त जीवन चरित्र मेरा लिखित' (सन् 1894 ई.) शीर्षक से स्वयं के जीवन पर कलम चलाई है। हिन्दी भाषा में पहली आत्मकथा बाबू रामदीन सिंह ने 1882 ई. लिखी थी। गोस्वामी जी की आत्मकथा दूसरी रचना है। हिन्दी में एक साहित्यकार के द्वारा लिखी गयी यह पहली आत्मकथा है। इसी प्रकार जीवनी लेखन में भी राधाचरण गोस्वामी प्रारंभिक रचनाकारों में सम्मिलित किए जा सकते हैं। उनके द्वारा तीन जीवनियां लिखी गई है। भारतेन्दु मण्डल के रचनाकारों में जीवनी लेखन का कार्य एक मात्र गोस्वामी जी ने किया है। उन्होंने तीन जीवनियां लिखी हैं– 'श्री निवासदास की जीवनी', 'महात्मा गोपीनाथ गल्लू जी का जीवन वृत्तांत' और 'पतित पावन श्री गौरांग' इस श्रेणी की रचनाएँ हैं।

राधाचरण गोस्वामी ने गद्य की विविध विधाओं में प्रथम प्रायोगिक कार्य किया और सफल भी रहे। पद्य लेखन में अवश्य उनकी रुचि कुछ कम रही। इसका कारण उनके वैष्णव भक्ति के संस्कार और रीतिकालीन श्रृंगारिक परम्परा के मध्य का गतिरोध माना जाना चाहिए। फिर भी उन्होंने काव्य रचना का प्रयास अवश्य किया। काव्य के क्षेत्र में भी उनकी हिस्सेदारी प्रयोगधर्मिता की रही। उन्होंने 'अमेरिका वालों से सम्मिलन' शीर्षक से लंबी कविता लिखी। सन् 1879 ई. में थियोसोफिकल सोसायटी के सदस्य अमेरिका से भारत आए थे। इस अवसर पर यह कविता 'हिन्दी प्रदीप' में प्रकाशित हुई थी। 'दामिनी दूतिका' पूर्वराग प्रेरित श्रृंगारिक रचना है। 'अथ शिशिर सुषमा' ऋतु वर्णन संबंधित है। होली, भारत

पावस, बड़ी तालीम, विष्णु प्रिया का विलाप, शरणागत जैसी कविताएँ भारत की तत्कालीन स्थिति का जीवंत चित्रण प्रस्तुत करती हैं। 'श्री वैष्णव बोधिनी' कविता वैष्णव भक्तों के लिए भक्ति संदेश है। इनके अतिरिक्त नवभक्तमाल, प्रेमबगीची (27 पद), भारत संगीत (19 पद), विधवा विलाप (50 दोहे), भूमारहरण (12 छप्पय) जैसी काव्य रचनाओं का सृजन भी किया। उनके द्वारा संस्कृत भाषा में रचित 'गोपिका गीतम् गीतिकाव्य का स्मरण भी इस प्रसंग में आवश्यक है। यह काव्य रचनाएँ मध्यकालीन काव्यभावना से विपरीत नवीन भावभूमि का निर्माण करती हैं। 'हिन्दी कविता को लंबे समय से चली आ रही श्रृंगार और भक्ति की लोकोत्तर भावनाओं से अलग लोकभूमि से जोड़ने वाले और ब्रज भाषा के पक्षधर, और इस रूप में वह परम्परा का निर्वहन करते हुए भी दिखाई देते हैं। भारतेन्दु के अतिरिक्त ब्रजभाषा को आधुनिक काव्य संचेतना से अनुप्राणित करने वाले रचनाकारों में प्रतापनारायण मिश्र, ठाकुर जगमोहन सिंह, राधाचरण गोस्वामी, राधाकृष्ण दास, किशोरीलाल और देवीप्रसाद पूर्ण प्रमुख हैं।[13] भारतेन्दु युग में तीन प्रकार के कवि हैं– (1) रीतिकालीन परिपाटी का निर्वाह कर साहूकार, जमींदार व नवाबों के आश्रय में रहकर उनका मनोरंजन व प्रशस्तिगान करने वाले, (2) परम्पराबद्ध दूसरा कविवर्ग ऐसे रचनाकारों का है, जिनमें संस्कारबद्धता तो परम्परा की है किंतु, दृष्टि नवीन है। (3) तीसरा वर्ग ऐसे कवियों का है, जो समस्यापूर्ति को अपनी काव्य रचना का प्रधान अंग स्वीकार करता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं उनके सहयोगी राधाचरण गोस्वामी आदि इस दूसरे वर्ग में आते हैं जो काव्य के परम्परागत शिल्प व भाषा रूप में समसामयिक सामाजिक विषयों पर रचनाएँ कर रहे थे।[14]

राधाचरण गोस्वामी ने अनुवाद का कार्य भी किया। बिरजा और 'दीप निर्वाण' उनके द्वारा बांग्लामाषा से अनुवाद किए गए उपन्यास हैं। उनका बांग्लाभाषा के रूपक 'भारते यवन' का हिन्दी अनुवाद 'भारत में यवन लोग' भी चर्चित रहा है। राधाचरण गोस्वामी की सबसे पहली पुस्तक 'शिक्षामृत' 1877 ई. में प्रकाशित हुई थी। तत्पश्चात शिक्षासार, गो महिमा, देशोपकारी, आर्य शब्द का उपपन्न जैसी उपदेशात्मक, सुधारात्मक तथा व्यंग्यात्मक लगभग 40 पुस्तकें प्रकाशित हुई। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में भी उनकी रचनाएँ लगातार प्रकाशित होती रही।

पत्रकारिता के क्षेत्र में राधाचरण गोस्वामी के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। उन्होंने 'भारतेन्दु' शीर्षक से एक पत्रिका का संपादन-प्रकाशन किया। चैतन्य सम्प्रदाय के मुख पत्र 'श्रीकृष्ण चैतन्यचन्द्रिका' मासिक पत्रिका का सन् 1890 ई. से संपादन किया। वे देश की उन्नति के लिए पत्रकारिता की उन्नति आवश्यक मानते थे। हिन्दी के साप्ताहिक पत्र बिहार बंधु में बांग्ला के मासिक पत्र 'व्यावसायिक' पर की गई गोस्वामी जी की समालोचना इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। 'इसी समालोचना में उन्होंने भौमिक और जनसाधारण का आह्वान इसे पुरस्कृत करने हेतु किया था, जिससे 'व्यवसायी' हृष्ट-पुष्ट होकर देश का कल्याण करे। तब गोस्वामी जी की उम्र अठारह वर्ष की भी नहीं थी। अर्थात वे वयस्क भी नहीं थे। इस कच्ची उम्र में किसी देशीय पत्र द्वारा देश कल्याण करने की कामना करना एक असाधारण सत्य है।[15] वे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा संपादित पत्र कविवचन सुधा के बंद होने पर भी व्यथित हुए थे। इसी प्रकार हिन्दी भाषा के पत्र-पत्रिकाओं की अकाल मृत्यु पर खेद व्यक्त करते हैं और रसिकों को, पाठकों को, एवं जनता को समाचार पत्रों की अकाल मृत्यु रोकने के लिए प्रेरित करते हैं। बिहार बंधु पत्र को साप्ताहिक से अर्ध साप्ताहिक करने की एक पाठक की माँग का समर्थन गोस्वामी जी ने भी किया था। 19 जनवरी 1882 को लॉर्ड रिपन के द्वारा जब वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट समाप्त किया तब पत्रकारिता की आजादी से प्रसन्न होकर उन्होंने लॉर्ड रिपन की प्रशस्ति की थी।

राधाचरण गोस्वामी देश की उन्नति का मूल जनता की उन्नति मानते हैं और इसके लिए जनता में विद्या, अखबार, राजनीति और विज्ञान का प्रचार करना आवश्यक मानते थे। उनके जीवन और लेखन का मूल उद्देश्य देशोन्नति, भारतोन्नति और मनुष्य की उन्नति थी। इस महान कार्य के लिए उन्होंने लेखन कर्म अपनाया, संपादन किया, राजनीति में हस्तक्षेप किया, समाज सुधार के प्रयास किये, धार्मिक अंधविश्वासों व पाखण्डों का खण्डन किया। वे वृन्दावन में राजनीतिक चेतना और

राष्ट्रीयता उत्पन्न करने वाले प्रमुख व्यक्ति थे, इसी कारण वृन्दावन नगरपालिका क्षेत्र में तृतीय श्रेणी के मानद दण्डाधिकारी पद पर तीन बार चयनित हुए थे। साथ ही आजीवन कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता और नेता भी रहे। राजनैतिक संगठनों के साथ वे वैचारिक विमर्श के लिए साहित्यिक सामाजिक सभाओं व संगठनों की आवश्यकता भी बताते हैं। उन्होंने 'कविकुल सभा' संस्था की स्थापना की थी, 'भाषा वर्द्धिनी सभा' के सक्रिय सदस्य रहे थे। वैष्णव परिवेश व संस्कारों के विपरीत जाकर सन् 1880 ई. में गोस्वामी नाटक कंपनी की स्थापना की जिसमें उनके शिष्य एवं सम्प्रदाय के भक्तों द्वारा अभिनय किया जाता था। यह कार्य एक तरफ संगठनात्मक शक्ति का प्रदर्शन करता है, दूसरे कला के प्रति प्रेम को अभिव्यक्ति देता है, तीसरे समाज में उँच-नीच के भेदभाव को समाप्त करता है।

राधाचरण गोस्वामी का महत्त्वपूर्ण योगदान भाषा के क्षेत्र में भी दृष्टिगोचर होता है। भारतेन्दु मण्डल के रचनाकार एवं विशेष रूप से गोस्वामी जी को ब्रज-हिन्दी विवाद में ब्रज की पक्षधरता में खड़ा किया जाता है। उन्होंने गद्य-पद्य की भाषा में अन्तर मानकर गद्य के लिए ब्रज भाषा का समर्थन किया था। खड़ी बोली में कविता करने के प्रसंग में राधाचरण गोस्वामी की इन पंक्तियों को विरोध स्वरूप दर्ज किया जाता है– 'खड़ी बोली में कविता करने की लालसा उन्हीं लोगों की विशेष होती है, जो न कविता कर सकते, न समझ सकते और न काव्य के तत्व को जानते हैं और कविता करने को आतुर हैं।'16 इसका कारण जॉर्ज ग्रियर्सन यह बताते हैं कि 'कविता के संदर्भ में भारतेन्दु मंडल के अधिकांश लेखकों की समझ रीतिकालीन थी। कविता की सामाजिक भूमिका को लेकर ये बहुत अधिक आश्वस्त नहीं थे।[17] परन्तु, इसी पृष्ठ पर ग्रियर्सन द्वारा ब्रजभाषा के पक्ष में खड़े राधाचरण गोस्वामी की ब्रजभाषा का आशय बताया गया है– 'राधाचरण गोस्वामी ब्रजभाषा की बोलियों का जिक्र करते हैं, ठेठ ब्रज की बोली, कन्नौज प्रांत की बोली, शौरसेनी (ब्रज की ठेठ बोली), बैसवाड़ी, बिहारी (मगध की भाषा), अन्तर्वेदी (गंगा जमुना के बीच की) और बुंदेलखण्डी। ब्रज की इन प्रांतिक बोलियों में फारसी, अरबी और तुर्की के शब्द भी हैं।'[18] स्वयं गोस्वामी जी का कथन इस संदर्भ में उल्लेखनीय है– 'हमारी वर्तमान हिन्दी जो है, वह ब्रजभाषा, कान्यकुब्ज, शौरसेनी, बैसवाड़ी, बिहारी, अन्तर्वेदी, बुंदेलखण्डी आदि कई भाषाओं के शब्दों से बनी है। थोड़े दिन पहले हिन्दी का कोई विशुद्ध रूप न था, अब इसको एक स्वतंत्र भाषा भी कह सकते हैं, पर वस्तुतः ब्रजभाषा आदि से इसका कोई भेद नहीं।[19]

पद्य में ब्रजभाषा की पक्षधरता के संबंध में गोस्वामी जी की दो चिंताएं ध्यातव्य है 'प्रथम, अयोध्या प्रसाद खत्री ब्रजभाषा की कविता को हिन्दी से दूध की मक्खी तरह निकालना चाहते हैं। तब हिन्दी पद्य के स्थान में हमारे मित्र किस कविता को लेकर हिन्दी काव्य का स्थान करेंगे और किसके आधार पर हिन्दी काव्य रचना करेंगे? द्वितीय, हम अनुमान करते हैं कि यदि खड़ी बोली में हिन्दी कविता की चेष्टा की जाय तो फिर खड़ी बोली के स्थान में थोड़े दिनों में खाली उर्दू की कविता का प्रचार हो जायेगा। इधर गद्य में सरकारी पुस्तकों में फारसी शब्द घुसे ही पड़े हैं, उधर पद्य में भी फारसी भरी गयी तो सहज ही झगड़ा निपटा।[20] ब्रज आदि देशीय भाषाओं की लंबी परम्परा से समृद्ध हिन्दी साहित्य को संरक्षित रखना तथा विदेशी भाषा फारसी से देश को बचाना ये दो मुख्य कारण गोस्वामी जी को पद्य में ब्रज भाषा का पक्षधर बनाते हैं। 'यावनी' शब्द से हिन्दी को बचाने के प्रयास में कृत्रिम और अस्वाभाविक हिन्दी गढ़ना इन लोगों को गवारा था। अपनी इस मानसिकता के कारण तत्कालीन लेखकों का एक तबका खड़ी बोली हिन्दी गद्य से उर्दू-फारसी के आमफहम शब्दों को छांटकर, अप्रचलित संस्कृत शब्दों का प्रयोग करता था। गोया इसके जरिए एक पवित्र हिन्दी भाषा गढ़ी जा रही थी। खड़ी बोली के एक साहित्यिक रूप उर्दू में ज्यादातर मुस्लिम रचनाकार रचनाएं कर रहे थे। इसमें फारसी शब्दों का खुलकर प्रयोग भी होता था। ब्रजभाषा की कविता सब देशों में नहीं समझी जा सकती, खड़ी बोली की कविता सब देशवासी समझेंगे, भ्रम है।[21]

राधाचरण गोस्वामी वैष्णव थे। इस कारण उनके फारसी विरोधी सांस्कृतिक आग्रह को धार्मिक कट्टरता कहकर विरोध किया गया। गोस्वामी जी की भाषिक मान्यता के पीछे विवाद का एक कारण उनके द्वारा किए

गये शब्दों का प्रयोग भी हो सकता है। यथा, 'खड़ी बोली को मुसलमान जाति ने उर्दू बना कर ग्रहण कर लिया। इसलिए हिन्दुओं ने विशेष आग्रह ब्रजभाषा की ओर किया।[22] यहाँ शब्द प्रयोग की ओर ध्यान न देकर लेखन के मूल मंतव्य तक पहुँचना आवश्यक है। गोस्वामी जी के द्वारा पद्य में ब्रज की पक्षधरता निम्न बिन्दुओं पर केन्द्रित थी– 1. उर्दू के बेत, शेर, गजल का अनुकरण करने पर फारसी शब्दों के होने से उसमें साहित्य नहीं आ पाता। फिर जब काव्य में हृदयग्राही गुण न हुआ तो ऐसे काव्य की रचना ही व्यर्थ है। 2. ब्रजभाषा के भण्डार को हिन्दी से निकाल देने से हिन्दी में फिर गौरव की क्या सामग्री रह जाएगी। 3. हमारी कविता की भाषा अभी मरी नहीं है, जीती है। फिर तब क्यों न इसमें कविता की जाए। यहां हमारी शब्द का अभिप्राय ब्रज नहीं अपितु देशज बोलियां हैं। 4. संस्कृत नाटको में लालित्य के लिए संस्कृत, प्राकृत, पैशाची आदि कई भाषाओं का व्यवहार किया गया है तो हम हिन्दी साहित्य में यदि दो भाषा व्यवहार करें, तो क्या चोरी की है? 5. वे खड़ी बोली हिन्दी को पिशाचिनी और डाकिनी आदि संज्ञाएँ देते हैं परंतु, यहाँ हिन्दी का विरोध मात्र पद्य की हिन्दी के लिए है, गद्य की हिन्दी के लिए नहीं। गद्य में स्वयं गोस्वामी जी हिन्दी का प्रयोग करते हैं। तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त संज्ञाएं पद्य की खड़ी बोली हिन्दी के लिए हैं, जिसमें फारसी शब्दों की बहुलता है। विदेशी भाषा के प्रति यह आक्रोश अनुचित नहीं है। 6. गोस्वामी जी की यह मान्यता भी थी कि संस्कृत के बिना किसी भाषा के साहित्य की उतनी उन्नति नहीं और सिवाय क्रियापदों के हिन्दी से इसका भेद भी नहीं है। अतः यदि खड़ी बोली हिन्दी का प्रयोग करना है तो फारसी सम्मत नहीं, अपितु संस्कृत या क्षेत्रीय भाषाओं के प्रति झुकना ठीक है।

राधाचरण गोस्वामी की काव्य में ब्रजभाषा की पक्षधरता हिन्दी भाषा की विरोधी नहीं है। वे हिन्दी और नागरी लिपि को शिक्षा, ज्ञान व साहित्य का माध्यम बनाए जाने को लेकर सहमत थे। वे जानते थे कि 'मातृभाषा अर्थात हिन्दी भाषा और उसकी लिपि नागरी के द्वारा ही प्राथमिक शिक्षा की उन्नति संभव है तत्कालीन पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध के विभिन्न नगरों की जनता और वहाँ की हिन्दी सेवी सार्वजनिक संस्थाओं की ओर से राजकाज और विद्यालयों में हिन्दी और उसकी लिपि देवनागरी की स्वीकृति के लिए शिक्षा आयोग द्वारा अनेक अभ्यावेदन दिए गए थे। गोस्वामी राधाचरण जी ने भाषावर्द्धिनी सभा का बैनर लेकर अपने उद्योग से इक्कीस हजार स्वाक्षर हिन्दी के पक्ष में विभिन्न अभ्यावेदनों के द्वारा हंटर कमीशन की सेवा में भिजवाए। एतदर्थ, उन्होंने विभिन्न हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञापन दिए, व्यक्तिगत स्तर पर सघन अभियान भी चलाया।[23] उनके द्वारा प्रतिवर्ष दिया जाने वाला ललिता पारितोषिक भी इस दिशा में उल्लेखनीय प्रयास है। इसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष नागरी लिपि में सर्वाधिक सुन्दर हस्तलेखन करने वाली बालिका को पांच रुपये का पुरस्कार प्रदान किया जाता था। यह गोस्वामी जी का भाषा व लिपि के प्रति प्रेम और बालिका शिक्षा को प्रोत्साहन देकर समाज सुधार करने की दृष्टि का परिचायक है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि राधाचरण गोस्वामी आधुनिक युग अर्थात भारतेन्दु युग के विशिष्ट रचनाकार हैं, जिन्होंने अपनी सृजनशीलता, वैचारिकता, और सुधारात्मक प्रयासों से नवजागरण को गति प्रदान की। वरिष्ठ समालोचक रामविलास शर्मा स्वीकार करते हैं- 'राधाचरण गोस्वामी का नाम उन महान साहित्यिकों में लिया जायेगा जो साहित्य में सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलनों को प्रतिबिम्बित करके ही नहीं बस करते वरन् साहित्य में वह प्रेरणा भर देते हैं, जो ऐसे आन्दोलनों का सूत्रपात करती है और उन्हें निश्चित लक्ष्य तक पहुँचाने में सफल होती है।[24] वे पुर्नजागरण काल में प्रगतिशीलता के वाहक थे। यथा 'बीसवीं सदी के प्रगतिशील लेखकों ने संघबद्ध धर्म, उच्च वर्ग के स्वार्थ और शोषक अधिकारियों के प्रति जो आंदोलन आरंभकिया है, उसकी एक बहुत तेज झलक राधाचरण गोस्वामी में हमें मिलती है। क्या विचार, क्या विचार प्रकाशन का ढंग, उन्होंने दोनों में ही प्रौढ़ चिन्तन शक्ति और तीक्ष्ण रचनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। ...जो लोग सोचते हैं कि प्रचार के लिए उच्च कोटि का साहित्य नहीं रचा जा सकता, या हिन्दी के लिए प्रगति की परम्परा अनोखी है या हिन्दी वालों को प्रगतिशील साहित्य लिखने के लिए विदेश का मुँह ताकने के बदले अपने देश में कुछ है ही

नहीं, वे एक बार 'यमलोक की यात्रा' पढ़ें तो उनकी सभी शंकाएँ दूर हो जायेंगी।[25]

राधाचरण गोस्वामी अपने परिवेश और समय में सर्वाधिक प्रगतिशील और प्रयोगशील कहे जा सकते है, जिन्होंने व्यावहारिक दृष्टिकोण से मानव हित और राष्ट्र के पुनरुत्थान को वाणी दी है। 'यद्यपि वह प्रतिक्रियावादी वातावरण में पले और बढ़े थे परन्तु, उनकी नस-नस में प्रगति और उदार भावना की लहर दौड़ती है।[26] पुनश्च, 'नवीन जागृति के साथ तत्कालीन क्षोभ, तनाव और संघर्ष भारतेन्दु मण्डल की रचनाधर्मिता के मुख्य बिन्दु बने। राधाचरण गोस्वामी ने भी इसी धारा का अनुसरण करते हुए नवीन और पुरातन के संघर्ष के बीच नया रास्ता खोजा। राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नयन की भावना से सन्निहित होकर उन्होंने नवजागरण का संदेश फूंका।[27]

भारतेन्दु युग को पुनर्जागरण की संज्ञा भी प्रदान की जाती है। इस युग में राधाचरण गोस्वामी ऐसे वैष्णव भक्त रचनाकार, सजग चेतनाशील नागरिक और राष्ट्रप्रेमी व्यक्ति थे, जिन्होंने अपनी प्रगतिशील, क्रान्तिकारी दृष्टि से जन जागृति का कार्य किया। उन्होंने विभिन्न धर्म ग्रंथों का अध्ययन किया था। इसलिए प्रत्येक समस्या पर चिंतन करते हुए वे वेद-पुराण, उपनिषद और भागवत के छंदों का उद्धरण देकर पूर्ण तार्किकता से परम्परानुसम्मत विचार व्यक्त करते थे, परंतु वे पुरातन पंथ की अपेक्षा संतुलित मानववादी दृष्टि रखते थे। उन्होंने हिन्दू शास्त्रों को पुनर्व्याख्यायित किया, नई व्याख्या की एवं युगानुकूल प्रेरणा के प्रकाश का समन्वय कर जनता को सचेत किया। राष्ट्रीय चेतना के बीजवपन, अंकुरण और प्रस्फुटन में उनका अक्षुण्ण योगदान रहा है। स्वदेशी स्वीकार तथा विदेशी बहिष्कार को प्रोत्साहित करना, ब्रह्म समाज तथा आर्य समाज जैसी समाज सुधारक संस्थाओं का महत्त्व समझना, सत्ता के विकेन्द्रीकरण का पक्ष लेना, शासन में जन भागीदारी की माँग करना, हिन्दी भाषा व नागरी लिपि का समर्थन, पत्रकारिता की उन्नति, समुद्रयात्रा, शुद्धि तथा विधवा विवाह का समर्थन, विविध गद्य विधाओं में व्यावहारिक सृजन जैसे कार्य राधाचरण गोस्वामी को साहित्य सृजन, समाज सुधार व राष्ट्र भक्ति, तीन समानान्तर क्षेत्रों में मील का पत्थर बनाते हैं, जिन्होंने आधुनिक साहित्य की आधार भूमि तैयार की है।

संदर्भ

1. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बेक्स, नोएडा, 2001, पृ. 485। , **2.** डॉ. विनय मोहन शर्मा, हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास अष्टम भाग, हिन्दी साहित्य का अभ्युत्थान काल (सं. 1900-1950 वि.सं.), नागरी प्रचारिणी सभा काशी, 2021 वि. पृ. 91। **3.** चंद्रकांत बान्दिवडेकर-आलेख-हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष, बीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य, सं. डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, भारतीय जनपथ, पृ. 62। **4.** रामविलास शर्मा, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 29। **5.** पूर्वोक्त पृ. 29। **6.** रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ. 63। **7.** पूर्वोक्त पृ. 54। **8.** पूर्वोक्त पृ. 68। **9.** पूर्वोक्त पृ. 63। **10.** पूर्वोक्त पृ. 701। **11.** पूर्वोक्त पृ. 73। **12.** कुमुद शर्मा, हिन्दी के निर्माता, भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 62। **13.** रचना आनंद गौड, प्रसाद की काव्य भाषा, लोकभारती प्रकाशन, पृ. 185-186। **14.** सं. डॉ. विनय मोहन शर्मा– हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास अष्टम भाग, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 2021 वि.पृ. 81। **15.** रामनिरंजन परिमलेंदु, प्रस्तावना, राधाचरण गोस्वामी रचना संचयन, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2019, पृ. 28। **16.** राधाचरण गोस्वामी, अयोध्या प्रसाद खत्री स्मारक ग्रंथ, पृ. 70। **17.** ग्रियर्सन, भाषा और साहित्य का इतिहास (अनुवाद-अरु ण कुमार) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ. 29। 18. पूर्वोक्त। 19. राधाचरण गोस्वामी, आलेख खड़ी बोली का पद्य, हिन्दोस्थान, 11 नवम्बर, 1887 (अयोध्याप्रसाद खत्री के काव्य संकलन 'खड़ी बोली का पद्य के विरोध में)। **20.** राधाचरण गोस्वामी, प्रतिवाद, हिन्दोस्थान, 15 जनवरी, 1888)। **21.** राजीव रंजन गिरि, परस्पर, भाषा-साहित्य आन्दोलन, राजकमल प्रकाशन, 2020। **22.** पूर्वोक्त। **23.** रामनिरंजन परिमलेंदु, प्रस्तावना, राधाचरण गोस्वामी रचना संचयन, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2019, पृ. 44। **24.** रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग और हिन्दी साहित्य की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ. 69। **25.** पूर्वोक्त पृ. 751। **26.** पूर्वोक्त पृ. 65। **27.** कुमुद शर्मा, हिन्दी के निर्माता, भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 59।

❏❏

सहायक आचार्य (हिन्दी)
कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय,
दरभंगा (बिहार)-846008, मो. 9461523578

वसुधैव कुटम्बकम् के स्वप्नद्रष्टा रवीन्द्रनाथ टैगोर

डॉ. हरि किशोर प्रसाद सिंह

पूरब और पश्चिम को अलग-अलग दो संसार माननेवाली दुनियां को विश्व नीड़ बनाने की परिकल्पना को सार्थकता प्रदान करने वाले कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर आधुनिक विश्व के प्रथम स्पप्नद्रष्टा हैं, जिन्होंने रूडयार्ड किपलिंग इस उक्ति 'The East is East and the West is west and Never the Twain Shall meet' को निरर्थक सिद्ध किया और वैदिक वाणी को चरितार्थ करने की ओर सम्पूर्ण विश्व का ध्यान आकृष्ट किया– अयम् निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्, उदार चरितानान्तु बसुधैव कुटुम्बकम्। विश्व शांति का सपना देखने वालों के लिए जो एक मॉडल तैयार किया जा सकता था, वही मॉडल रवि बाबू ने अपने हाथों से गढ़ा, जो शांति निकेतन के रूप में वैश्विक सभ्यता की इमारत का रूप धारण करता जा रहा है। शांति निकेतन को एक विश्व-नीड़ में आवद्ध करने का गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर का सपना-जहां पूरे विश्व के विभिन्न देशों से संबंधित आत्माएं आकर निवास करें काफी हद तक सच साबित हो रहा है। वातावरण काफी प्रेरक था और रवीन्द्र नाथ इस वातावरण और इससे जुड़े संकेतों के प्रति अति संवेदनशील थे। बहुतेरे नूतन कार्य किये गये उससे विश्व भारती ही लाभांन्वित नहीं हुई बल्कि इसका लाभ अनेक विश्वविद्यालयों को भी प्राप्त हुआ।

कवि के लिए यह अत्यंत प्रेरणादायक था कि विश्व अब एकीकृत हो रहा था और उन्हें अपने आदर्श की रक्षा और लोगों का दिल जीतने हेतु काफी सारी यात्राएं करनी पड़ेंगी। इसके लिए रवीन्द्रनाथ घर में बदनामी भी सहन करने को तैयार हो गये और एक विश्वास जो बाद में एक विश्व का चलन बन गया, इसके लिए उपहास और ताने को भी बर्दाश्त किया। उससे भी बड़ा बलिदान उस जोखिम को उठाने का था जो उन्होंने अपनी रचनात्मकता और आत्मिक संतुलन को बाजार के कोलाहल में प्रदर्शित करने का लिया था। क्या लोकप्रसिद्धि की चकाचौंध का इतना संवेदनशील पौधा जो अब तक अपेक्षातया गुमनामी की रक्षात्मक छांव में रखा था, खिलेगा या कि मुरझा जायेगा? क्या फिर से वह कला देवी के एक तरफ भावपूर्ण ध्यान में दुबारा बंदी हो पायेगा, जीवन देवता के साथ उसकी आत्मीय बातें उसके अन्दर परम प्रिय भगवान, सामान्य स्थानों के दृश्य और श्रव्य, भाईचारे का हर्षोन्माद, बांसुरी की सादगी से इंतजार करती हुई 'संगीत से भर उठना– जो कि कभी उसका था? कवि पैगंबर से, गायक उपदेशक से और भक्त धर्म प्रचारक से हार गया था। 'गीत के संकरे विस्तार का अंतहीन अर्थ विश्व के सुविस्तृत फैलाव में हो रहे अंतहीन प्रचार में घुल रहा था। वह इतना संवेदनशील और सच्चा था कि अब या तब उस दुर्दशा की जानकारी से भावाविष्ट था, जैसा कि एंड्रयूज को शिकागो से 26 फरवरी, 1921 को लिखी चिट्ठी (जो किसी अपराध की स्वीकृति जैसी लगती थी) से प्रतीत होता है–

‘जब मैं इस दुनियां में आया था तब मेरे पास एक बांसुरी के अलावा कुछ नहीं थी। यह सिर्फ संगीत बजाने के लिए काम में आती थी। मैंने आना विद्यालय छोड़ दिया और अपने काम की अनदेखी कर दी, लेकिन मैंने अपनी बांसुरी संभाल ली थी और एक निरर्थक क्रीड़ा की तरह उसे बजाता गया। इन सबमें मेरा एक ही सखा था, वह भी अपने खेल में संगीत बजाता। उसका संगीत पत्तों में, बहते जल में, सितारों की खामोशी में, आँसू और मुस्कुराहटें मानव जीवन में अंधेरों और उजालों के रूप में तरंगायित हो जाता। जब कि मेरा साथी शाश्वत बांसुरी बजाने वाला था, इस खेल की आत्मा और मैं विश्व के हृदय के बिल्कुल समीप था। मैं उसकी मातृभाषा जानता था, और मैं जो गाता था वह जीवन के नृत्य शिक्षक और जल और वायु के गायकवृंद द्वारा स्वीकार कर लिया गया।’

‘लेकिन मेरे सपनों की दुनियां के बीच एकदम स्कूल के शिक्षक आ गये और मैं इतना बेवकूफ था कि उनके निर्देशों को मानता चला गया। मैंने अपनी बांसुरी अपने बगल में रख दी, और उस खेल का मैदान छोड़ दिया जिसमें एक शाश्वत शिशु अपना पारलौकिक जीवन उसी निरर्थक खेल में व्यतीत करता है। एक ही क्षण में मैं बूढ़ा हो चला और बुद्धि का बोझ अपनी पीठ पर ढोता एक द्वार से दूसरे द्वार सत्य की हांक लगाता जा रहा था।’

‘यह बोझ मुझे क्यों ढोना पड़ा मैं यही बार-बार स्वयं से पूछता, अपने उपर कर्कश ध्वनि में चिल्लाता, इस कोलाहल भरे विश्व में जहाँ हर कोई अपने ही दुखड़े रो रहा है? सब अपने प्रचार के ठेले एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप तक धकेलते हुए-क्या यही कवि के अंत की पराकाष्ठा है? मुझे यह सब एक बुरे सपने की तरह लगता है जिससे मैं रात के सन्नाटे में अक्सर उठकर बैठ जाता हूँ और बिस्तर पर भयभीत बैठा अपने आपको टटोलता रहता हूँ। ‘मेरा संगीत कहाँ है?’

‘वह कवि जो अपने जीवन के लक्ष्य के प्रति सच्चा है वह व्यार की फसलें काटता है लेकिन जो कवि अच्छाई के रास्ते पर भटकता है केवल गलियों और शाबाशी के साथ छोड़ दिया जाता है। इसलिए मैंने एक अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना की यह एक महान कार्य था। लेकिन मैंने अपना छोटा गीत खो दिया– एक ऐसी क्षति जो कभी पूरी नहीं की जा सकेगी। यह मेरी हार्दिक इच्छा है कि मुझे मेरी बाँसुरी मिले और फिर से मैं व्यस्त और समझदार लोगों से तिरस्कृत और अनदेखा किया जाउंगा एक नकारा, निराशाजनक और कभी न सुधरने वाले आदमी की तरह।’

क्या रवीन्द्रनाथ एक ज्यादा बड़े कवि होते अगर नोबेल पुरस्कार और उसके बाद उससे संबंधित प्रचार और ख्याति ने उनकी प्रसिद्धि में बाधा नहीं डाली होती और जिसकी वजह से उनकी प्रतिभा इतनी परिपक्व हो सकी थी? क्या उनकी आत्मा के अंदर दृष्टि ने और गहरी गहराईयों में थाह ली होती अगर सागर पर एक धर्म प्रचारक की तरह जल यात्रा करते ताकि आदमी-आदमी को और अच्छी तरह समझ सके और उसकी बजाय उन्होंने अपने अन्दर के सागर का मंथन किया होता? कौन कह सकता है कि क्या होता, अगर यह होता और वह न होता? ये सब बेकार व अटकलें है : ‘एक अगर लगाकर तुम सारे पेरिस को बोतल में डाल सकते हो’ (एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी कहावत है)।

यहाँ महत्वपूर्ण बात यह है कि इतने प्रलोभन, विकर्षण और यदा-कदा विपथगमन के बावजूद रवि बाबू कभी भी अपने कर्त्तव्य से ज्यादा नहीं भटके, जो एक कवि और गायक, मनुष्य और प्रकृति प्रेमी एवं एक भक्त जो व्यक्ति सत्ता में दिव्य सच का दर्शन करता है और दिव्य से मनुष्य का आह्वान करता है। दरअसल, कोई यह भी कह सकता है कि छोटे पश्चिमी अवकाश और सामयिक अंतरालों पर धर्म प्रचार उत्साह की बौछारें एक विकर्षण थीं। यह एक स्वस्थ विपथन था जो उनकी आत्मा व अधिकाधिक समृद्ध तथा उनके मानसिक क्षितिज को और विस्तार दे रहा था। चाहे वह उसकी वजह से या उसके ना होने की वजह से, तथ्य यह है कि रवि बाबू कभी-सर्जनात्मक होने से पीछे नहीं हटे, संसार की सर्वोत्तम मनीषा के साथ अपने जीवन अंतिम दिनों तक, जब तक उन्हें होश था, वे सदैव नवीन क्षेत्र में खोज करते और बांग्ला साहित्य और भाषा में नई उचाईयों की ओर जो आज तक अनछुई थीं, बढ़ते रहे। यहां तक

कि अपने खाली वक्त में भी वे इतनी श्रेष्ठ कोटि की रचना करते थे जिससे कि दूसरे लेखक प्रसिद्ध हो जाएं।

सच्चाई यह है कि कभी-कभी ऐसा अहसास होता था कि प्रेरणा छीज रही है, पताका की शक्ति और उन्होंने आदत से मुकाबले जीवन से कम पाया। ऐसे समय में वह उथले दोहराव से भरे और वासी प्रतीत होने लगते थे। इतनी अधिक यात्राएँ और बार-बार मंच पर आना, चापलूसों का घेराव और उच्च आदर्श की रक्षा के लिए अंतहीन यात्राएँ (जो बाद में विश्व भारती के लिए धन जुटाने में ढल गई) ये सब विकर्षण के लिए शायद ही सहायक हों-किसी सर्जनात्मक, वैचारिक, मनोदशा या फिर ध्यानशील अंतर्दृष्टि में। धीरे-धीरे वे अपने प्रशंसकों के झुडं के घेरे में घिर गए थे जिनमें से कुछ दरबारी परजीवी और चाटुकारों से कुछ बेहतर थे– जो उनकी प्रत्येक कृति, जो वे लिखते, बोलते उनके प्रत्येक कार्य की प्रशंसा करते और उनकी असल दुनियां के मध्य में दीवार की तरह खड़े थे। यह एक ऐसा खतरा है– जिसका पूरी दुनियां में महान् व्यक्तियों को सामना करना पड़ता है। लेकिन मूर्तिपूजकों के पारंपरिक घर भारत में यह सबसे खतरनाक है। मूर्ति तोड़ने वाले खुद ही मूर्ति बन बैठते हैं।

रवि बाबू ने खुद ही वे बेड़ियां तोड़ डाली जो उनके इर्द-गिर्द लिपटी या धीरे-धीरे बढ़ायी गई थी। वे सर्जनात्मक विचार के नये क्षेत्रों का संधान करते गये, अपनी सारी पुरानी उपलब्धियों को पीछे छोड़कर, कि चाहे कुछ भी हो, सबसे उँची चोटी या एक हरा-भरा चरागाह उन्हें बंदी नहीं बना सकता, इसका सबसे अच्छा निदर्शन हमारे पास उनकी प्रतिभा की अनंत तेजस्विता, उनकी इस अनजान की अनथक खोज, उनका विद्वत्तापूर्ण उत्साह और आध्यात्मिक चेतना। लेकिन इसका साक्ष्य अभी पाना शेष था।

यह बेचैनी की दौड़ थी, उस वक्त के दौरान जब रवि बाबू भारत में थे, लगभग उतने ही दिन शांति निकेतन में रहते थे जितने दिन वहाँ से बाहर । सम्पूर्ण विश्व उनका मंच था और शांति निकेतन उनका रिहर्सल करने का आदर्श स्टूडियो। उनके इस अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र पर जोर उनके शिष्यों और शिक्षकों ने फरवरी 1922 में मोलियर की तीसरी शताब्दी के उपलक्ष्य में दिया। कलकत्ता में जुलाई में रवि बाबू ने रोली के जन्म-शताब्दी समारोह की अध्यक्षता की। अगस्त और सितम्बर माह में एक नया संगीतमय कथाक्रम 'वर्षा मंगल' (वर्षा उत्सव) का रूपांतरण कर कलकत्ता के मंच पर प्रस्तुत किया। ये रचनाएँ कविता, नाटक, संगीत और नृत्य का एक मनमोहक संगम थी जो वर्ष में सम्मिलित त्रतुओं में होने वाले जातीय उत्सवों के लिए लिखी गई थीं, साथ ही वे जीवन का आनन्द और खुली हवा में सांस लेने का अवसर प्रदान करती थी। ये किसी बंधे बंधाये सांचे में नहीं ढली थीं. इनमें लोक और शास्त्रीय परम्पराएं आसानी से एक दूसरे से घुल-मिल जाती हैं जैसे कि दर्शन और चपल-वृत्ति, धार्मिक रहस्यवाद और समकालीन घटनाओं का धारावाहिक विवरण या आँखों देखा हाल।

माह सितम्बर 1922 ई. में रवि बाबू पश्चिमी और दक्षिणी भारत की लंबी यात्रा पर चल पड़े। बम्बई (मुम्बई) पुणे, मद्रास (चैनई) और दक्षिण के कई अन्य महत्वपूर्ण शहरों से गुजरते हुए वे अंत में श्रीलंका पहुँचे। उनका हर जगह स्वागत हुआ और जनता उन्हें सुनने के लिए लाखों की संख्या में पहुंचती। वापसी यत्रा में वे अहमदाबाद के साबरमती में गांधी जी के आश्रम गये। तब महात्मा जेल प्रवास में थे और रवि बाबू ने आश्रमवासियों और छात्रों को संदेश में विस्तार से समझाया, 'बलिदान का सही मतलब वही है, जो गाँधी जी चित्रित करते हैं।' उनका यह सीधा-साधा और घरेलू संदेश स्वाभाविक उद्‌गारों में व्यक्त हुआ, जिनमें महात्मा के व्यक्तित्व के प्रति गहरी श्रद्धा थी।

शांति निकेतन में दो माह व्यतीत करने के पश्चात् रवि बाबू एक बार पुनः पश्चिमी और उत्तरी भारत के दौरे पर चल पड़े। वे पश्चिम में कराची और गांधी जी के जन्म स्थान काठियावाड़ तक गये। अप्रैल माह में शांति निकेतन में लौटने के पश्चात् वे शीघ्र असम के मनोरम पहाड़ी शिलांग में गर्मियां बिताने चल पड़े। उन्हें रचनात्मक होने के लिए मात्र शांति जरूरी थी और इसलिए उन्होंने शिलांग में एक विशिष्ट नाटक लिखा– जिसका नाम उन्होंने 'रक्त करबी' रखा जो कि बाद में

अंग्रेजी में 'रेड ओलिएण्डर्स' शीर्षक से अनूदित और प्रकाशित किया गया।

उपर्युक्त नाटक भी इससे पूर्व लिखित नाटक 'मुक्तधारा' की तरह, रवि बाबू की आधुनिक सभ्यता के संग जुड़ी, प्राथमिक समस्याओं के प्रति बढ़ती चिंता को दर्शाता है। पूर्व का नाटक अधिग्रहित राज्यों की बर्बादी के लिए शिल्प विज्ञान की जानकारी के दानवी इस्तेमाल से संबंधित था, जबकि यह नाटक उससे भी ज्यादा मूल समस्या, जीवन में आस्था की स्वतंत्रता को उठाता है, जो कि पिसती जा रही है, एक मशीनी और सुगठित समस्या की भयंकर मशीन से जो मनुष्य को मशीनी-यंत्र बनाकर उनके नाम संख्याओं में बदल देती है। इस नाटक का मूल विषय है– सदियों पुराना व्यक्ति बनाम राष्ट्र स्वच्छंता के लिए प्रेरक और बाध्य करने की चाह, स्वतंत्र बुद्धि और शिथिल ज्ञान शक्ति के मध्य के संघर्ष जिसे 'यांत्रिक तकनीक' की बढ़ोतरी के साथ अहितकारी प्रस्थान तक पहुँचना है। नाटक का निरूपण वैशिष्ट्य रवि बाबू का है-आधा सच, आधा अन्योक्तिपरक, तर्क पूर्ण और रहस्यवाद परस्पर घुल-मिलकर नाटकीय संघर्ष को प्रत्यक्ष से प्रच्छन्न और विचारोत्तेजक और अंत को विश्वासोत्पादक की अपेक्षा रहस्यमय बनाते हैं।

सोने की खानों और बंधुआ मजदूरों की वजह से यक्षपुरी का राज्य फल-फुल रहा है, उसका राजा बंद फौलादी लौह दरवाजों में रहस्य, आतंक और विस्मय का नकाब पहने था (काफी पहले चर्चिल ने इस प्रतीक के बारे में सोचा था)। उसके नाम पर पुलिस का प्रमुख जमीन पर निष्ठुरता से कोड़े और धार्मिक अंधविश्वासों का विवेकपूर्ण इस्तेमाल कर राज करता है। एक पीड़ित कहता है– वह एक ही डोर है जो माला गूथंती और चाबुक बनाती है। इस 'साहसिक नये विश्व' में नंदिनी नाम की एक युवा और जिद्दी लड़की जो किसी से नहीं डरती और जिसका सौन्दर्य सबको मोह लेता है, आती है। वह इस स्वीकृत व्यवस्था को उलट-पुलट देती है, सिर्फ मजदूरों को आंदोलनकारी बनाकर ही नहीं, अपितु राजा को बहलाकर खुद ही उसे उसकी छुपने की जगह से बाहर लाकर खड़ा कर देती है। जब वह देखता है कि उसके अनुचरों ने उसकी प्रजा को क्या से क्या बना दिया है, तो वह खुद ही अपने सरदारों के खिलाफ आंदोलन का नेतृत्व करता है लेकिन नंदिनी के परमप्रिय साथी रंजन, एक साहसी और उत्साही जवान, जो सरकारी काम में जाने से मना करता है, के मरने के बाद।

रवि बाबू के पास एक तीर्थ यात्री-सा धर्मोत्साह था। अपने देश का दौरा करने पर संतुष्ट न होने की वजह से उन्होंने चीन की यात्रा करने की सोची। एक हजार साल बीत चुके थे जब बौद्ध भिक्षुकों का अंतिम दल अपने स्वामी का शांति और सहानुभूति एवं करुणा का संदेश लेकर उस धरती पर गये थे। रवि बाबू दोनों देशों के बीच परम्परागत सांस्कृतिक संबंधों को दोबारा स्थापित करना चाहते थे, जो इतने समय से टूटे हुए थे। वे कामयाब नहीं हुए। वे हो भी नहीं सकते थे, क्योंकि इस दैरान चीन और भारत कुछ ज्यादा ही दूर चले गये थे और धरती अपनी किण्व के बुलबुले में थी। चीन का बुद्धिजीवी वर्ग अपने पारंपरिक मूल्यों और सद्‌गुण से अधीर हो गया था और पश्चिम की तरफ खिंच रहा था। वह यह स्वीकार कर चुका था कि राष्ट्रीय एकता, सांसारिक सामान्य बुद्धि और विज्ञान एवं तकनीक के कठोर प्रयोग से ही उनका पारंपरिक देश उस दलदल से निकल सकता है- जिसमें वह धंसा हुआ है। रवि बाबू की रहस्यात्मक अंतर्दृष्टि के मुकाबले वे बर्टेण्ड रसेल के विवेकपूर्ण संदेहवाद से अत्यधिक प्रभावित थे। वे भारतीय कवि को प्रतिक्रियावादी, आदर्शवादी, अनावश्यक, अव्यावहारिक दिव्य दर्शन द्रष्टा और उनकी यात्रा को महत्वहीन समझते थे– हालांकि उनमें शत्रुता की भावना नहीं थी। रवि बाबू उनके ये तेवर और क्रोध समझ गये और उस दृष्टिकोण को भी, जो वे भारत में देख चुके थे और उनके व्याख्यान जिनमें ज्यादातर बिना किसी तैयारी के यह प्रदर्शित करते हैं कि वे किस सहानुभूति और समझ के साथ चीनी दिमाग के पास गये थे। वे व्यक्तिगत, मित्रतापूर्ण स्मरणशील होते हुए भी आमतौर पर मुंहफट और युद्ध के विरुद्ध स्पष्टवादी थे। राष्ट्रीय शत्रुता और सांसारिक प्रगति की अंधाधुद पूजा पाठ बनाकर उसकी पूजा करते हुए उन्होंने जल्दी ही शत्रुता भरी आलोचना को निरस्त कर कई प्रगतिशील

बुद्धिजीवियों पर विजयश्री पायी।

रवि बाबू ने छह हफ्ते जापान के अपने प्रवास में कई व्याख्यान दिये और फिर जुलाई के उत्तरार्द्ध में भारत लौटे। उनकी चीन और जापान यात्रा एशिया के इतिहास में पहली सचेतक कोशिश थी जिसके कारण उसी साल सितम्बर में शंघाई में 'ऐशियाटिक एसोसियेशन' ने एशिया की एकता का विचार पैदा किया। इस घटना की जानकारी देते हुए बोस्टन के 'क्रिश्चियन सांइस मॉनीटर' ने लिखा 'एशियाई देशों में आम परंपराओं के आधार पर एशियाटिक मैत्री स्थापित करने के महत्वपूर्ण आंदोलन की ओर कदम बढ़ चुके हैं। इसकी प्रेरणा मिली है रवि बाबू की सुदूर-पूर्वी साम्प्रतिक यात्रा से जिसमें उन्होंने पाश्चात्य भौतिकवाद का विरोध कर आदर्शवाद के धर्म सिद्धान्त का पाठ पढ़ाया। यह नये विचार दिख रहे हैं। एशियाटिक एसोसियशन के मुख्य केन्द्रों के स्थापित होने पर जिसमें से सबसे पहला शंघाई में स्थित है... इस आंदोलन को प्रेरणा देने के लिए रवि बाबू की शिक्षाओं के प्रति आभार व्यक्त किया गया जो कि इन घोषणाओं के द्वारा जारी किया गया। जैसा कि कलकत्ता के 'हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड' ने समुचित संकेत भी किया था- - 'यह सम्मेलन इस तरह एशियाई संबंध कांफ्रेंस जो कि दिल्ली में 23 साल बाद आयोजित हुआ था- का पूर्वज था।' भारत की स्वतंत्रता में यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि परवर्ती सभा जो कि रवि बाबू की अपनी धरती पर हुई, उसका नाम तक नहीं लिया गया। राजनीतिज्ञों की स्मृति बहुत कमजोर या चालाक होती है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर मुश्किल से घर पर दो महीने ठहरे होंगे कि फिर विश्व के दूसरे कोने को निकल पड़े। इस बार पेरू गणतंत्र की तरफ से स्वतंत्रता प्राप्ति के सौ साल पूरे होने के उपलक्ष्य में निमंत्रण था। इस तरह सितम्बर 1924 में वे नये विश्व के लिए वृद्ध, जर्जर और अपने अंत की प्रतीक्षा करते हुए उन्होंने इसे अपनी अंतिम कविताओं में जगह दी (शेषलेखा) :

'मैंने यह चाहा था कि एक बार फिर
मैं अपना रास्ता ढूंढूँ
उन विदेशी जगहों को जहाँ प्रेम का
संदेश मेरी प्रतीक्षा में है।
कल के सपने पंख लगाकर उड़ते आयेंगे
और धीरे-धीरे अपने नये घोंसले में फड़फड़ायेंगे।
पुरानी स्मृतियां बांसुरी को
उनकी खोई लय में संजोयेंगी।
मैं नहीं जानता उसकी भाषा,
लेकिन जो कुछ उसकी आँखों ने कहा था
वह हमेशा के लिए मनोव्यथा में मुखर रहेगी।'

(द्रष्टव्य- रवीन्द्रनाथ ठाकुर : एक जीवनी पृ.-130 अनु. अजीत साहा)।

कवि और उसके साथी एलम्हर्स्ट ने जनवरी 1925 को अपनी मेजबान से विदा ली और 'ब्यूनेस-आयस' के लिए रवाना हुए। उन्हें जल्दी इसलिए थी कि उन्हें अपनी गलती का एहसास हुआ कि जब उनके देश को उनकी जरूरत है तब वे खुशी और आनंद मना रहे थे। लेकिन जब वे अपनी धरती पर वापस लौटे तो उन्हें ऐसा लगा कि उनकी वह खुशी रचनात्मक थी और लंबी दौड़ में सहायता करने वाले से सर्जनात्मक होकर ज्यादा अच्छा किया। विक्टोरिया ओकाम्पो को उसी साल अगस्त माह में शांति निकेतन से लिखे पत्र में उन्होंने बड़े रोचक ढंग से अपने विचार को लिखा– 'तुमने पत्र लिखकर दुख प्रकट किया कि मैं तुम्हारे नदी किनारे वाले सुदंर घर में ग्रीष्म के अंत तक नहीं रुक पाया। तुम्हें नहीं पता कि मैं कितनी बार सोचता हूँ कि मैं ऐसा कर पाता। इसमें कुछ दायित्वपूर्ण प्रलोभन की प्रेरणा थी जो मुझे उस मधुर कोने से व्यर्थ एवं निष्क्रिय लगते रहने से खींच लाई थी, लेकिन मुझे आज यह पता चलता है कि जब मैं उन अलस घड़ियों की छांव में बैठा रहता था तब शर्मीली कविताओं के फूल उमड़ कर मेरी टोकरी भर रहे होते थे। मैं तुम्हे विश्वास दिलाता हूँ कि जब तक मेहनत से बनाये गये मेरे रचनात्मक कार्यों के खंभे गुमनामी में टूट-टूटकर चूर नहीं हो जायेंगे तब तक काफी लंबे समय तक ये फूल ताजा रहेंगे।

गुरुदेव के देश लौटने के कुछ ही दिन बाद उनके अग्रज भ्राता ज्योतिरिन्द्रनाथ का स्वर्गवास हो गया। इतने प्रतिभाशाली भाई जो संकटकालीन किशोरावस्था के दौरान उनके अभिन्न मित्र और सलाहकार बने रहे, उनकी मृत्यु से वह बहुत गहराई तक हिल गये। लेकिन उन्होंने

अपनी भावनाएं अपने तक ही सीमित रखीं। वे इतना शोक झेल चुके थे कि जैसे स्थितप्रज्ञ हो गए थे। फिर हैसियत से इटली से अधिक विश्वभारती को भेजा, साथ ही इटली की बहुमूल्य पुस्तकों का संग्रह विश्वविद्यालय को उपहार स्वरूप प्रदान किया। वर्ष समाप्ति के पहले रवि बाबू ने कलकत्ता में इंडियन फिलॉसॉफिकल काँग्रेस के प्रथम सत्र की अध्यक्षता की जहाँ उन्होंने भारत के लोक-धर्म और लोक-परंपराओं की दार्शनिक सार्थकता पर व्याख्यान दिया। नव वर्ष के कुछ ही समय बाद वे अखिल भारतीय संगीत सभा में भाग लेने के लिए लखनऊ गये। उस संगीत समारोह के बीच उन्हें अपने बड़े भाई द्विजेन्द्रनाथ के निधन का समाचार मिला जो एक संभ्रांत और सौम्य दार्शनिक तथा गणितज्ञ थे। एक-एक करके उनके सारे पुराने संबंध टूट रहे थे। द्विजेन्द्रनाथ एक सच्चे दार्शनिक थे जिन्होंने अपनी समस्त जानकारी और प्रतिभाओं को तात्विक रूप में स्वीकार किया और न तो पहले कोई प्रदर्शन किया और न बाद में कुछ बनाया। वे सिर्फ रवीन्द्रनाथ के लिए ही 'बड़ों दादा' (बड़े भाई) नहीं थे, गांधी और एंड्रयूज समेत सबके लिए थे जो उनसे काफी घुले मिले थे। महात्मा बोले, बड़ों दादा की मृत्यु ने हमारे बीच से एक मनीषी, दार्शनिक और देशभक्त को उठा लिया है। वे गाँधी के ज्यादा निकट थे क्योंकि वे छोटे भाई की अपेक्षा सच्चे हृदय से गांधी जी के चरखा कातने के कार्यक्रम में विश्वास करते थे।

ढाका विश्वविद्यालय के निमंत्रण पर रवि बाबू ने व्याख्यानों की शृंखला में पूर्वी बंगाल के कई शहरों का दौरा आरंभ किया। शांति निकेतन लौटते समय एक पौराणिक बौद्ध गाथा के आधार पर, जिसका उन्होंने पहले एक कविता में प्रयोग किया था, एक नाटक 'नटीर-पूजा' (नृत्यांगना की पूजा) लिखा। यह रवि बाबू का एक सीधा-सादा नाटक था, हृदयस्पर्शी और प्रतीकात्मक अभिप्रायों और विद्वत्तापूर्ण आडंबरों से सर्वथा मुक्त जो उनके दूसरों नाटकों को एकदम रहस्यमय और चित्ताकर्षक बना देते हैं। इसका मुख्य कथन है– एक साधारण धार्मिक मनोभाव जो कि पराकाष्ठा की हद तक पहुँचता है, जब कहानी का दुखद अंत समर्पण जन्य भक्ति में होता है।

बुद्ध ने वेदों के अमोघत्व और हिन्दू जाति के धर्म तंत्र को ललकारा था-किसी दिव्य सत्ता की पूजा सिर्फ इस या उस जाति का एकाधिकार नहीं हो सकता, न ही इसका भाव हमेशा के लिए किन्हीं वेदों की संरचना में कैद किया जा सकता है। सच्ची पूजा वही है जब हम सर्वोत्तम सत्य के आह्वान पर आत्मसपर्मण कर देते हैं और मुनि अपनी विद्या, मनुष्य अपने कर्मफल, कवि अपने गीत, नटी अपना नृत्य समर्पित कर देती है। इस तरह नृत्यांगन अपनी भक्ति और समर्पण द्वारा आत्मसमर्पण के बल पर अपनी विकृतियों पर विजय पाती है और अपनी मृत्यु से अपनी आत्मा की तेजस्विता को न्यायसंगत ठहराती है।

इस नाटक की और एक विशेषता यह है कि इसमें कोई पुरुष पात्र नहीं है। आमुख में बौद्ध भिक्षुक को बाद में जोड़ा गया था ताकि लेखक, दर्शकों को मंच पर लेखक को देखने की अभीप्सा को शांत कर सके, भारतीय समाज की गहरी जड़ों तक यह पूर्वधारणा पर गहरी चोट करते हुए। इसके सारे पात्रों का चयन विश्वविद्यालय की छात्राओं और कुलीन घर की महिलाओं से किया, जिन्हें उन्होंने खुद प्रशिक्षित किया और पूर्वाभ्यास कराया। वे मंच पर अव्यावसायिक नृत्य प्रस्तुत करने में भी सफल हुए। उसके बाद वह पुरानी पूर्वधारणा गायब हो गयी और ध्यान दूसरी ओर चला गया। अब तो मंच नृत्य सिर्फ जनता के बीच सम्मानित मनोरंजन ही नहीं बल्कि परंपरागत भारतीय संस्कृति की व्याख्या करने का अनमोल माध्यम भी है। इस नृत्य की लय में, लास्य में जैसे गूंज उठा-उदार चरितान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्।

❐❐

– सोनाली निवास

हीरो शो रूम सर्विसिंग सेन्टर लेन,

लेनिन चौक, मुजफ्फरपुर-842001

चलभाष- 7979096971

Email:
dr.hari.kishore.prasad.singh.08@gmail.com

अपने परिवेश के प्रति सचेत है आज की ग़ज़ल

अशोक 'अंजुम'

'ग़ज़ल' आज हिंदी कविता की एक बहुश्रुत, बहुपठित विधा बन चली है इसमें दो राय नहीं। ग़ज़ल क्या, साहित्य की कोई भी विधा उस स्थिति में अधिक लोगों तक पहुँचती है जब पाठक व श्रोताओं को यह लगे कि इस रचना में तो उसके अपने ही जीवन की छवि है। इसमें तो उसके अपने सुख-दुख पिरोय गये हैं। वह रचना जो लोगों के घाव पर मरहम लगाये और अंधेरे में दीपक का कार्य करे। जीवन-व्यापार के विभिन्न क्षणों में जिसे उदाहरण की तरह प्रस्तुत किया जा सके। वह रचना जो जीवन की तपती दोपहरी में अचानक छा जाने वाले बादल के सदृश दिखाई दे। कबीर, तुलसी, रहीम, ग़ालिब आदि आज इसी गुण के कारण जीवित हैं। हिंदी ग़ज़ल ने भी इन गुणों को अपनाया। इसने सुन्दरी की देहयष्टि पर लफ्जों की कूची चलाना धीरे-धीरे कम किया और आम आदमी के सुख-दुख को अपना कण्ठहार बनाने में इसका विशेष रूप से रुझान दिखाई देने लगा। 70 के दशक में इस क्षेत्र में दुष्यंत कुमार का आगमन एक चमत्कार की तरह हुआ। दुष्यंत कुमार ने सर्वहारा वर्ग की चिंताओं को अपनी गजलों के शेरों में पिरोया और भविष्य के ग़ज़लकारों के लिए उदाहरण बन गये। यूँ तो दुष्यंत कुमार के पूर्व से ही हिंदी में ग़ज़ल की शुरुआत हो चली थी किंतु दुष्यंत कुमार ने ग़ज़ल को नया मुहावरा दिया तथा भाषा और भाव के स्तर पर उसे आम आदमी के अधिक नज़दीक लेकर आये। उसके कारण हिंदी कविता जगत में एक हलचल-सी मच गयी। उन्होंने कहा–

कहां तो तय था चरागां हरेक घर के लिए
कहां चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए।
न हो कमीज़ तो पांवों से पेट ढक लेंगे
ये लोग कितने मुनासिब हैं इस सफ़र के लिए।

इसके बाद तो ग़ज़ल में सामाजिक, राजनैतिक, पारिवारिक, सांस्कृतिक आदि विषय प्रमुखता से अपनी पैठ बनाते चले गए। ये सारे विषय आमआदमी के इर्द-गिर्द ही परिक्रमा लगाते हुए नज़र आने लगे। नीरजजी जैसे स्थापित गीतकारों को भी ग़ज़ल के आकर्षण ने अपने पाश में ले लिया और वे कहने लगे– वो और ही थे जिन्हें थी ख़बर सितारों की, मेरा ये देश तो रोटी की ही ख़बर में रहता है। रामअवतार त्यागी की ग़ज़लों में आम आदमी को लेकर जो तल्खी है वो कहीं अधिक तेज है–

चेहरे पढ़े हैं गौर से हर खासो-आम के
लिक्खा है हम गुलाम हैं, वह भी गुलाम के।
थोड़ी-सी पी चुके हैं, थोड़ी-सी और दो
चर्चे करेंगे बैठकर हम तब अवाम के।

यूँ तो स्व. बलबीर सिंह रंग ने दुष्यंत कुमार से पहले हिंदी ग़ज़ल को ऐसी अभिव्यक्ति दी थी, किन्तु आपकी ग़ज़लों का तेवर इतना तीखा नहीं रहा। श्री रंग की ग़ज़लों में पारम्परिकता का रंग अधिक दिखाई देता है। आज हिंदी ग़ज़लकारों की एक समृद्ध सूची हमारे सामने है। आज ग़ज़ल में हमें व्यवस्था से अंसतुष्टि, विसंगतियों पर प्रहार, व्यंग्य, राजनैतिक छल-कपट, दोहरे चरित्र, तमाम सामाजिक समस्याएं, रिश्ते-नाते, पारिवारिक परिदृश्य आदि आम आदमी से जुड़े विभिन्न चित्र दिखाई देते हैं। आज तमाम ऊर्जस्वी ग़ज़लकार अपने परिवेश के प्रति सचेत हैं और अपने अशआरों में उसकी सफल अभिव्यक्ति कर रहे हैं। डॉ. कुँअर बेचैन जब भूख और रोटी की बात करते हैं तब उसकी अपनी ही खुशबू होती है– हजारों खुशबुएं दुनिया में हैं पर उससे कमतर हैं, जो भूखे को किसी सिकती हुई रोटी से आती है।

आज का ग़ज़लकार अपने परिवेश के प्रति चिन्तित ही नहीं है वरन् अपने अशआरों में अपने जमीन से जुड़े होने की बात का ज़ोरदार पक्षधर भी है, उदयभानु 'हंस' कहते हैं– जन्म लेती नहीं आकाश में कविता मेरी, फूट पड़ती है स्वयं धरती से कोंपल की तरह। रहमत अली को रदीफ़ की तरह प्रयोग करके सशक्त ग़ज़लकार शिवओम अम्बर आज के आम आदमी की तस्वीर कुछ यूँ गढ़ते हैं–

आप ख़ुद अपने अहद का हाल है रहमत अली,
बाढ़, सूखा, भुखमरी, भूचाल है रहमत अली।
मुल्क-भर के पोस्टरों पे मुस्कराता है मगर,
आइने के सामने बेहाल है रहमत अली।

दुष्यंत जैसे तेवर के साथ ग़ज़ल को सजाने-सँवारने वाले ग़ज़लकारों में एक महत्वपूर्ण नाम अदम गोंदवी का भी है। आप कहते हैं–

न महलों की बुलंदी से न लफ्जों के नगीने से,
तमद्दुन में निखार आता है घीसू के पसीने से।
अब मर्कज में रोटी है, मुहब्बत हासिए पर है,
उतर आई ग़ज़ल इस दौर में कोठी के ज़ीने से।

साथ ही–

भूख के अहसास को शेरो-सुखन तक ले चलो,
या अदब को मुफलिसों की अंजुमन तक ले चलो।

आज की व्यवस्था और रहनुमाओं पर तीक्ष्ण प्रहार करते हुए चर्चित ग़ज़लकार डॉ. उर्मिलश ग़रीबों की नियति को कुछ यूँ लफ्ज देते हैं–

वो शख़्स ही कमीज़ उतारेगा इनकी कल,
कंबल जो दे रहा है ग़रीबों को दान में।

अथवा–

अल्सर के रोगियों को दवाएँ बुखार की,
क्या ख़ूब! क्या इलाज है आँखों के सामने।

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल ग़ज़ल के एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं, वे आदमी को अपनी ग़ज़ल के आइने में कुछ यूँ देखते हैं–

आदमी मज़बूर है, दुख-दर्द का मारा भी है,
और यह जीवन उसे हर हाल में प्यारा भी है।

दुख-दर्दों से जूझते हुए जीवन को प्यार करना वाकई जिंदादिली है। लेकिन इन दुख-दर्दों व आपाधापी के बीच हम संवेदनशून्य भी होते चले जा रहे हैं, और यह निश्चित ही बहुत भयावह स्थिति है। हरेराम समीप के शब्दों में–

शहर के चौक पे घायल पड़ा हुआ है समीप,
निकल गए हैं फ़क़त डालकर नज़र कितने।

'बहुत प्यासा है पानी' ग़ज़ल-कृति से ग़ज़ल के क्षेत्र में अपनी पुख़्ता पहचान बनाने वाले चर्चित हास्य व्यंग्य कवि प्रदीप चौबे की ग़ज़लों में व्यंग्य और परिवेश की जुगलबंदी देखते ही बनती है–

हर तरफ गोलमाल है साहब,
आपका क्या ख़याल है साहब।
रिश्वतें खाके जी रहे हैं लोग,
रोटियों का अकाल है साहब।

राजनेताओं द्वारा बस्ती को दिये जाने वाले आश्वासन जब खोखले निकलते हैं तब कमलेश भट्ट कमल जैसे ग़ज़लकार कैसे चुप रहें–

बादलों के वायदे हर रोज़ बारिश के,
बूँद के लाले मगर हर बार बस्ती में।

विज्ञान व्रत के लफ्जों में आम आदमी की व्यथा-

बरसों खुद से रोज ठनी, तब जाकर कुछ बात बनी।
इतने दिन बीमार रहा, ऊपर से तनख़ा कटनी।

और श्री लक्ष्मण कहते हैं–

ग़म अगर कुछ कह न पाए आदमी,
एक-दो आँसू बहाए आदमी।
रोज़ पाने के लिए कोई खुशी,
घर से कितना दूर जाए आदमी।

चर्चित ग़ज़लकार और ग़ज़ल की समीक्षा के क्षेत्र में गंभीर काम करके अपनी पुख़्ता पहचान बनाने वाले श्री अनिरुद्ध सिन्हा की आज के आदमी को लेकर चिंता है–

आज फिर सन्दर्भ से टूटा हुआ,
हाशिये पर चीखता है आदमी।

आज के वातावरण पर बड़ी तल्ख़ नज़र रखने वाले ग़ज़लकार श्री अशोक रावत भी हैं–

पुलिस लगी है कक्षाओं के भीतर भी और बाहर भी,
बंदूकों की ज़द में हैं अब स्कूलों के परिसर भी।
समझ नहीं पाता हूँ किसके सपनों का ये भारत है,
जिसकी संसद में जा पहुँचे क़ातिल भी औ तस्कर भी।

वातावरण का वहशियानापन भी ग़ज़लकार से कहाँ छिपता है। श्री गुलशन मदान के अनुसार–

फिर कोई होने को है क्या वहशियाना हादसा,
इस तरह छाई हुई है ख़ामुशी हर मोड़ पर।

सियासतदां की मन:स्थिति को बयान करते हुए श्री चन्द्रसेन विराट कहते हैं–

यहाँ सामान्यजन जो है चतुर वह हो नहीं जाए,
सियासत चाहती है ये उसे मतिमंद रहने दो

और श्री हस्तीमल 'हस्ती' की कहन का नज़ारा भी क़ाबिले-ग़ौर है–

ये मुँह ये कौर बीच में कितने बिचौलिये,
बेहाल किस तरह न हो ये पेट बोलिये।

इन पंक्तियों के लेखक अशोक 'अंजुम' ने भी आज के हालात के मद्देनज़र कुछ कहने का प्रयास किया है-

ऊपर वाले बड़े मज़े से खींच रहे हैं माल मियाँ,
लेकिन हमको नहीं मयस्सर हर-दिन रोटी-दाल मियाँ।
होरी औ धनिया की क़िस्मत लो अब बदली,
तब बदली, आज़ादी के बाद से
नेता बजा रहे हैं गाल मियाँ।

उपरोक्त उदाहरणों को आज के परिवेश पर ग़ज़ल की नज़र की बानगी भर ही कहा जा सकता है अन्यथा बालस्वरूप राही, मुनव्वर राना, शेरजंग गर्ग, मोहदत्त साथी, अश्वघोष, आलोक श्रीवास्तव, विनोद तिवारी, चाँद शेरी, आचार्य भगवत दुबे, सूर्यभानु गुप्त, रामकुमार कृषक, ओंकार गुलशन, अल्हड़ बीकानेरी,रमासिंह, राजगोपाल सिंह, सुरेन्द्र चतुर्वेदी, ज्ञानप्रकाश विवेक, रोहिताश्व अस्थाना, अशोक मिज़ाज, रामसनेहीलाल शर्मा, ज़हीर कुरेशी, अंसार कम्बरी, चन्द्रभाल सुकुमार, हरीलाल मिलन, राजकुमार चंदन, दिनेश सिन्दल, दीक्षित दनकौरी, अनन्त राम मिश्र 'अनन्त', सुल्तान अहमद, पुरुषोत्तम यक़ीन, सुरेश कुमार, राजेन्द्र तिवारी, अखिलेश तिवारी, मनोज अबोध, संतोष जैन, द्विजेन्द्र द्विज, डॉ. महेन्द्र अग्रवाल, मधुर नज़मी, नरेन्द्र गरल, डॉ. अनूप वशिष्ठ, आचार्य सारथी, शरद सिंह, वर्षा सिंह, कीर्ति काले, शशि जोशी, आलोक श्रीवास्तव आदि ग़ज़ल के क्षेत्र में निरंतर सक्रिय ऐसे सशक्त हस्ताक्षर हैं जो अपने परिवेश के प्रति पूर्णतया सचेत हैं।

❑❑

सम्पादक : 'अभिनव प्रयास',
स्ट्रीट-2, चन्द्र विहार कॉलोनी (नगला डालचंद)
क्वार्सी बायपास,
अलीगढ-202002
मो. 9258779744
ईमेल- ashokanjumaligarh@gmail.com

जब तक हम स्वयं निरपराध न हों, तब तक दूसरों पर सफलता के साथ कोई आक्षेप नहीं कर सकते।
- सरदार वल्लभ भाई पटेल

नाटक 'स्कंदगुप्त' पर छायावाद का प्रभाव

डॉ. परम प्रकाश राय

जयशंकर प्रसाद ने ऐतिहासिक नाटकों का सृजन साभिप्राय किया। प्रसाद का अपना युग राष्ट्रीय स्वाधीनता-आंदोलन से गहरे प्रभावित था। इस प्रभाव को सभी लेखकों-विचारकों ने अपने ढंग से लिया। प्रसाद अपनी दृष्टि का केंद्र इतिहास, संस्कृति और भावपक्ष को बनाते हैं। इस केंद्रीकरण से उनका अभिप्राय वर्तमान परिस्थितियों, समस्याओं और उसके समाधान के प्रति रचनाकार की प्रेरणा से ही था। प्रसाद का रचना-कर्म 1909 से 1937 ई. तक विस्तृत रहा। छायावाद नामक काव्य-आंदोलन 1918 से 1936 तक अपनी व्यापक उपस्थिति प्रसाद के रचना काल में दर्ज कराता है। प्रसाद, छायावाद के प्रमुख कवियों में थे। हिंदी काव्य-भाषा को समृद्ध करने में उनका बड़ा योगदान रहा है। इस कारण उनकी अन्य विधा-रचनाओं में भी इस भाषा का पूरा प्रभाव लक्ष्य किया जा सकता है। 1928 ई. में रचित 'स्कंदगुप्त' नाटक पर इसी प्रभाव का विश्लेषण करने का प्रयास इस आलेख में किया गया है।

छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियों में– संस्कृतनिष्ठ कोमलकांत पदावली का प्रयोग, स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह, कल्पनाशीलता, भाव-प्रवणता, रहस्यमयता, प्रकृति के प्रति गहरा आकर्षण, वैयक्तिक चेतना, नारी के प्रति नवीन उदात्त दृष्टि आदि हैं। 'स्कंदगुप्त' पर इन सभी प्रवृत्तियों की छाप हम पा सकते हैं। रोमांटिक भावबोध और प्रगीतात्मकता, छायावाद की अन्यतम विशेषताएं हैं। प्रसाद के नाटकों में गुम्फित कविताओं में यह प्रभाव देखा जा सकता है, गद्य-प्रसंगों में भी इस लयात्मकता की छाप स्पष्ट है। अन्य छायावादी कवियों की भाँति प्रसाद में भी भाव-पक्ष के साथ जिज्ञासा और दार्शनिकता का पुट मौजूद है। 'स्कंदगुप्त' में स्कंदगुप्त, देवसेना और मातृगुप्त- पात्रों में यह भावबोध उपस्थित है। स्कंद एक सच्चा देशभक्त है। वह अपनी अस्तित्वमूलक जिज्ञासा से निरंतर टकराता रहता है। मुख्य पात्रों का यह मानसिक द्वंद्व और उनकी जटिल परिस्थितियों का अंतः संघर्ष नाटक का केंद्र है, जो अंततः करुण-सुखांत[1] में परिणत होता है। आरंभ में ही स्कंदगुप्त का भावपूर्ण दार्शनिक वाक्य उसके चरित्र और नाटक की संपूर्णता को जैसे व्यंजित कर देता है– 'अधिकार-सुख कितना मादक और सारहीन है! अपने को नियामक और कर्ता समझने की बलवती स्पृहा उससे बेगार कराती है! उत्सवों में परिचारक और अस्त्रों में ढाल से भी - अधिकार-लोलुप मनुष्य क्या अच्छे हैं?'[2] इसी प्रकार गुप्त-साम्राज्य के परिवर्तन के संदर्भ में धातुसेन का यह वाक्य प्रसाद की 'कर्मशील' दृष्टि को सूचित करता है– 'इस गतिशील जगत में परिवर्तन पर आश्चर्य! परिवर्तन रुका कि महापरिवर्तन-प्रलय हुआ! परिवर्तन ही सृष्टि है, जीवन है।[3] इसी बात को और काव्यात्मक ढंग से 'कामायनी' में प्रसाद कुछ कस प्रकार व्यक्त करते हैं– *'पुरातनता का यह निर्मोक सहन करती न प्रकृति पल एक, नित्य नूतनता का आनंद किये है परिवर्तन में टेक।'[4] इसी प्रसंग में सहज ही एक अन्य*

प्रसिद्ध छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत की कविता 'परिवर्तन' का स्मरण हो आता है।

मातृगुप्त के रूप में एक कवि-पात्र का नाटक में सृजन कर प्रसाद को कल्पना, भावुकता और दार्शनिकता का संयोजन करने का अच्छा अवसर मिला है। नाटक में मातृगुप्त का कथन है- 'अमृत के सरोवर में स्वर्ण-कमल खिल रहा था, भ्रमर वंशी बजा रहा था, सौरभ और पराग की चहल-पहल थी।...उस अतीन्द्रिय जगत् की साकार कल्पना की ओर मैंने हाथ बढ़ाया ही था कि वहीं स्वप्न टूट गया।[5] धातव्य है कि प्रसाद ने राष्ट्र पर पड़ी आपत्ति के होम में मातृगुप्त को भी अर्पित किया है, उसे कोरा भावुक नहीं बनने दिया है।

छायावाद महज कल्पना, भावुकता, प्रकृति और रहस्यमयता का ही संघटन नहीं था, अपितु वह राष्ट्रीय, सामाजिक और सांस्कृतिक सन्दर्भों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति भी था। 'स्कंदगुप्त' के सभी सकारात्मक पात्र देश पर आई विपत्तियों- मसलन शकों, हूणों, पुष्यमित्रों आदि से युद्ध, बौद्धों-ब्राह्मणों का सांप्रदायिक संघर्ष, युद्धोत्तर पीड़ित जनता, अंतर्कलह आदि - का समाधान करने में प्राण-पण से जुटे रहते हैं। धातुसेन और मातृगुप्त के माध्यम से प्रसाद ने 'भव्य-भारत' का चित्र खींचा है। अंग्रेजों की दासता से पीड़ित भारतीय जनता और स्वाधीनता आंदोलन में अपना सर्वस्व अर्पित करने को आतुर भारतवासी 'स्कंदगुप्त' में साकार हो उठे हैं। स्वयं स्कन्द में जिस अधिकार-भाव की उपेक्षा और सभी का संघटन कर पुनः राष्ट्र को उबारने का भाव तथा क्षमा, दया आदि उदात्त चारित्रिक गुणों का चित्र दिखाई पड़ता है, वह कहीं-कहीं भारतीय स्वाधीनता-आंदोलन के नेतृत्वकर्ता महात्मा गाँधी का प्रतिबिम्बन दिखता है। 'राष्ट्रनीति, दार्शनिकता और कल्पना का लोक नहीं है। इस कठोर प्रत्यक्षवाद की समस्या बड़ी कठिन होती है।'[6] पर्णदत्त का यह वाक्य छायावादी कल्पनातिरेक से आगे बढ़कर राष्ट्रीय और सामाजिक सन्दर्भों में सोचने की प्रसाद की व्यापक दृष्टि का प्रमाण है; साथ ही छायावादी पलायनवादिता के आरोपों का प्रत्याख्यान भी।

मातृगुप्त, जयमाला अथवा अन्य चरित्रों के ओज और हुंकार से भरे अनेक कथन नाटक में बिखरे पड़े हैं जिन्हें देखकर एक अन्य छायावादी कवि निराला की पंक्तियां बरबस स्मरण हो आती हैं– पशु नहीं, वीर तुम, समर शूर, क्रूर नहीं, कालचक्र में हो दबे, आज तुम राजकुँवर! समर-सरताज![7] प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक औपनिवेशिक शासन-तंत्र द्वारा देश के परंपरागत इतिहास का ध्वंस कर उसे पूर्णतः उपनिवेशवादी हाथों से गढ़ने की प्रक्रिया के खिलाफ प्रति-औपनिवेशिक कार्रवाई है। ये नाटक भारतीयों को 'कायर और डरपोक नस्ल' की उपाधि देने वाले जेम्स मिल जैसे इतिहासकारों का साहित्यिक प्रत्याख्यान है। 'राज्यश्री' (1915) से लेकर 'ध्रुवस्वामिनी' (1933) तक का पूरा क्रम इतिहास के उन खण्डों की हमें सैर कराता जाता है, जो हमारे वर्तमान राष्ट्रीय सन्दर्भों में अत्यंत प्रेरणादायी हैं।

'शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त विकल बिखरे हैं हो निरुपाय; समन्वय उनका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय!'[8] इन पंक्तियों के माध्यम से प्रसाद, बिखरी हुई शक्तियों के नियोजन का संदेश देते हैं। विश्व-चेतना में आत्म-चेतना का संयोग उनकी इसी दृष्टि का परिचायक है। इसीलिए वे 'आँसू' में कहते हैं– *'सब का निचोड़ लेकर तुम/ सुख से सूखे जीवन में/ बरसो प्रभात हिमकन सा/ आँसू इस विश्व-सदन में।'* यह वेदना का अद्वैत है।[9] व्यथा या पीड़ा निश्चय ही छायावाद की आंतरिक शक्ति रही है और यह पीड़ा दुखदग्ध-जगत् से ही पैदा हुई है जिसे उन्होंने प्रेम, सेवा और आत्म-विसर्जन के विवेक-भावित मूल्यों द्वारा अधिक मूल्यवत्ता प्रदान की है।[10] स्कंद, देवसेना, पर्णदत्त, बन्धुवर्मा आदि सभी सकारात्मक पात्रों में इसकी योजना की गई है। धातुसेन और प्रख्यातकीर्ति द्वारा ब्राह्मण-श्रमण विवाद के निपटारे में धातुसेन द्वारा भारतीय तपस्वियों की यह व्याख्या– *'सर्वेअपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।/ सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुः खमाप्नुयात्।।'*[11] - प्रसाद की उपर्युक्त विश्वदृष्टि और उदात्त मूल्यों की परिचायक है।

मैथिलीशरण गुप्त ने उपेक्षित नारी-पात्रों को कविता का केंद्रीय-विषय बनाया था, परन्तु वे अधिकतर दया, सहानुभूति और श्रद्धा की पात्र ही बनी रहीं। छायावाद ने उसे 'मंदिर के दीपक-सी' पवित्र और श्रद्धामय बनाया,

उसके सौंदर्य का नवीन अर्थोद्घाटन किया तथा कर्म-क्षेत्र में मानव की उदात्त और साहसशील प्रेरणा का स्रोत भी बनाया (जैसे- 'कामायनी' की श्रद्धा और इड़ा)। 'स्कंदगुप्त' में भी नारी-पात्रों का विशेष महत्त्व है। इसमें पुरुष की पथ-प्रदर्शिका प्रायः नारी ही है। रामा शर्वनाग को, कमला भटार्क को सत्पथ दिखाती हैं। देवसेना स्कंदगुप्त को क्षणिक दुर्बलता से उपर उठाती है। मानव की कोमल कल्पनाओं तथा सत्प्रवृत्तियों की साक्षात् मूर्ति देवसेना नारी जाति को गौरवान्वित करने वाली है। नाट्य-साहित्य में नारी की इतनी उच्च-कल्पना प्रसाद जी की सबसे बड़ी देन है।[12]

'स्कन्दगुप्त' में गीतों की सृष्टि भी अधिकतर सटीक है। देवसेना संगीत से प्रेम करती है। उसका चरित्र प्रेम-प्राप्यहीना, किंतु स्वाभिमानी और देश पर सब कुछ न्यौछावर कर सकने वाली स्त्री का है। 'भरा नैनों में मन में रूप', 'घने प्रेम तरु तले', 'सब जीवन बीता जाता है' जैसे गीतों की सृष्टि देवसेना के माध्यम से की गई है। मातृगुप्त ने 'हमारा प्यारा भारतवर्ष' नामक लंबे गीत के माध्यम से 'भव्य-भारत' की विस्तृत छवि उकेरी है। नाटक के सभी गीतों में पूर्ण छायावादी प्रभाव है– कल्पना, भावुकता, संस्कृतनिष्ठ कोमलकांत पदावली, लयात्मक और आलंकारिक पद-विधान आदि। प्रसाद के नाटकों में वैयक्तिक अनुभूति की खोज का भाव बारम्बार सामने आता है। 'स्कन्दगुप्त' में नारी-पुरुष के प्रेम-संबंधों के मूल्य की खोज उनकी वैयक्तिक अनुभूति के भीतर से ही की गई है। इस प्रेम के मूल्य-चित्रण में प्रसाद स्वार्थ-लिप्त भोग-परायण रूप को नहीं, अशरीरी रोमांटिक भावना को महत्त्व देते हैं। इसीलिए देवसेना का चरित्र विशिष्ट हो उठता है।

आधुनिक जीवन की बढ़ती जटिलताओं और मानव के व्यक्तिगत आंतरिक संघर्ष तथा सामाजिक प्रश्नों के प्रति आग्रह के बीच की बढ़ती दूरियों को दर्शाना और कुछ हद तक उसके समाधान हेतु मार्ग प्रशस्त करना रचनाकार का दायित्व है। छायावाद ने अपनी सीमाबद्धता और व्यापकता में यह काम अपने ढंग से किया। सांकेतिकता, सूक्ष्मता और रहस्यपरकता उसके प्रमुख साधन थे। हिन्दी रचना और भाषा को समृद्ध करने के साथ ही उसने अपने युग को प्रतिध्वनित किया– सामाजिक घटनाओं के 'अनुवाद' रूप में नहीं, अपने विशिष्ट 'आभ्यंतरीकरण' द्वारा कला का रूप देकर। जयशंकर प्रसाद के नाटक इस युग के प्रतिध्वनन की विशिष्ट अभिव्यक्ति हैं- अपनी सांस्कृतिक-ऐतिहासिक वर्तमानता के साथ और व्यक्ति के अपने अंतर्द्वन्द्व तथा उसके समाज के साथ के समीकरणों का प्रौढ़ रूप 'स्कन्दगुप्त', उनमें प्रमुख है। आत्मसम्मान और प्रणय के संघर्ष का रोमांटिक-बोध जहाँ 'ट्रैजिक छाया' की सृष्टि करता है, वहीं राष्ट्र के प्रति व्यष्टि और समष्टि के सम्मिलन का आह्वान भी। इसीलिए, छायावादी 'राष्ट्रीय-चेतना' का यह प्रतिनिधि नाटक है।

संदर्भ

1. ओझा, दशरथ, 'हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास', राजपाल एंड सन्ज़, दिल्ली, 2008, पृष्ठ सं. 209। **2.** प्रसाद, जयशंकर, 'स्कन्दगुप्त', राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ सं. 37। **3.** वही, पृष्ठ सं. 52। **4.** प्रसाद, जयशंकर, 'कामायनी', राजपाल एंड सन्ज़, दिल्ली, 2017, पृष्ठ सं. 21। **5.** प्रसाद, जयशंकर, 'स्कन्दगुप्त', राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ सं. 50। **6.** वही, पृष्ठ सं. 39। **7.** निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी, 'राग-विराग', संपादनः रामविलास शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, 2008, पृष्ठ सं. 59। **8.** प्रसाद, जयशंकर, 'कामायनी', राजपाल एंड सन्ज़, दिल्ली, 2017, पृष्ठ सं. 22। **9.** चतुर्वेदी, रामस्वरूप, 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास', लोकभारती प्रकाशन, 2010, पृष्ठ सं. 112। **10.** जयशंकर प्रसाद की कथा-रचना दृष्टि, पत्रिका : 'छायानट', अक्टूबर-दिसम्बर 1990 अंक। **11.** प्रसाद, जयशंकर, 'स्कन्दगुप्त', राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ सं. 138। **12.** ओझा, दशरथ, 'हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, राजपाल एंड सन्ज़, दिल्ली, 2008, पृष्ठ सं. 213।

❒❒

सहायक आचार्य, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया;
मो. 9650869488
ई-मेल : raiparamprakash@gmail.com

कश्मीरी साहित्य के सूत्रपात में ललद्यद का अभिदान

छविन्दर कुमार

सारांश : कश्मीर की मीरा कही जाने वाली कवयित्री ललद्यद का कश्मीरी साहित्य जगत में एक बहुत बड़ा अभिदान रहा है। कश्मीरी साहित्य का आविर्भाव जब हुआ तो उसे पोषित करने में ललद्यद का भी अभिदान है। इस काल खण्ड में जहां आम प्रजा बाह्य आक्रान्ताओं के आतंक से त्रस्त थी तो दूसरी तरफ समाज में व्याप्त धार्मिक रुढ़ियों व अन्धविश्वासों से जकड़ी हुई थी। ललद्यद जैसे अनेक सन्त इस अन्धकार को देखकर त्रस्त थे और उन्होंने अपने दृढ़ संकल्प और भक्ति से इन कुरीतियों को दूर कर लोगों को प्रेम मार्ग की ओर अग्रसर किया और इसमें काफी हद तक वो सफल भी हुए। यदि हम यूं कहें कि सन्त कबीर, सूरदास, तुलसी दास, मीराबाई ने जो पुनीत कार्य भारतीय समाज के हितार्थ किया वही कार्य कश्मीर में ललद्यद ने किया। (**बीज शब्द :** प्रेम, अध्यात्म, अभिदान, अस्मिता, निर्गुण, सम्प्रदाय।)

प्रस्तावना : यह धरा पुरातन काल से ऋषि- मुनियों कवियों की पसन्दीदा रही है, ऐसे में साहित्य सृजन की परम्परा अनवरत चलती रही। काव्यशास्त्र कश्मीरी कवियों के मस्तिष्क की उपज थी। काव्य में इतिहास सृजन के श्रीगणेश का श्रेय भी कश्मीरी कवियों को जाता है। कश्मीरी भाषा में प्रारम्भिक साहित्य का सूत्रपात शारदा लिपि में हुआ। ये लिपि आठवीं शताब्दी के लगभग विकसित हुई। भाषा विज्ञान की दृष्टि से बात करें तो शारदा ब्राह्मी लिपि की पश्चिमी शाखा से विकसित हुई। उस काल खण्ड में शारदा लिपि को प्राचीन भारतीय लिपियों में अनुपेक्ष्य स्थान प्राप्त था। कश्मीर का सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य शारदा लिपि में ही प्राप्त होता है। इस लिपि का प्रयोग कश्मीर प्रान्त के अलावा पंजाब के समतल क्षेत्रों व देव भूमि हिमाचल प्रदेश के गिरि क्षेत्रों में संस्कृत भाषा को लिखने के लिए किया जाता था। शारदा लिपि के कई शिलालेख भी मध्य एशिया और मध्य तुर्कीस्तान के भिन्न-भिन्न भागों में प्राप्त हुए हैं। दूसरे लगभग दसवीं शताब्दी में पंजाबी भाषा की लिपि का उद्भव और अभ्युदय भी शारदा लिपि में हुआ।

बारहवीं शताब्दी के उपरान्त कश्मीर में संस्कृत भाषा लिखने के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग भी होने लगा था। वर्तमान में शारदा लिपि का प्रचलन कश्मीर में कहीं दिखाई नहीं देता है। कश्मीरी पंडित भी कश्मीरी भाषा के लिए देवनागरी लिपि का ही प्रयोग करते हैं। 17वीं शताब्दी तक जब कश्मीर में मुस्लिम शासन की स्थापना हो चुकी थी और उसके पश्चात् भी हिन्दू- मुस्लिम विद्वानों के द्वारा ये लिपि प्रचलन में रही। ये शायद इस लिपि का दुर्दैव रहा कि बाद में इसे धर्म की दृष्टि से देखा जाने लगा। कश्मीर में 13वीं शताब्दी से पूर्व संस्कृत, प्राकृत और कश्मीरी के अलावा कोई वैकल्पिक भाषा नहीं थी। कश्मीरी भाषा अपने शैशव काल में शारदा लिपि में और मुस्लिम शासन स्थापित होने के पश्चात् अरबी-फारसी अर्थात नस्तालिक लिपि में लिखी जाती थी।[1] वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसमें कुछ संशोधन करके इसका प्रयोग किया

जाता है। कश्मीरी भाषाविद जो कश्मीर से बाहर रहते हैं वो इसके लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग करते हैं। कश्मीरी भाषा के सन्दर्भ में भाषाविद डॉ. ग्रियर्सन इसका सम्बन्ध दार्दिक भाषा से जोड़ते हैं। बाल्टिस्तान एवं तंजीर नदी का मध्य भाग दरद देश नाम से जाना जाता है। दरदीय या पैशाची से कश्मीरी भाषा का सम्बन्ध माना जाता है।

लगभग सातवीं शताब्दी में कश्मीरी साहित्य का सूत्रपात 'छुम्म सम्प्रदाय' की गाथिका से माना जाता है जो पूर्णतः अध्यात्मवाद पर आधारित है। इस काल खण्ड में कश्मीर में अनेक सूफी कवि व साहित्यकार हुए। इन्होंने आत्मा और परमात्मा के मिलन को आधार बनाकर अनेक ग्रन्थ लिखे। 'छुम्म सम्प्रदाय' का एक गीत है– *यि कथ बोवे वोदि कम खये। नेर गाश बद पेयी वन्ते। समसारस न बची अगम गये। अगाद कथ नो चयन चे पोन्ते।।*[2] अर्थात कभी इस भ्रम को अपने अंतःकरण से निकाल दीजिए कि शिव शंकर को पहचानने के लिए कोई निश्चित मार्ग है। सत्य यह है कि उसका प्रकाश तथा ज्ञान बिना किसी क्रम अचानक ही पहुंच जाता है। उनकी ज्योति एवं स्वरूप को स्वयं में समाहित करना तथा स्वयं में शिव को देखना ही शिव को प्राप्त करना है।

ललद्यद कश्मीर में आदि कवयित्री के रूप में प्रसिद्ध है। उनका अवतरण ब्राह्मण परिवार में 1320 ईस्वी के आसपास स्वीकार किया गया है। विद्वानों का मानना है कि उनका वैवाहिक जीवन कष्टमय था। ललद्यद अत्यन्त सौम्य, सहिष्णु व उच्च कोटि की चिन्तक थी। उनके पद 'लल वाख' नाम से प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अपनी प्रखर प्रज्ञा के दम पर विश्वविख्यात सन्तों में अपनी विशिष्ट अस्मिता बनाई। जो स्थान हिन्दी के भक्तिकाल में कबीर दास ने बनाया था, वही ललद्यद को प्राप्त है। कबीर की तरह ही उनका दृष्टिकोण था। वे भी सत्य और प्रेम की सच्ची संरक्षक थी और सत्य के लिए चाहे प्राण भी न्यौछावर करने पड़े, उसके लिए तैयार रहती थी। ललद्यद तत्कालीन समाज में प्रचलित पाखण्ड धारणा, अन्धविश्वास, रूढ़िवादी सोच के विरुद्ध थी। उनके जीवन में असंख्य ऐसे कटु अनुभव थे जिनका उनके साहित्य में प्रयोग मिलता है। 'वाख' में ललद्यद की मानसिकता का परिचय मिलता है। वे जीवन की विषमताओं से परिचित थी और अपने जीवन से सम्बन्धित विषादग्रस्त परिस्थितियों से भी विवश थी और उनसे स्वयं को छुड़ाना चाहती थी। यही कारण है कि उनके साहित्य में जीवन से सम्बन्धित विविध समस्याएं, परिस्थितियां, उत्थान व पतन जैसे सन्दर्भ दिखाई देते हैं। उनके 'वाख' में शिव शंकर भगवान शीर्ष पर और सर्वोपरि हैं। उन्होंने परमेश्वर की सत्ता को स्वीकार कर अपना सम्पूर्ण जीवन एक यायावर फकीर की तरह व्यतीत किया।[3]

ललद्यद ढोंग एवं पाखण्ड विरोधी थी। धार्मिक भेदभाव व मूर्ति पूजा का खुलकर विरोध किया। हर दृष्टि में कबीरदास की तरह दिखाई देती है। शिव को वे निर्गुण ब्रह्म और निराकार रूप में मानती है। संसार की वस्तुओं में भगवान शिव विराजमान हैं। शिव हर जगह या सर्वत्र विराजमान हैं। धर्म को कटघरे में खड़े कर हिन्दू-मुस्लिम परस्पर मर-कट रहे हैं जो मूर्खता है। चूंकि धर्म के ठेकेदार अपनी अस्मिता बनाने के लिए आम जनमानस को परस्पर धर्म के नाम पर लड़वाते हैं, जिससे किसी भी समाज या राष्ट्र का विकास नहीं हो सकता है। धर्म जाति व सम्प्रदाय के कारण उत्पन्न भेदभाव उन्हें जरा भी पसन्द नहीं था। 'सर्वधर्म और सर्वजन हिताय' उनके जीवन का मूल रहा है। मनुष्य एक ही है। रुधिर सभी में एक ही है, आत्मा सभी में एक सी है तो ये कैसा धर्म और कैसी विषमता? इस बात का जवाब वे उन ठेकेदारों से पूछती हैं जो ऐसा कुकर्म करते हैं, मनुष्य को मनुष्य का दुश्मन बनाते हैं। सर्वधर्म और सर्वजन पर कहती हैं– *'शिव छुय थूलि रोजान / मो जान होन्द मुसलमान/ त्रुक अयि छुक ति पान परजिनाव/ सोई छूयी साहिबस जानी जान।।*[4] अर्थात धरती के कण-कण में शंकर का वास है। शंकर भगवान के लिए हिन्दू-मुस्लिम कुछ नहीं है, उनके लिए तो वही श्रेष्ठ है जो इन चीजों से उपर उठकर परमार्थ करता है। अतः सभी शंकर की शरण में जाओ, उसी में आपका हित है, उसी से जीवन धन्य होगा। ये धर्म, सम्प्रदाय व जाति सभी मोक्ष प्राप्ति में अवरोधक हैं।

ललद्यद सामाजिक एवं धार्मिक रूढ़ियों का खण्डन करती है और आत्मशुद्धि पर बल देती है। *गगन छई भूतल छई, /छई छुक दयन पवन ति रात। /अरग चन्दन पोश पोन्य छई,/छई छुक सोरूई ति लागै जि क्या।।*[5] अर्थात आप ही आकाश, धरा, दिन-रात, वायु इत्यादि हो, पूजा अर्चना हेतु चढ़ाने का अन्न,जल, फूल सभी कुछ आप ही हो। आप सर्वत्र हो। ऐसे में मैं क्या आपको अर्पण कर सकती हूं। बड़ा अजीब लग रहा है।

साधना कैसी भी हो योग की भूमिका अहम होती है। वास्तव में आत्मा से परमात्मा का मिलन ही योग है। पतंजलि के योगसूत्र में कहा गया है 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः अर्थात सत्व, रजस और तमस गुणों से युक्त चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग की श्रेणी में आता है। *'शिवमह' में योग की परिभाषा इस प्रकार से कही गई है- 'शिव शक्तियोः समायोगो/ यस्मिन काले विधीयते।/सा सन्ध्या कुल निष्ठानां/ योग इत्यभिधीयते।।'*[6] अर्थात जीवात्मा और परमात्मा का मेल ही योग है। कश्मीर शैव-दर्शन के सन्दर्भ में शिव और शक्ति का मिलन योग है। ललद्यद शिव को ही सर्वोपरि मानती है और सृष्टि के हर कण में उनका वास है। एतद सर्व शिवस्वरूपमेव। वे कहती हैं– शिवमय चराचर जग पश्या... अर्थात सभी पदार्थ जड़ या चेतन असीम संसृति का यह सृजन शिव में ही है। चु ना बो ना दहि ना द्यान... अर्थात वहां न आप हैं, न मैं हूं, न ध्येय है, न ध्यान है। इतना ही नहीं सर्वशक्तिमान ब्रह्म भी वहां अदृश्य हो जाते हैं। इसे ही जीव और आत्मा के संगम का उत्कर्ष कहते हैं। ये वही स्थिति है जो मनुष्य जीवन को जीवित रहते हुए ही मुक्ति प्राप्ति के लिए प्रेरित करती है। इसे प्राप्त करने के पश्चात् जीव शिव सदृश हो जाता है। त्रिक दर्शन वास्तव में प्रकारान्तर से भोग में योग की संस्तुति करता है और ललद्यद भी इसी विरासत या परम्परा को मध्य नजर रखते हुए पालन करती है।

ललद्यद योग विधा में पारंगत थी। एक योगी के सदृश वो आत्मज्ञान प्राप्ति के लिए नित्य योग करती थी। योग के दुष्कर पथ पर चलकर उन्होंने परम ज्योति अर्थात महादेव का साक्षात्कार किया था। ये व्यर्थ के आडम्बरपूर्ण जीवन के विरुद्ध थी। तत्कालीन काल खण्ड में कश्मीरी पण्डितों में जो रुढ़ियां प्रचलित थी, संत कबीर दास की भांति उन्होंने उन्मुक्त होकर उनकी निंदा की है। *'मिथ्या कपट असत त्रोवुम/ मनस करूम सुई वपदेश।/ जनस अन्दर कीवल जोनुम/ अनस ख्यनस कुछ छुम द्वेष।।*[7] अर्थात मैंने दुराग्रह, कपट एवं मिथ्या आचरण को त्याग दिया है और स्वयं को तदनुसार बनाया है। मुझे हर जीव के अन्दर वही परम दीप्ति दिखाई दे रही है। ऐसे में उसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में शिव की अनुभूति हो रही है। योग की अपरिहार्यता को टाला नहीं जा सकता है। योगाभ्यास में अनेक मुश्किलें सहन कर हमारा कांच रूपी शरीर कंचन बन जाता है। सहनशीलता एवं सन्तोष मनुष्य के व्यक्तिव को पवित्र एवं सुदृढ़ बनाते हैं। हर बाधाओं का सामना करने के लिए मनुष्य को तैयार रहना चाहिए। दामिनी चमके, अन्धकार हो या कुछ भी हो, सहन करना पड़ता है। *'छालनु छु वजमलि ति त्रैटे / छालनु छु मंदयन गटिकार।/ छालनु छु पान पनुन कडुन/ ग्रटे हयति मालि संतोष बाती पानै।।*[8] अर्थात सहनशीलता का अभिप्राय है स्वयं को चक्की के दो पाटों में चुपचाप पीसना और यदि आपमें सन्तोष है तो वह स्वयं मिल जायेगा।

अज्ञान में पड़कर जीव स्वयं को पहचानने में विफल रहता है। भौतिक सुख-सुविधाओं के चक्कर में पड़कर या उलझकर वो अन्धकार में रहता है। इतना ही नहीं यथार्थ से विपरीत वो रहता है। दूसरे स्वयं को पहचानने का सामर्थ्य उसमें नहीं होता है और इसके अलावा संसार के यथार्थ स्वरूप से दूर हो जाता है और फिर चाहकर भी यहां तक नहीं पहुंच पाता है– *'कुस मरि ति कुस मारन मरि कुस ति'।।* ललद्यद ने कुछ जगह विशुद्ध कश्मीरी भाषा का प्रयोग भी किया है– *'ग्वर शब्दस युस यछ पछ बरे, म्यान वगि रटि च्यत त्वर्गस। यंद्रयै शोमरिथ आनंद करे, अदे कुस मरि तय मारन कस।।*[9] कश्मीरी शैव मत, वेदान्त और हठयोग का प्रभाव भी ललद्यद के 'वाखों' में मिलता है। जैसे- *'गोरन वनुनम कुनुय वछून। न्यबरि दोपतम अन्दर अछुन। सुई ग्व ललि म्य वाक् ति वछुन। तवै ह्योतुम नंगय नचुन।।*[10] इसका तात्पर्य है कि अपने गुरु से मुझे यही

एक वचन मिला है कि तुम अंतर्मुखी हो जाओ। इसी वजह से मैंने शरीर के अस्तित्व को विस्मृत कर तथा इसे निर्वस्त्र करके परम् ब्रह्म की सत्ता को अनुभव किया है।

कश्मीर में ललद्यद जैसी महान सन्त का कोई भी मन्दिर, मकबरा या कोई समाधि स्थल नहीं है। उनकी मृत्यु से जुड़ी एक दन्त कथा है जो कबीर से मिलती-जुलती है। कहते हैं कि अपने जीवन के अन्तिम दिनों में वे अनंतनाग जनपद के मध्य बसे बिहाड़ा देहात में थी, वहीं उन्होंने देह त्याग दी। लोगों में जब उनके दाह संस्कार की बातें होने लगी तो दोनों हिन्दू-मुस्लिम में मतभेद शुरू हो गये। हिन्दू चाहते थे कि हिन्दू परम्पराओं के अनुरूप उनका दाह संस्कार किया जाये, वहीं मुस्लिम उन्हें अपनी परम्पराओं के अनुरूप दफनाना चाहते थे। सन्तों के हस्तक्षेप के आधार पर ये निर्णय लिया गया कि दो तसले लाइए और एक में उनके सिर वाले हिस्से को रखा और दूसरे तसले से सिर ढक लिया गया। ये सब करने के पश्चात् अकस्मात उनकी देह सुक्ष्म होती गई और दोनों तसले परस्पर मिल गये। ऐसे में जब खोला गया तो देह की जगह पानी ही था जिसे दोनों सम्प्रदायों ने परस्पर बांट लिया था। कहते हैं कि अपने अन्तिम वक्त में उन्होंने ये शब्द कहे थे। *'मरयम न कुंहु त मरु न को' सि। मारु नु च त लस नु च।।'*[11] अर्थात जीवन और मृत्यु मेरे लिए समान है। न ही मैं मरने पर किसी के लिए रोउंगी और न ही मेरे लिए कोई रोएगा। ललद्यद निर्लिप्त और निःसंग कर्म करके उसे ईश्वर के निमित्त समर्पित होने पर बल देती है।

उपसंहार– ललद्यद का साहित्य एवं जीवन वास्तव में संघर्ष से परिपूर्ण रहा है। उन्होंने समाज को जागृत कर एकजुट करने का प्रण लिया था और जिसमें वे कुछ हद तक सफल भी हुई। उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त धार्मिक व सामाजिक रूढ़ियों का विरोध किया और उनके विरुद्ध आवाज बुलन्द की थी। उन्होंने मनुष्य को इन सभी चीजों से उठकर जीवन जीने की प्रेरणा दी। मनुष्य सेवा ही शिव भक्ति है। हमें किसी भी जीव की हत्या नहीं करनी चाहिए चूंकि जीवों को जीव बनाने वाले केवल शिव ही हैं। हम जब किसी को जीवन दे नहीं सकते तो जीवन छीनने का अधिकार भी हमारा नहीं है। मनुष्य को अहर्निश अच्छे कर्म करने चाहिए, उसी में जीवन की सार्थकता है। जिस तरह से हिन्दी साहित्य में कबीर, तुलसी, मीरा व रसखान का साहित्य प्रसिद्ध है व कालजयी है उसी तरह ललद्यद भी है। उन्होंने जाति एवं धर्म की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर भक्ति का एक ऐसा मार्ग प्रशस्त किया जो सीधे हर मनुष्य के जीवन से जुड़ा हुआ हो। उन्होंने धार्मिक आडम्बरों व रूढ़ियों का विरोध कर प्रेम को सबसे बड़ा मूल्य बताया। आज भी कश्मीरी लोगों के कंठ से ललद्यद के गीत सुने जा सकते हैं। वे आधुनिक कश्मीरी भाषा का प्रमुख स्तम्भ मानी जाती हैं। ऐसे में यदि हम ललद्यद को कश्मीर की मीरा कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

सन्दर्भ

1. रमेश कुमार, वितस्ता के वातायन, वर्ष 1981, पृ.सं.117। 2. वही, पृ.सं.123। **3.** वही,पृ.सं.152। **4.** जयालाल कौल, ललद्यद, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृ.सं.24। **5.** बद्रीनाथ शास्त्री, कश्मीरी तथा संस्कृत,पृ.सं.53। **6.** शिव कृष्ण रैना, कश्मीरी भाषा और साहित्य, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली। **7.** सत्य प्रकाश शर्मा, प्राच्य-प्रज्ञा पत्रिका, वर्ष 2010, पृ.सं.54। **8.** वही, पृ. सं. 58। **9.** क्षेमराज, परा प्रवेशिका पत्रिका, पृ.सं. 40। **10.** रमेश शर्मा, वितस्ता के यातायान, हिन्दी विभाग, वर्ष 1981, पृ.सं. 122। **11.** अग्निशेखर, ललद्यद,प्रलेक प्रकाशन, महाराष्ट्र, 2022, पृ.सं. 84।

❑❑

अनुसन्धित्सु- विद्या वाचस्पति हिन्दी,
निदेशक– डॉ. ओमप्रकाश प्रजापति,
सहायक आचार्य, हिन्दी,
हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला।
अणु डाक-
chhavindersharma39780@gmail.com
मो. 9817018700.

प्रवासी हिन्दी कहानियों में बलात्कार से ध्वस्त स्त्री

श्रीना एस.

समकालीन प्रवासी हिंदी कहानी विभिन्न विषयों पर चर्चा करती है। स्त्री जीवन के मार्मिक चित्रण एवं उनकी विडंबनाओं को प्रस्तुत करने में साहित्यकार सफल सिद्ध हुए है। गौतम सचदेव की 'एक और पौंपेई', रामदेव धुरंधर की 'वह भी' और दिव्या माथुर की 'एडम और ईव' जैसी कहानीयों में स्त्री बलात्कार के शिकार हो रही है, विभिन्न परिवेशों में। समाज में बढ़ती जा रही स्त्री शोषण और उस शोषण के बाद अनथकी होकर बाहर आनेवाली स्त्री पर कहानियाँ बहस करतीं हैं। उनकी आकांक्षा भरे जीवन और इस हिंसात्मक प्रवृत्ति के खिलाफ प्रतिशोध भी रेखांकित किया है। इस आलेख में प्रवासी कहानियों में चित्रित बलात्कार एवं उससे बाहर आनेवाली स्त्री शक्ति की चिंगारियों की चर्चा हुई है। (बीज-शब्द : स्त्री मुक्ति, बलात्कार, प्रवासी कहानी, पैंपेई घटना, अधिकारियों का शोषण, मॉरिशस, डोमेस्टिक-एब्यूज़, शारीरिक शोषण, प्रतिरोध)।

वर्तमान समाज में स्त्री की सोच-विचार में आधुनिकता पाई जाती है। संस्कृति, धर्म, समाज के नाम पर पुरुष द्वारा आरोपित किसी भी अन्याय को सहने के बजाय, वह आवाज़ उठाने लगती है। उनकी सोच-विचार में बदलाव समाज में सबसे बड़ा परिवर्तन का निशान है। स्त्री की मंजिल में बच्चे पैदा करना, अपने परिवार को संभालना, आदर्श नारी के रूप में बैठना तक नहीं, समाज में एक स्वतंत्र इकाई के रूप में अपने अस्तित्व की स्थापना करना भी अनिवार्य है। अहम बात यह है कि उसने मर्दों के बिना जीना शुरू कर दिया है। अब उनके आँचल में दूध और आँखों में पानी नहीं, वह अबला से सबला बन रही है। परिवर्तन अचानक एक दिन में संभव नहीं होगा। यह एक धारावाहिक प्रवृत्ति है जो धीरे-धीरे समाज में परिवर्तन लाने का प्रयास करती है। इस प्रयास में एक हद तक सफलता प्राप्त होने पर भी दूसरी ओर कई बाधाएँ होना स्वाभाविक हैं। सबसे प्रमुख समस्या यह है कि स्त्री की शारीरिक एवं मानसिक शोषण। शोषण के कारण उनके पंखे काटने की तरह तीखा है। उनकी उठने की इच्छा और कार्य दायित्व क्षमता को सामाजिक, सांस्कृतिक वातावरण ने सीमित कर देता है। आसमान में उड़ने वाली स्त्री के आगे बाधा के रूप में पुरुषवर्चस्ववादी समाज आ खड़े है। यह पुरुष केंद्रित मानसिकता उनकी सहायता और प्रेरणा देने के बजाय उन्हें नीचे गिरा देती है। ऐसे गिरी औरतों का उठ-खड़े हो जाना कभी संभव नहीं हो पाता है। लेकिन आज का स्त्री समाज इस मानसिकता एवं शारीरिक संघर्ष से मुक्ति पाती है। निर्जीव लाश समान ज़िंदा रही वह एक समाज को प्रेरणा देने के लिए सक्षम बनती है। हर स्त्री की अलग कहानी होती है। उनके जीवन सन्दर्भ से मिला बुरा अनुभव उन्हें प्रतिरोध करने के लिए सक्षम बनाता है। प्रत्येक स्त्री के प्रतिरोध की भाषा अलग है। सुचित्रा सिंह का कथन है–'वास्तविक रूप में देखा जाए तो आज की नारी अब केवल रमणी या भोग्या, सुन्दरी या पुरुष के अधीन नहीं रह गई है, वरन् वह घर के बाहर भी समाज का एक विशेष अंग बनकर महत्वपूर्ण नागरिक की

भूमिका निभा रही है। अतः उसके कार्य-दायित्व भी अनेक रूपों में विस्तृत हो रहे हैं, जिसका निर्वाह करने में कभी-कभी ऐसे संघर्ष के अवसर आ रहे हैं, जिन पर विजय प्राप्त कर वह अपनी कर्तव्यनिष्ठा एवं दृढ़ता को स्थापित करने में सफल हो रही है।[1]' इस संघर्ष एवं इससे मुक्ति पाने की स्त्री की ताकत को साहित्य में चित्रित किया गया है। साहित्य, समाज की गतिविधियों का आईना है। साहित्य में इसका प्रतिफलन होना स्वाभाविक है। स्त्री के उपर हो रहे बलात्कार, शोषण, सभी के प्रति उनके प्रतिरोध आदि साहित्य के विभिन्न विधाओं में प्रस्तुत किए गए हैं। प्रवासी हिंदी साहित्य में भी इसकी लहर हम देख सकते हैं।

समकालीन प्रवासी कहानी स्त्री मुक्ति स्त्री शोषण, बलात्कार और स्त्री प्रतिरोध जैसे विभिन्न मुद्दे को अत्यंत गंभीर ढंग से प्रस्तुत करती है। 'प्रवासी कहानी' सुनते ही पाठकों के मन में सबसे पहले नॉस्टेल्जिया, अजनबीपन, अकेलापन याद आते हैं। लेकिन प्रवासी कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से सिर्फ उनके जीवन के सुख-दुःख तक नहीं बल्कि समाज के अन्य पहलुओं को रेखांकित करने का प्रयास भी किए गए हैं। प्रवासी साहित्य के बारे में कमल किशोर गोयनका का कथन है– 'हिंदी के प्रवासी साहित्य का अपना वैशिष्ट्य है, जो उसकी संवेदना, जीवन-दृष्टि, सरोकार तथा परिवेश में दिखाई देता है। मॉरिशस, फ़िजी, सूरीनाम आदि देशों में भारतवंशियों की दूसरी-तीसरी पीढ़ी के साहित्य में उनका देश बोलता है जिस पर हिन्दू धर्म, संस्कृति, दर्शन तथा मूल्यों का गहरा प्रभाव है। अमेरिका, ब्रिटेन आदि देशों के हिंदी लेखक पहली पीढ़ी के हैं और इसी कारण उनकी हिंदी रचनाओं में स्वदेश-विदेश दोनों हैं।'[2] गौतम सचदेव, रामदेव धुरंधर, दिव्या माथुर आदि कहानीकारों ने अपनी कहानियों में स्त्री-जीवन की दर्दनाक स्थिति को चित्रित करने का सफ़ल प्रयास किया है। समाज हो या साहित्य, स्त्री-विमर्श के सन्दर्भ में पुरुषों की बात दूसरे दर्जे में रखी जाती है। कभी-कभी इसे मानने के लिए भी कोई तैयार नहीं होते। पुरुष होने के कारण ही उनकी स्त्रीत्ववादी रचनाएँ अपनी तमाम सहानुभूतियों के बावजूद स्त्री-विमर्श के बाहर रहने को अभिशप्त हैं। अर्थात स्त्री-विमर्श का साहित्य वही प्रामाणिक माना जाएगा, जो स्त्री साहित्यकार के द्वारा लिखा गया हो। हालाँकि कहानियों में चित्रित स्त्री की पीड़ा सिर्फ स्त्री की वैयक्तिक न होकर सम्पूर्ण समाज की पीड़ा और व्यथा की वाणी होती है।

भारतीय मूल के हिंदी साहित्यकार गौतम सचदेव ब्रिटेन में रहे थे। उन्होंने हिंदी साहित्य की प्रत्येक विधा में अपना हाथ आजमाया है। सचदेव जी के कविता, कहानी, ग़ज़ल, व्यंग्य जैसे विभिन्न विधाओं का संकलन भी प्रकाशित है। 'वर्तमान साहित्य' पत्रिका में प्रकाशित उनकी कहानी 'एक और पौंपेई' स्त्री शोषण दर्दनाक स्थिति को पाठकों के सामने रखती है। काममूलक वासनाओं और विचारों से ग्रस्त पुरुषों की क्रूरता का शिकार बनने वाली भारतीय नारी की स्थिति को कहानी में उजागर किया गया है। नायिका के ऊपर हुए शोषण उसके अस्तित्व के लिए चुनौती बनकर आ खड़ी हैं। बहुत ही ख़ुशी के साथ चलते पति-पत्नी के जीवन में अचानक एक हादसा होता है। ज़िंदगी कठिन बन जाता है। अवनी और वीनू दोनों छुट्टियों में नेपल्ज़ (इटली) घूमने गए। वे पौंपेई शहर देखना चाहते हैं। इसलिए वे नेपल्ज़ के एक बेड एंड ब्रेकफास्ट में ठहरे थे। यह एक प्रकार का घर का कमरा है। वीनू खाना लेने और खाड़ी-किनारे की सैर करने निकलता है। वह कई घंटे बाद लौटा तो ब्रेड एंड ब्रेकफास्ट के दरवाज़े पर पुलिस खड़ी थीं। अवनी उसे देखते ही फूट-फूट कर रोने लगी। और कहा कि मैं बर्बाद हो गयी हूँ। लेकिन इसके अर्थ समझे बिना वीनू वहाँ स्तब्ध होकर खड़ा था। अवनी फिर बोली– 'कहता था तीन दिन से भूखा हूँ। कहाँ से घुस आया था कमरे में? तुम गए, तो क्या मैंने दरवाज़ा बंद नहीं किया था? उसे अंदर किसने आने दिया? क्यों आयी मैं? फट जाये फिर यह वैसूवियस और मैं उसकी राख में दब जाऊँ, जैसे पौंपेई के लोग...।[3] उनकी प्रलाप से समझे कि बहुत कम समय के अंदर वह बलात्कार के शिकार बन गयी थीं। बलात्कारी ने उन्हें नोंचा-कुचला था। छुरे से काटा भी था। उसकी बायीं आँख के इर्द-गिर्द काफ़ी बड़ा और नील निशान पड़ा। पुलिस ने अवनी का विस्तृत बयान लिया, वह उसे फिर से निर्वस्त्र करने से कम नहीं था। यहाँ बलात्कारी से अधिकारी तक स्त्री पर अपना वर्चस्व दिखाता है।

बलात्कार करने वालों के बारे में विचार करते हुए बंगला की प्रसिद्ध लेखिका समीरण मजूमदार ने इसे तीन प्रकार से विभाजित किया है। बलात्कारी को सजा देने की प्रक्रिया में बलात्कार, व्यक्तिगत चिंता से बलात्कार, और संघबद्ध शिक्षा से बलात्कार। बलात्कारी की मानसिकता को भी इन्होंने अपनी पुस्तक 'पुरुष समाज में स्त्री' में स्पष्ट किया है- पुरुष समाज में स्त्री ऐसे ही बहती रहती है, जहां बलात्कारी मौके की तलाश में रहता है। शिशु से प्रवीण हर उम्र की स्त्री को देखते ही उसका साधन सर उठाता है। यह विचित्र प्रवृत्ति पुरुषतांत्रिक संस्कृति का परिणाम है।[4] बलात्कार होने में कोई आयु सीमा नहीं हैं। बात यह है कि समाज, मीडिया और कानून व्यवस्था ने जिसके ऊपर बलात्कार हुआ है उसे बार-बार शब्दों से बलात्कार करते हैं। कहानी में इस प्रवृत्ति को तीव्र रूप से चित्रित करती दिखाई देती है। अवनी से पुलिस के सवाल इस प्रकार था कि 'आप कमरे में क्या कर रही थीं?, 'कपड़े पहन रखे थे या नंगी थीं?', 'कैसे कपड़े पहने थे? बुलाने वाले या लुभाने वाले? 'बदन के कौन-कौन से हिस्से उघड़े हुए थे या नंगे थे?', 'क्या आपने शराब पी रखी थी?', 'क्या आपने खुद अपराधी को अंदर बुलाया था?', 'क्या वह आपका दोस्त था?' सीक्रेट लवर या जान-पहचान वाला?' 'उसने आकर कुछ मांगा या सीधे...?', उसके ज़बरदस्ती करने पर आप ने क्या किया? विरोध? कितना? कब तक?', 'कैसे शुरू हुआ? बिस्तर पर या...', 'कपड़े किसने उतारे... कैसे? या फाड़े? हाथों से या छुरे से?' 'कई बार औरतें विरोध नहीं करतीं या विरोध का दिखावा करती हैं और मज़े...'[5] यह सब सुनकर अवनी गरजती है। और पूछती है कि यह पूछताछ है या अपमान। पुलिस उसे डाँटने लगा। यहाँ एक ओर पुलिस मामले की प्रक्रिया है तो दूसरी ओर अधिकारियों द्वारा स्त्री शोषण का चित्रण है। बलात्कार के शिकार को मानसिक और शारीरिक रूप से बाहर आने में देर लगती है। कहानी में अवनी के जीवन में हुई यह बड़ी हादसा से बाहर आने के लिए उसके पति वीनू बहुत मदद करता है। कहानी में इसका जिक्र भी है– 'लो मेरा हाथ पकड़कर आ जाओ बाहर इस अँधेरे श्मशान से। यही रास्ता है दुनिया में वापस आने का'।[6] समाज की वास्तविक स्थिति यह है कि स्त्री इस शोषण के पिंजरे से बाहर आना मुश्किल है। उनके सपने को कभी चार दीवारों में कैद कर देता है कि वे किसी से बलात्कार झेला है। कभी उससे बाहर आने के लिए कोई सहायता नहीं करता है। लोग यह जानना चाहता है कि किसने किया?, कहाँ?, कैसे? और उन्हें सज़ा मिलेगा या नहीं? बस उस स्त्री के ऊपर हो रहे अपमान का माप-तौल कौन जाने? मीडिया को या चार दिनों की ताज़ा ख़बर मात्र रहता है। उसके बाद वह दूसरी ख़बर की और चले जायेंगे। तो इस स्थिति से बाहर आने के लिए सहारा देने वाले पात्रों को भी कहानी में अभिव्यक्त किए गए हैं। कहानी बलात्कार हुए स्त्री के प्रति सहानुभूति नहीं बल्कि सहारा के हाथ बढ़ाती है। इससे उनकी ताकत बढ़ती है। नायिका समाज के सामने खड़े होने की आत्मविश्वास प्राप्त करती है। ज़िंदगी में उनका लौटना सबसे महत्वपूर्ण बात है।

रामदेव धुरंधर मॉरिशस के एक सशक्त साहित्यकार हैं। अभिमन्यु अनत के बाद साहित्य में अधिक संवेदना और कला की दृष्टि से उनका ही उल्लेख किया जाता है। मॉरिशस के व्यक्ति, समाज और मानव जीवन रामदेव धुरंधर के साहित्य का केंद्र बिंदु है जो मुख्यतः टूटते मानवीय रिश्ते, आधुनिकता, संस्कृति, प्रकृति एवं परम्परागत जीवन आदि से संपन्न है। विष-मंथन कहानी संकलन में संग्रहित उनकी कहानी 'वह भी' स्त्री पर हुए बलात्कार और शोषण के विभिन्न पहलू को चित्रित करते हैं। मॉरीशस की पृष्ठभूमि में लिखी गयी इस कहानी में अन्नू और दमन प्रमुख पात्र हैं। अन्नू की ज़िंदगी में कभी उजाला नहीं, पति को जगाना काम पर पहुँचाना, किचन का काम में व्यस्त रहना उनके लिए दिनचर्या है। एक दिन दमन को उठाये बिना खिड़की के पास बेमतलब खड़ी रहने को देख कर दमन क्रुधित हो उठा। कहानीकार इस विषय को बहुत सरलता से अभिव्यक्त करते हुए यह भी जोड़ता है कि 'अन्नू का इस तरह बेमतलब खिड़की के पास खड़ा रहना और पति को जगाने की बजाय अपने आप में खोये-से रहना दमन को क्रोधित कर सकता है। कोई आश्चर्य नहीं कि वह अन्नू को एक थप्पड़ मार दे। अन्नू को डराने और पराजित करने के लिए उसके पास

जितनी ताकत है, पता नहीं किस-एक ताकत को व्यवहार में उतार दे। उस हालत में अन्नू काँपने या रोने के अलावा कुछ कर पाने की हालत में रहेगी नहीं।[7] इससे समाज में नारी की स्थिति का व्यापक परिदृश्य विद्यमान है। इस कहानी का रचना समय अभी से शायद तीस साल पहले का है। फिर भी इस विषय की प्रासंगिकता में कमी नहीं रह गयी। सवाल यह है कि समय बदल चुका है आदमी कब बदलनेवाला है? कहानी स्त्री के उपर हो रहे शोषण की ओर ध्यान दिलाने के साथ पुरुष द्वारा स्त्री पर किए गए हिंसात्मक कार्य के हिसाब निकालती है। जो समाज में आज भी प्रचलित है। दमन जैसे लोगों का मानना है कि पत्नी या स्त्री सदा उनके देख-भाल करे और उनके कार्य सक्रिय बनाने में प्रयत्नशील रहे। यहाँ थप्पड़ देना एक आम बात मानी जाती है। पुरुष हो या स्त्री उनके प्रति शारीरिक रूप से होने वाले इस तरह ही एक थप्पड़ भी दण्डनीय है। कहानी में अन्नू इससे बाहर आती है। अन्नू ने उसके मर्द होने के अधिकार को प्रश्निल आँखों से देखा या उसके क्रोध से बोलने की प्रकृति को अनसुना किया। शायद घर में भी हम मर्द के शोर-मचाने को अलग शैली से रोकने वालों को देख सकेंगे। स्त्री जब पुरुषों की इन सभी बातों से सहनशील होने लगती है तब यह पुरुष के लिए ताकत बन जाता है। कहानी में भी दुमन को लगा कि वह सब कुछ सह लेंगे। लेकिन अन्नू विद्रोह की सबलता से लैस थी और दुमन के इस प्रकार के व्यवहार के लिए क्रोध का जवाब तैयार कर रखी। कहानी में नायिका अपने आप को सन्दर्भ के अनुसार शक्तिशाली बनाने की प्रयास करती है। एक हद तक यह प्रयास सफल भी होता है। दुमन अन्नू को पार्टियों में ले जाया करता था। कभी-कभी वह दुमन की दोस्तों की आँखों की भूख मिटाने वाली होती है। नशे के कारण दुमन यह बात जानता ही नहीं था। कहानी में मिस्टर चरण एक पात्र है जो दुमन के इस प्रकार नशे में होने का लाभ उठाता है। शुरू-शुरू में उस वातावरण से अन्नू बेहद कतराई थी, लेकिन धीरे-धीरे उसे अपने आप को समझौता करना पड़ा। उस समाज से भागने पर भी वह अपने पति से भाग न पाई। क्योंकि उसके बिना वह जी नहीं सकती थी। दुमन उसका पति होने के कारण उसे वहाँ-वहाँ जाना पड़ा था जहाँ-जहाँ दुमन उसे ले जाता था। उसकी विडम्बना को कहानीकार यहाँ प्रस्तुत करता है। वह उससे पूछती भी है, 'मैं थक गयी हूँ' इन बातों पर दुमन उसकी विद्रोही रूख को नहीं देखा। वह अन्नू पर ध्यान दिए बिना चला जाता है। उनकी विद्रोही रुख की हँसी उड़ाई जाती है। उस समय अचानक एक आदमी उनके मोटर के अन्दर आता है। उसका नाम है प्रकाश। उस आदमी की पत्नी का बलात्कार हुआ था। उस हादसे ने उनकी पत्नी को आत्म-हत्या करने लिए विवश किया था। उनके दो बच्चे थे। बलात्कार के बाद प्रकाश की पत्नी जहर पी ली थी। उनका बस्ती से कुछ दूरी पर 'पैराडाइज़' नामक टूरिस्ट होटल था। बस्ती की दोनों टैक्सियां टूरिस्ट ग्राहकों की टोह में रात-दिन होटल के फाटक पर खड़ी रहती हैं। प्रकाश अपनी पत्नी के रक्षार्थ एक मोटर मिलने के लिए होटल तक गया। लेकिन फायदा नहीं हुआ। हवाई जहाज़ पर पर्यटकों को सवारी के लिए चले गए हैं। उस समय के मॉरीशस के यथार्थ को कहानीकार ने अभिव्यक्त किया गया है। इस घटना के बाद अन्नू अख़बार बलात्कारी के बारे ख़बर मिलने के लिए परखती है। अन्नू को ऐसी एक खबर मिलती है– कहीं दिख जाता कि प्रकाश ने अपनी पत्नी का बलात्कार हो जाने से बौखला कर प्रतिशोध के तहत एक महिला का बलात्कार किया है। महिला अधमरी पायी गयी है। अभी पता नहीं चला कि महिला कौन है, कहाँ की है। उसकी जीने की आशा बहुत कम है।[8] अन्नू उस खबर के अंत में यह भी जोड़ती है कि 'वह भी बलात्कार कर सकता है।'[9] कहानी अंत में एक नए मोड़ लेती है। स्त्री सिर्फ उपभोग, बलात्कार, और पति की उन्नति का पात्र मानी जाती है। नए सोच-विचार से आगे आनेवाली नारी को नीचे दबाते हुए मर्द अपना बल दिखाता रहता है। और नारा लगाता है कि स्त्री माँ है, बहन है, पत्नी है और सहनशीलता में धरती है। यह सहनशीलता उनकी कुरीतियों के ख़िलाफ़ नहीं होने देंगे। कहानी में प्रतिशोध लेने का तरीका अलग है। यहाँ दोषी न मिलने पर मिलने वालों को दोषी स्थापित किए जाने की प्रवृत्ति को चित्रित किया है। यहाँ पुरुष के ताकत को स्थापित किया है किसी अज्ञात स्त्री पर बलात्कार करते हुए। कहानी प्रतिरोध लाने की गलत पक्ष को हमारे सामने रखती है। प्रकाश

अपनी पत्नी को शारीरिक और मानसिक शोषण से बाहर आने के लिए मदद किए बिना, किसी स्त्री पर बलात्कार करने निकला है। यह हिंसात्मक भयावह प्रवृत्ति है। सारी मानव ऐसे प्रतिक्रिया को स्वीकार किया जाए तो समाज का संतुलन बिगड़ जाएगा।

दिव्या माथुर 'वातायन-यूके' के संपादक और लंदन के प्रसिद्ध प्रवासी हिंदी साहित्यकार भी है। दिव्या माथुर की कहानी 'एडम और ईव' स्त्री-शोषण एवं बलात्कार का असली चित्र खींचता है। सच कहें तो स्त्री और दास की स्थिति समान है। उसमें बड़ा अंतर यह है कि सभ्यता के विकास के साथ दास प्रथा धीरे-धीरे ख़त्म हुआ। लेकिन समाज जितने भी सभ्यता प्राप्त हो स्त्री-शोषण और उनकी अवस्था में बदलाव लाने में आज भी संघर्ष करना पड़ता है। कहानी संघर्ष की एक अलग दरवाज़ा पाठकों के सामने खोलता है। 'एडम और ईव' कहानी की शुरुआत ही एक थप्पड़ से होती है- 'एक झन्नाटेदार थप्पड़ ईव के गले पर पड़ा। वह संभल नहीं पाई, कुर्सी और मेज़ से टकराती हुई ज़मीन पर जा गिरी। उसका बायां हाथ स्वतः गाल पर चला गया, लगा कि जैसे उसका चेहरा उबड़-खाबड़ हो गया हो। जबाड़े की हड्डियाँ एक दूसरे पर चढ़ गईं थीं और दर्द के मारे उसका बुरा हाल था उसने उठने की कोशिश की, उसकी आंखों के आगे तारे घूम रहे थे।'[10] एडम और ईव दोनों का प्रेम-विवाह था। इसलिए ईव को उनके परिवारवालों से कोई सहारा नहीं मिला। सुबह की व्यस्तता से ईव के हाथ से दूध की खुली बोतल लुढ़क गयी। यह एडम के लिए रखा था। इस बात के लिए उन्होंने ईव को थप्पड़ मारा। ईव जानती है कि एडम उसकी कमज़ोरी का फ़ायदा उठाता है। उसको किसी-न-किसी बातें करके बेवकूफ बना रहा है। उन दोनों के बच्चे की भविष्य पर सोचते हुए वह चुप हो जाती है। प्रतिवाद के लिए ईव अपने भिंचे हुए दांतों को खोला तो खून से मुंह भर गया। जितने होने पर भी एडम शांत नहीं हुआ वह ईव को फ़क्किंग हेल कहते हुए जा रहा है। क्रोध आने पर गाली देने की, थप्पड़ मारने की प्रथा पुरुषों की आदत बन गया है। कहानी में इसका उल्लेख स्पष्ट किया गया है। कुछ देर बाद वह वापस आकर उससे सॉरी कहता है। दर्द मिटाने के लिए यह कोई माध्यम है? कहानी में चित्रित इस यथार्थ पाठकों को भी सजग करता है। बाद एडम ने अपने बच्चे से कहता है कि आप तो समझदार बेटे तो किसी से इसके बारे में कहना मत। एडम ने रॉबिन से कहता है- 'मम्मी इज़ मेकिंग ऐ सीन अगेन,....... इफ समवन आस्क्स, जस्ट से दैट मम्मी फैल इन द बाथरूम...'[11] शादी के बाद ज़्यादातर घरों में ऐसा ही होता है। किसी तरह के शारीरिक शोषण सह लेना एक बार सीख गया है तो यह उनका आदत बन जाता है। शादी के बाद भी शारीरिक शोषण करता है। उसे भी बलात्कार कहना उचित रहेगा। यहाँ इतने झेलने के बाद रात में एडम ईव के पास आता है–'ईव के न चाहने पर भी एडम आज रात उसके साथ भी ज़ोर-ज़बरदस्ती करेगा और वह कसमसा कर रह जायेगी कि कहीं रॉबिन न सुन ले। एडम सोचता है कि सेक्स से औरत को पराभूत किया जा सकता है। ऐसी रातों को ईव अतिरिक्त विरक्त रहती है, उसके मृतप्राय शरीर पर चपेटें मार-मार कर जगाने के प्रयत्न में विफल एडम झुंझला कर शराब पीने बैठ जाता है या घर से बाहर चला जाता है। ईव नहीं चाहती कि वह लौटे।'[12] ईव के छोटे-मोटे अपमान वह दिन भर करता रहा। अपने आप को संभालने और अपनी सुरक्षा को ध्यान रखते हुए वह एडम लौटने के पहले सोने जा रही थी। लेकिन कितने दिन तक वह भाग सकती है। यहाँ विवाह के बाद एडम को लगा कि उसका असीमित अधिकार मिला है। उनका मानना है कि ईव के खिलाफ निरंकुश भाव से इस्तेमाल का पूरा अख्तियार एडम को हासिल हुआ है। उनके मन में परिवार टूटने का भय भी है। इससे वह मुक्ति चाहती है। लेकिन समाज के सामने अपने-आप को सबसे महान व्यक्ति स्थापित करने वाले एडम के सामने वह बार-बार पराजित जो जाती है। कहानी में डोमेस्टिक-एब्यूज़ का ख़तरनाक चित्रण दिया है। यह केवल शारीरिक शोषण तक सीमित नहीं होती उनकी भावुकता, धन और सेक्स से भी जुडी होती है। कोई भी औरत इस पर आवाज़ उठाती तो जल्द ही उनकी हत्या कर डालते हैं। उन्हें पागल घोषित करते हैं। उनकी मानसिक असंतुलन उन पर किये गए अत्याचार की वजह से होती है। दुबारा भी उनके साथ मार-पीट होता है। एडम

स्वयं ईव के स्कूल में फोन करके बताता है कि ईव को बुखार है इसलिए छुट्टी चाहिए। उनके फ़ोन भी एडम के पास रखता है। ऐसी स्थिति के बारे में जानते हुए स्कूल में काम करनेवाली अध्यापिका ईव की सहायता करती है। वह पुलिस के साथ घर आती है। तब ईव को एडम ने मुंह सेलो-टेप से बाँधते हुए कुर्सी पर हाथ बाँध रखा था। पुलिस आते वक्त वह किसी प्रकार उनके सामने आती है। प्रेम के नशे में ईवा से ईव बनी, प्यार के कारण पति के हर शब्दों के लिए सर हिलाई, परिवार और बच्चे के लिए वह पति के सब कुछ सह लिया। अंत में वह इस दर्दनाक ज़िंदगी से बाहर निकलती है।

यहाँ गौतम सचदेव की 'एक और पौंपेई' में नायिका विलायत में हुई बलात शोषण के दर्दनाक स्थिति से बाहर आने के लिए तड़प रही हैं। अवनी को इस स्थिति से बाहर आना संभव है। इस के लिए प्रयत्नरत पति वीनू की प्रवृत्ति भी प्रशंसनीय है। मानसिक और शारीरिक रू प से पीड़ित उनके मन और शरीर का इलाज़ आत्मविश्वास है। कहानी समस्या के साथ समाधान भी देती है। कहानी में अवनी ने बलात्कारी से एक बार शोषण झेला लेकिन अधिकारियों से और समाज के सामने वह बार-बार पीड़ित होती है। इस वास्तविकता को कहानी हमारे सामने पेश करती है। रामदेव धुरंधर की 'वह भी' कहानी में बदला लेने की एक हिंसात्मक तरीके को स्वीकृत किया है। इस कहानी में समान्तर रूप में घटित शोषण के दो परिवेश को अंकित किया है। एक ओर अपने पति के लिए दूसरों के सामने प्रस्तुत करने के लिए विवश नायिका है तो दूसरी ओर किसी अज्ञात लोगों से बलात्कार के शिकार बनी एक स्त्री। कहानी के बदला लेने की हिंसात्मक तरीका पाठकों को विचार करने के लिए विवश बनाता है। एक ओर पति के लिए अन्य पुरुषों के सामने खड़े होने की मजबूर स्त्री है तो दूसरी ओर अनजाने से बलात्कार के शिकार होने वाली स्त्री। शोषण झेलनेवाली स्त्री ही होती है। 'एडम और ईव' कहानी में पति के सारे अधिकारों के साथ शारीरिक शोषण करने वाले पुरुष को चित्रित किया है। संक्षेप में कहा जाए तो इन तीन कहानियों में जो प्रतिरोध का चित्रण है इसका अपनी अलग शैली होती है। एक में आत्मनिर्भर होना प्रतिरोध है तो दूसरी कहानी में पुरुषों की हिंसात्मक प्रवृत्ति के शिकार होने वाले बेचारी औरतों को चित्रित किया है। तीसरी कहानी में इस शोषण से बाहर निकलने वाली स्त्री पात्र को प्रस्तुत किया है। स्त्री को स्वयं पहचाने के साथ-साथ अपना अस्तित्व की स्थापना करना भी अनिवार्य है। महिलाओं और लड़कियों के खिलाफ हिंसा दुनिया में सबसे प्रचलित और व्यापक मानवाधिकार उल्लंघन में से एक है। वैश्विक स्तर पर देखे तो तीन में से एक स्त्री अपने जीवन में एक बार शारीरिक हिंसा का शिकार हुई है। मारपीट, मनोवैज्ञानिक दुर्व्यवार, वैवाहिक बलात्कार, स्त्री हत्या आदि को रोकना जब संभव होगा तब इस दुनिया में हर घर में शांति की फैलाव होगी।

संदर्भ

1. डॉ. सुचित्रा सिंह (2019), स्त्री-विमर्श और डॉ. संजीव कुमार की रचनाधर्मिता, स्वराज प्रकाशन, आगरा-282007, पृ.34। **2.** कमल किशोर गोयनका (2017), हिंदी का प्रवासी साहित्य, स्वराज प्रकाशन, जगतपुरी, शाहदरा, दिल्ली -110002, पृ.5। **3.** सं. नमिता सिंह 2012), एक और पैंपोई, वर्तमान साहित्य, वर्ष 28 जून, अवंतिका-1, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001, पृ.11। **4.** समीरण मजुमदार (2018), पुरुष समाज में स्त्री, (अनु. ज्योतिर्मय), ग्रन्थ शिल्पी, लक्ष्मी नगर, दिल्ली,110092, पृ.19। **5.** सं. नमिता सिंह (2012), एक और पैंपोई, वर्तमान साहित्य, वर्ष 28 जून, अवंतिका-1, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001, पृ.12। **6.** सं. नमिता सिंह (2012), एक और पैंपोई, वर्तमान साहित्य, वर्ष 28 जून, अवंतिका-1, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001, पृ.13। **7.** रामदेव धुरंधर (1995), विष-मंथन, नटराज प्रकाशन दिल्ली-110052, पृ.32। **8.** रामदेव धुरंधर (1995), विष-मंथन, नटराज प्रकाशन दिल्ली-110052, पृ.40। **9.** रामदेव धुरंधर (1995), विष-मंथन, नटराज प्रकाशन दिल्ली-110052, पृ.40। **10.** सं. तरुण कुमार (2020), प्रवासी मन, एडम और ईव, दिव्या माथुर, भावना प्रकाशन दिल्ली-110091, पृ.158। **11.** सं. तरुण कुमार (2020), प्रवासी मन, एडम और ईव, दिव्या माथुर, भावना प्रकाशन दिल्ली-110091, पृ.159। **12.** सं. तरुण कुमार (2020), प्रवासी मन, एडम और ईव, दिव्या माथुर, भावना प्रकाशन दिल्ली-110091, पृ.159।

❑❑

शोध छात्रा, हिंदी विभाग
कोचीन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
केरल, मो. 7012049428
Email: sreenasreenivasan11@gmail.com

हिन्दी के चयनित उपन्यासों में वृद्ध-विमर्श

श्वेता शर्मा

समकालीन समाज में 'मूल्य' शब्द को काफी प्रचलित शब्द कहा जा सकता है। 'मूल्य' अंग्रेजी के 'value' शब्द का हिंदी रूपांतरण है। इसे अर्थशास्त्र के पारिभाषिक शब्द के रूप में भी देखा जाता है। यह संस्कृत के 'मूल' धातु में 'यत' प्रत्यय के योग से बना है जिसका अर्थ कीमत एवं मजदूरी से है । 'मूल्य' शब्द कई प्रकार से मानव जीवन में अपनी भूमिका निभाता है। यह केवल शब्द नहीं अपितु एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। मूल्य मानव जीवन के विभिन्न पक्षों चाहे वह वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक ही क्यों न हो यह सभी क्षेत्रों में अपनी एक मानदंड स्थापित करता है। कवि सुमित्रानंदन पंत के अनुसार– मूल्य-मर्यादा की प्रगति के स्रोत को केवल सामाजिक परिस्थितियों के अधीन मानना उतना ही एकांगी दृष्टिकोण है जितना उसे केवल मनुष्य के आतंरिक संस्कारों में मानना है। मानव-मूल्य के मूल बाहर-भीतर दोनों ओर फैले हुए हैं, 'तदंतरस्य सर्वस्य तत्सर्वस्यस्या बाह्यतः'।[1]

भारतीय संस्कृति में मानव मूल्य के तहत क्षमा, दया, त्याग, दान, तप, श्रद्धा, सत्य, शांति, विवेक इत्यादि पहलुओं को ही महत्व दिया जाता रहा है। इसी क्रम में वृद्धों के प्रति आदर और सेवा का भाव एक बड़ा पारिवारिक-सामाजिक मूल्य मान्य है। मानव सभ्यता के शुरुआत से वृद्ध जीवन रहा है। हर युग में कई पीढियां रहती हैं। इन पीढ़ियों में कभी सामंजस्य होता है तो कभी तकरारें भी होती हैं। किसी भी समाज को स्वस्थ रूप प्रदान करने के लिए पीढ़ियों में समन्वय आवश्यक होता है। युवा पीढ़ी और बुजुर्ग पीढ़ी के पारस्परिक संबंध में आगत परिवर्तनों के मूल में समय और समाज की परिस्थितियों की बड़ी भूमिका होती है। समाज में कई प्रवृतियाँ इस संबंध को बाधित करती हैं। आदर्श स्थिति तो यह होती है बुजुर्ग नई पीढ़ी की मानसिकता को समझने का प्रयास करे और नई पीढ़ी बुजुर्गों की मनस्थितियों से अनभिज्ञ न रहे। कभी नागार्जुन ने लिखा था– *तुम किशोर, तुम तरुण / तुम्हारी अगवानी में /खुरच रहे हम राजपथों की काई-फिसलन/खोद रहे जहरीली घासें।*[2] बहरहाल, आज इक्कीसवीं सदी के कंधे पर भूमंडलीकरण सवार हुआ बैठा है। भूमंडलीकरण के प्रवेश से भारतीय समाज में तेजी से बदलाव होते नजर आए। काफी उथल-पुथल मची और इन्हीं हलचलों के बीच मनुष्य उपभोक्तावादी दृष्टिकोण अपनाने लगा। इस उपभोक्तावादी दृष्टिकोण के तहत मानवीय मूल्य तहस-नहस होकर रह गए। मानवीय संबंधों में दरारें आने लगीं। संबंध केवल स्वार्थ सिद्धि का जरिया बनकर रह गए। इन सभी परिवर्तनों का प्रभाव वृद्ध पीढ़ी पर प्रत्यक्ष तौर पर पड़ता दिखाई दे रहा है। बुजुर्ग पीढ़ी अपनों के ही बीच बेगानेपन, तिरस्कार का जीवन बिताने को बाध्य हो रही है। वृद्ध पीढ़ी जिस असंवेदना, उपेक्षा का शिकार हो रही है, उस ओर इधर के हिंदी साहित्य के कई रचनाकारों ने अपना ध्यान केंद्रित किया है। इस आलेख के तहत वृद्ध जीवन किस प्रकार मानवीय मूल्यों

के क्षरण का शिकार बन रहा है उस पर विचार करने वाले तीन महत्वपूर्ण उपन्यासों को आधार बनाया गया है, हृदयेश द्वारा सृजित 'चार दरवेश' (2011), रामावतार कृत 'ढलती शाम' (2013) तथा डॉ. सूरज सिंह नेगी द्वारा रचित 'वसीयत' (2018)।

हृदयेश कृत 'चार-दरवेश' उपन्यास में उन चार वृद्धों की करुण दास्तान को उकेरा गया है जो अपने जीवन की सबसे अनुभवपूर्ण अवस्था पर पहुँच चुके हैं पर वह अपनी इस सांध्यबेला में एकांत जीवन जीने को बाध्य हैं। इन चार वृद्धों की करुण गाथा को लेखक ने अपने उपन्यास में बेहद दारुण तरीके से उजागर किया है। यह कथा केवल इन वृद्धों की नहीं बल्कि अलग-अलग रूप में समाज में मौजूद सभी वृद्धों की है। इस उपन्यास में मुख्यतः चार वृद्ध हैं– चिंताहरण, रामप्रसाद, शिवशंकर और दिलीपचंद। यह उपन्यास भारतीय समाज तथा परिवार पर पड़े उस आदर्शवादी छद्म को तोड़ता नजर आता है जिसका मुखौटा पहने यह समाज बुजुर्गों की अनदेखी कर रहा है।

आज का युग भूमंडलीकरण का है और 'पूंजी' और 'बाजार' इसके दो लंबे हांथ। इनमें अटूट संबंध है। जो व्यक्तिशारीरिक तथा आर्थिक रूप से अक्षम होता है उसका इस पूंजीवादी समाज और बाजार में कोई मोल नहीं होता। जो वृद्ध इस दयनीय अवस्था से गुजरते हैं उन्हें यह समाज तिरस्कार के भाव से देखता है। उपन्यासकार अपने उपन्यास के प्रारंभ में ही बाजार तथा पूंजी के घिनौने चेहरे को स्पष्ट करते हैं कि कैसे इस बाजार की चकाचौंध में मानवीयता अपना मूल्य खोती जा रही है। रचनाकार के शब्दों में- बाजार फैला था तो बाजार में उतरी नयी-नयी चीजों के प्रति लोगों में पहले आकर्षण पैदा हुआ था, फिर ललक जागी थी, फिर वे जरूरत बन गयी थीं ...पैसा सर्वोपरि बन गया था। सिद्धांत, आदर्श, कर्तव्य, नैतिकता कल की चीजें हो गयी थीं। दोस्ती, रिश्ते नफा-नुकसान के तराजू पर तोले जाने लगे थे।[3]

इस उपन्यास में पहले वृद्ध के रूप में सत्तर पार की उम्र वाले चिंताहरण शर्मा सामने आते हैं। यह स्वतंत्र चेतना और मुखर प्रवृत्ति के व्यक्तित्व हैं। यह अपने ही घर में बेगानेपन का दंश झेल रहे हैं। चिंताहरण तथा उनके बेटे रघुनाथ के रिश्ते में ऊर्जा के बजाये एक ठंडापन है। पुत्र आज स्वतंत्र रहना, अपने निर्णय स्वयं लेना पसंद करता है। उसे अपने माता-पिता से सलाह लेना अनावश्यक प्रतीत होता है। रघुनाथ अपने बेटे अतुल के अपहरण होने पर अपने पिता से बिना कोई सलाह लिए मोटी राशि का इंतजाम कर अपने पुत्र को छुड़ा लाता है। युवा पीढ़ी की संवेदनहीनता इस तर्ज पर पहुँच चुकी है कि वह अपने स्वार्थ के आगे कुछ देखते ही नहीं। जिस माँ-बाप ने उन्हें संकट के समय संभाला होता है उन्हें ही वह उनके दुःख की घड़ी में बेसहारा कर देते हैं। अमानवीयता की सीमा तब पार होती है जब अपहरणकर्ताओं द्वारा चिंताहरण का अपहरण कर बदले में मोटी रकम की मांग की जाती है, पर उनके बेटे उनको छुड़ाने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाते। उन्हें अपने पिता की सलामती से अधिक धन का मोह था इसलिए चिंताहरण की बीवी द्वारा बार-बार उनको छुड़ा लाने की बात पर उनके बेटे रघुनाथ का जवाब होता- मम्मी, बदमाशों की हजारों की नहीं लाखों की मांग है।[4] भारतीय समाज जो आदर्शवाद और नैतिकतावाद का संवाहक था अब वह केवल स्वार्थ के आवरण में लिपटा चला जा रहा है।

दूसरे वृद्ध दिलीपचंद शिक्षित एवं आर्थिक रूप से सबल हैं। यह सप्लाई इंस्पेक्टर की नौकरी से रिटायर्ड देश-दुनिया की खबर रखने वाले व्यक्ति हैं। विवाह तो किया था पर पत्नी के आग्रह करने पर उसे अपने पहले प्रेमी के साथ रहने की अनुमति दे दी और स्वयं आजीवन अविवाहित की जिंदगी जीते रहे। रामचंद्र इनके दूर का रिश्तेदार था जो इनके सीधे स्वभाव का फायदा उठा इन्हें धोखा देता है। इतना ही नहीं इनकी दुकानों के किरायेदार इन्हें समय पर किराया भी अदा नहीं करते थे। अपने भले स्वभाव और दूसरों का हित सोच दिलीपचंद उन्हें समय देते रहते थे किंतु यह समाज की विडंबना या कहिए मूल्यहीनता ही है कि उसे अपने फायदे के अलावा कुछ नजर नहीं आता। इनकी इस सज्जनता, वृद्धापन और बेबसी का फायदा उठा इनका एक किरायदार इनकी दुकान हड़प लेता है। दिलीपचंद

इस वाकये पर बेबस होकर रह जाते हैं। आए दिन अखबारों में छपते बुजुर्गों के प्रति हिंसात्मक घटनाओं से दिलीपचंद विचलित हो उठते हैं और आशंका और कुंठा की चपेट में आने लगते हैं। अपनी इस कुंठा के कारण यह खुद को समाज में मिसफिट अनुभव करते हैं और आत्महत्या की ओर अग्रसर हो जाते हैं।

तीसरे वृद्ध शिवशंकर कॉलेज के बड़े बाबू पद से रिटायर पढ़े-लिखे एवं संभ्रांत व्यक्तित्व हैं। जन कल्याण के लिए यह अपनी हेम्योपैथिक दवाओं से लोगों का निःशुक्ल इलाज करते थे। बेटे-बहू, पोते-पोतियों के होते हुए भी शिवशंकर और उनकी पत्नी अकेलेपन का दुःख भोगते हैं। आज के युवा वर्ग अपना काम साधने के लिए अपने माता-पिता का भरसक फायदा उठाते हैं। ठीक इसी प्रकार शिवशंकर का बेटा पुनीत अपनी स्कूल की बिल्डिंग की देख-रेख के लिए अपने माता-पिता की मनुहार कर उन्हें इलाहाबाद ले जाता है और अपनी पिता की संपत्ति पूराने घर को बेच डालता है। शिवशंकर के पास अपने बेटे पर आश्रित होने के अलावा कोई उपाय नहीं बचता और अपने इलाहाबद जाने के फैसले पर उन्हें ग्लानि भी होती है। एक वृद्ध माँ-बाप अपनी संतान मोह में कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं पर वही बच्चे अपना काम निकल जाने पर उन्हें दुत्कार देते हैं। एक पत्र के माध्यम से चिंताहरण से अपने दुःख का बखान करते हुए शिवशंकर लिखते हैं सपने में– गुप्ताजी कह रहे थे कि उन्होंने बेटी-दामाद को अपने घर में रखकर गलती की। भाई शिवशंकर वही गलती आपने अपना घर बेचकर बेटे के पास रहना स्वीकार कर की।[5] दो महीने पत्र की प्राप्ति न होने पर चिंताहरण द्वारा शिवशंकर को फोन करने पर उनका नंबर स्विच ऑफ' से 'दिस नंबर इज नॉट एक्सिस्ट' बताने लगा। इतना काफी है यह जानने के लिए कि अब शिवशंकर अपने संतान मोह और संतान की धन लालसा की भेंट चढ़ गए हैं और उनका इस दुनिया में अस्तित्व समाप्त हो चुका है।

चौथे वृद्ध रामप्रसाद हैं। अपने बेटी और दामाद के साथ रहते इनको तमाम तरह की जलालतें झेलनी पड़ती हैं। अपने ही घर में मेजबान से मेहमान का सफर तय करते हुए अंत में बहुत ही दुःखद मृत्यु को प्राप्त होते हैं। अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद उन्हें अपनी बेटी और जमाई की तिरस्कृत बातों को सुनना पड़ता है। कमरे में बल्ब फ्यूज की शिकायत सुन उनका दामाद अपनी पत्नी से कहता है तेरा बाप हरदम ततैया मिर्च बना रहता है। शिकवा गिला के अलावा कुछ जानता नहीं। वह भी तो घर से बाहर निकलता है। सांझ को जब बैठकबाजी से लौटता है तब किसी बिजली वाली दुकान से क्यों नहीं बल्ब ले लेता है? सो क्यों? अपनी टेंट से दस-बारह रुपये जो ढीले करना पड़ेंगे। बुड्ढा चालाक कौवा है।[6] कितनी संवेदनहीनता है कि एक छोटी सी बात पर बच्चे अपने माँ-बाप के लिए इतने जलील शब्दों का व्यवहार करते हैं। आज का युवा वर्ग अपने सभी मूल्यों को खो बैठा है। जिनके सहारे वह पलता-बढ़ता है उन्हीं को अपमानित करने में उसे तनिक भी लज्जा नहीं आती। एक बाप जो अपनी बेटी जमाई की कड़वी बातें सुनता है। वह बेचारगी में अपना जीवनयापन करता है। युवा वर्ग की संवेदना इस कदर समाप्त हो चली है कि वह अपनी बुजुर्ग पीढ़ी को मौत के मुंह में ढकेलने से जरा भी नहीं कतराते। रामप्रसाद को कुत्ते ने काट लिया था पर उनके बेटी-दामाद उनको रेबीज का इंजेक्शन तक नहीं दिलवाते और अंततः रेबीज के जहर से तड़प-तड़प कर उनकी मृत्यु हो जाती है।

उपन्यास का शीर्षक 'चार दरवेश' चार वृद्धों से संबंधित है। 'दरवेश' का अर्थ ही है फकीर, मांगने वाला या भिखारी। यह शीर्षक सटीक ही जान पड़ता है क्योंकि वृद्ध अपनी सांध्यबेला में प्रेम, आदर-सम्मान पाने के लिए हाथ फैलाये ही रह जाता है पर इसकी एवज में उसे कारूणिक मृत्यु ही प्राप्त होती है। इन चार बुजुर्गों की जीवनगाथा भी इसी तरह समाप्त हो जाती है।

रामावतार सृजित 'ढलती शाम' उपन्यास में भी वृद्धों से संबंधित मूल्यहीनता एवं संवेदनहीनता को देखा जा सकता है। इस उपन्यास के प्रमुख पात्र सत्तर पार कर चुके वृद्ध नागेश्वर दास हैं, जो कि बुद्धि के प्रखर एवं चिंतनशील व्यक्तित्व के धनी हैं। आमतौर पर वृद्धों को बेचारा, असहाय, मजबूर होकर अपनी परिस्थितियों से समझौता करते हुए देखा जाता है किंतु इस उपन्यास

का नायक ईंट का जवाब पत्थर से देने वाला व्यक्ति है। अपने बुजुर्ग माता-पिता के प्रति उनके बेटे किसी प्रकार का दायित्व नहीं निर्वाह करते पर नागेश्वर दास इसे मजबूर होकर स्वीकार करने के बदले अपनी संपत्ति से अपनी संतानों को बेदखल करने का निर्णय लेते हैं। उनका यह मानना है कि जब संतान अपने जन्मदाता के प्रति किसी कर्तव्य का निर्वाह ही नहीं कर रही तो उन्हें संपत्ति पर हक जताने का भी कोई अधिकार नहीं है। समाज में हो रहे वृद्धों के प्रति हिंसात्मक रवैये से नायक भली-भांति परिचित है पर वह इस दुर्व्यवहार का शिकार होना नहीं चाहता इसलिए वह अपने पुत्रों द्वारा किए गए प्रपंचों का मुंह तोड़ जवाब देता है। वह अपने बेटों को संपत्ति से बेदखल कर अपनी जमा-पूंजी को वृद्धाश्रम बनवाने के लिए दान करने का निश्चय कर लेता है। अपने पिता का यह फैसला बेटों को नागवार गुजरता है। इसके प्रतिशोध में वह अपने पिता की हत्या की कोशिश एवं उनकी मृत्यु की कामना करते हुए जरा भी नहीं हिचकिचाते। नागेश्वर दास का बड़ा बेटा प्रमोद के मंतव्य को स्पष्ट करते हुए लेखक कहता है- 'प्रमोद उन्हें कुटिल दृष्टि से जाते देखता रहा और मन ही मन गरियाता रहा। मानो वह पिता न हों, शत्रु हों। उसका वश चलता तो वह उन्हें गुंडों से पिटवा देता, अपहरण करवा देता, यदि भेद खुलने का भय न होता तो उन्हें जहर देकर मरवा देता या गोली से उड़ा देता।[7] यही नहीं एक स्थान पर प्रमोद कहता है– 'यह बुढ़ा जब तक जिन्दा रहेगा हम सबको सताता रहेगा। ऐसे पापी जल्द मरते भी नहीं। जिस दिन यह बुढ़ा मर जायेगा, सारी समस्या हल हो जायेगी।[8]

नागेश्वर दास की पत्नी सुजाता भी अपने बहू-बेटों के अत्याचार और कटु वचन से अछूती नहीं रही। अपने से बड़ों के प्रति आज के युवा के मन में मानो तनिक भी सम्मान की भावना नहीं रही। वह उन्हें जलील करने और कटु वचन कहने में संकोच भी नहीं करते। ऐसा लगता है जैसे कभी उनका अपने जन्मदाताओं से कोई रिश्ता ही न रहा हो। जब वह कथा सुनने शकुंतला के घर चली जाती और उसे आने में विलंब हो जाता है तो उसकी बहुएं उसे तमाम तरह की खरी-खोटी सुना उसे जलील करती है। उसकी बहुएं कहती हैं– बुढ़िया मरने नहीं गीत गाने गयी थी। यह बूढ़ी हो गयी है लेकिन इसका गीत गाने का शौक गया नहीं। इस औरत को शर्म नहीं आती, गांव में घूम-घूम कर घूम-घूम कर गीत गाती है। घर में कोई मरे या जरे, इससे क्या मतलब। अगर गीत गाने का इतना ही शौक है तो एक कटोरा ले लो। गीत भी गाओ और भीख भी मांग लाओ। बुढ़वा-बुढ़िया दोनों का काम चल जायेगा।[9]

युवा वर्ग धन की लालसा में तमाम तरह के प्रपंच करता है। वह अपने ही जन्मदाता को प्रताड़ित करता है। वह अपनी मानवीयता, संवेदनाएं, मूल्य, विवेक सब त्याग चुका है। नागेश्वर दास के पुत्र भी अपने स्वार्थ-सिद्धि एवं धन लालसा में अपने पिता को पागल घोषित करने, उनकी हत्या का षड्यंत्र रचने में जरा भी संकोच नहीं करते। बावजूद इसके अपने दृढ संकल्प और मित्रों, सुधिजनों की सहायता से नागेश्वर दास वृद्धाश्रम बनवाने में सफल होते हैं।

सूरज सिंह नेगी द्वारा लिखित उपन्यास 'वसीयत' ऐसा उपन्यास है जिसमें युवा वर्ग की अपनी बुजुर्ग पीढ़ी के प्रति संवेदनहीनता तो दिखती है साथ ही उस संवेदनहीनता में फिर से संवेदना जागृत करने का प्रयास भी दिखता है। उल्लेखित उपन्यास का प्रमुख पात्र वृद्ध विश्वनाथ है। जब विश्वनाथ का पुत्र राजकुमार उसकी उपेक्षा करता है तो उसे अपने बीते जीवन में अपने पिता के साथ किए गए व्यवहार की याद आती है। अपने इस उपन्यास में उपन्यासकार ने बुजुर्गों के मन में पलती संवेदनाओं के माध्यम से एक अनोखी कथा का सृजन किया है। असल में कथाकार यह बताना चाहता है कि माँ-बाप अपनी संतान की खुशी के लिए हर संभव प्रयास करते हैं, उसके लिए सारी सुविधाएं उपलब्ध करवाते हैं, शिक्षा के लिए विदेश तक भेजते हैं लेकिन जब उसी संतान की आवश्यकता उन्हें अपने ढलती उम्र में पड़ती है तो वही संतान उनसे कर्तव्य-विमुख हो जाती है। उनकी इस कर्तव्य-विमुखता के कारण वृद्ध माता-पिता के मन में उपजी पीड़ा का कोई अंदाजा भी नहीं लगाया जा सकता। बुजुर्गों की असहनीय पीड़ा पर अपनी बात रखते हुए क्षमा शर्मा कहती हैं–

अपनों द्वारा ठुकराए जाने का जो मलाल होता है, उसका क्या कोई इलाज है? उस अकेलेपन और अपमान के अहसास का क्या जो उनके करीबी-जन उन्हें कराते हैं? वे बार-बार यह अहसास दिलाते हैं कि उनकी जरूरत अब घर में तो क्या इस धरती पर भी नहीं रही। उन्होंने जिनके लिए अपनी उम्र और अपने सारे संसाधन लगा दिए, वे ही दो जून की रोटी के लिए दुत्कारते हैं।[10]

बच्चे अपने माँ-बाप से ही सीखते हैं। वह बचपन में उनको जैसा करते हुए देखते हैं बड़े होकर वह भी उसी का अनुसरण करते हैं। शायद इसलिए ही विश्वनाथ का पुत्र अपने पिता के साथ वैसा ही व्यवहार करता है जैसा विश्वनाथ ने अपने माता-पिता के साथ किया होता है। जब विश्वनाथ अपने बेटे से बात करने की इच्छा लिए उसे फोन करता है तब उसके बेटे राजकुमार का जवाब उसे अंदर तक तोड़ देता है। राजकुमार कहता है–'पापा अब आप ठहरे रिटायर्ड आदमी, दिन भर आराम ही आराम, अरे हमें तो ठीक से काम करने दो, जानते हो कितना काम्पीटिशन है यहाँ पर।.....अब जब भी बात करनी हो तो छुट्टी के दिन कर लीजिए या मुझे फुर्सत मिलने पर मैं ही कर लिया करूंगा।[11]

समकालीन युग समष्टि की मानसिकता त्याग व्यष्टि पर केंद्रित हो गया है। मानवीय मूल्य सारे समाप्त हो चले हैं। विश्वनाथ की भी इच्छा विदेश जाकर पढ़ने की थी पर अपने पिता द्वारा मना करने पर वह उनसे संबंधित अपने मन में रोष पाल लेता है और शहर आकर फिर कभी गाँव जाने के लिए समय नहीं निकालता। जब उसका बेटा विदेश से लौटकर एक ही शहर में रहते हुए भी उनसे मिलने नहीं आता तब उसे अपनी गलतियों की याद आती है। विश्वनाथ इतना स्वार्थी हो चुका था कि वह अपनी माँ के बिगड़े स्वास्थ्य और उनकी मृत्यु शय्या पर पड़े रहने की खबर पाकर भी उनसे मिलने नहीं जाता बल्कि विदेश चला जाता है। एक इच्छा पूरी न होने पर अपने माता-पिता के प्रति इस प्रकार का मोह-भंग होना अमानवीयता की पराकाष्ठा ही जान पड़ती है। जब विश्वनाथ और उसकी पत्नी सुधा के सामने उनका पुत्र मुंह फेर चला जाता है तो विश्वनाथ को खुद पर अधिक ग्लानि होती है।

विश्वनाथ जो संस्कार खो चुका था वह उसे अपने पिता की डायरी पढ़ने पर पुनः प्राप्त हो गए। अपने गांव, अपने लोगों के प्रति उसके मन में संवेदनाएं जागृत हुई। वह अपने पिता और दादा जी द्वारा देखे गए सपने को जो कि अधूरा रह गया था उसे पूरा करने का प्रण लेता है। विश्वनाथ के पिता अपनी वसीयत उसे सौंपते हुए अपनी डायरी में लिखते हैं 'मेरे प्रिय विश्वा! मुझे पूरा यकीन है कि तू एक दिन अवश्य गांव वापस आएगा। तू मेरी वसीयत का असली हकदार तभी कहलायेगा जब तू यह संकल्प ले कि गांव में व्याप्त समस्याओं और कुरीतियों को दूर करने में शेष जीवन लगाएगा। लोगों का न्याय करेगा और इस गांव को उसी स्थिति में ले जाएगा जैसा वह पहले था। बेटा! अपने लिए सभी जीते हैं लेकिन दूसरों के लिए जीने वालों का जीवन ही सार्थक होता है। यह बात जीवन भर गांठ बाँध लेना।[12] अपने पिता की कही गई इस बात से विश्वनाथ का हृदय पूरी तरह से परिवर्तित हो स्वच्छ और निर्मल हो जाता है। वह गाँव जाकर वहां के लोगों के जीवन को संवारने में अपना योगदान देने लगता है। बीतते समय के साथ उसके मन में दबी इच्छा अपने बेटे, बहू और पोते से मिलने की वह भी पूरी हो जाती है और अपने कार्य में उसे अपने पुत्र का भी सहयोग प्राप्त होता है। राजकुमार भी अपने दादा जी की डायरी पढ़ सही दिशा पर अग्रसर होता है और अपनी माटी से हमेशा जुड़े रहने का संकल्प लेता है। संवेदनहीनता में उपजती संवेदना की यह किरण इस उपन्यास का खास पहलू है।

उल्लेखित उपन्यासों से गुजरते हुए यह स्पष्ट होता है कि आज की युवा पीढ़ी अपने संस्कारों, मूल्यों से च्युत होती जा रही है। वह अपनी स्वार्थ सिद्धि का जरिया अपने मां-बाप को बनाती है। उनके कंधे पर सवार हो अपने सपने साकार करती है पर जब उसी माता-पिता को उनकी वृद्धावस्था में संभालने की बारी आती है तो वह उससे अपना मुंह मोड़ लेती है। वैश्विक स्तर पर उपभोक्तावादी संस्कृति अपना मायाजाल फैला चुकी है। भारतीय युवा भी उसकी ओर आकर्षित होते चले जा रहे हैं। यह भारतीय जीवन मूल्य के लिए गंभीर चिंता

का विषय है। बुजुर्ग पीढ़ी का अनुभव जगत समृद्ध है। उनके अनुभव के प्राचुर्य से युवा वर्ग को नई दिशा मिल सकती है। बुजुर्गों को धन-वैभव नहीं चाहिए। उनके प्रति समाज की संवेदनशील दृष्टि का सर्वाधिक महत्व है। वे उपेक्षित और अवहेलित महसूस न करें। इस ओर समाज का विशेष ध्यान होना चाहिए। युवा पीढ़ी तथाकथित वैश्विक विकास की चकाचौंध में अपने परिवार और समाज के बुजुर्गों को पराया कर दे तो सामाजिक विकास का संतुलन नहीं बन सकता है। उपर्युक्त उपन्यासों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि किसी भी समाज के विकास के लिए उसमें समरसता बनाए रखने के लिए वृद्ध जीवन का सर्वाधिक महत्व है। संस्कार कभी अपना वर्चस्व नहीं खोता बस उसे सहेजे रखने की जरू रत होती है। संस्कार ही मानव जीवन की मूल वसीयत है। अगर संस्कार को सहेज कर रखें तो युवा और बुजुर्ग पीढ़ी दोनों ही साथ में खुशहाल जीवनयापन कर सकती हैं।

संदर्भ

1. कुमार, आशीष, 'तमस' और 'पिंजर' में मूल्य-बोध, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2024, पृष्ठ सं-19। **2.** नागार्जुन, नागार्जुन रचनावली, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, भाग-1, संस्करण 2003, पृष्ठ सं-293। **3.** हृदयेश, चार दरवेश, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, दूसरा संस्करण, 2013, पृष्ठ सं-08। **4.** यथोपरि, पृष्ठ सं-171। **5.** यथोपरि, पृष्ठ सं-153। **6.** यथोपरि, पृष्ठ सं-16। **7.** रामावतार, ढलती शाम, प्रतिश्रुति प्रकाशन, कोलकाता, संस्करण. 2013, पृष्ठ सं-69। 8. यथोपरि, पृष्ठ सं-73। 9. यथोपरि, पृष्ठ सं-14। 10. गुप्त, संजय (सं) दैनिक जागरण (राष्ट्रीय संस्करण), दैनिक हिंदी समाचार पत्र, रविवारीय अंतराल के अंतर्गत 'अपनों की अनदेखी का दर्द' क्षमा शर्मा, नई दिल्ली, 11 जून 2017। 11. नेगी, सूरज सिंह (डॉ.), वसीयत, साहित्यागार, जयपुर, 2018, पृष्ठ सं-47। 12. यथोपरि, पृष्ठ सं-263।

❐❐

शोधार्थी– हिन्दी विभाग,
पश्चिम बंगाल राज्य विश्वविद्यालय बारासात,
कोलकता-700126
मोबाइल- 9804389127

जब तक साथ एक भी दम हो, हो अवशेष एक भी धड़कन।
रखो आत्मगौरव से ऊंची पलकें ऊंचा सिर ऊंचा मन।।
एक बूंद भी रक्त शेष हो, जब तक तन में हे शत्रुंजय!
हीन वचन मुख से न उचारो, मानो नहीं मृत्यु का भी भय।।

(जब तक हमारे शरीर में एक सांस और एक धड़कन शेष हो, तब तक हमें अपनी आंखें, अपना सिर तथा अपना मन ऊंचा रखना चाहिए। हे शत्रुंजय! जब तक हमारी देह में एक बूंद भी खून शेष रहे, तब तक हमें अपने मुंह से दीन वचन नहीं बोलना चाहिए और न कभी मृत्यु का भय मानना चाहिए।

- रामनरेश त्रिपाठी

हिंदी दलित साहित्य : दृष्टि और अपेक्षा

मनोज कुमार दास

दलित वह है जिसे हमारे समाज में घृणित रूप में देखा जाता है उसे न उसके अधिकार दिए जाते हैं न किसी प्रकार की स्वतंत्रता। उनका बस इस समाज में वृत्ताकार रूप से शोषण किया जाता है। दलित शब्द का अर्थ है 'जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनिष्ट, मर्दित, पस्त-हिम्मत, हतोत्साहित, वंचित आदि[1] 'वहीं डॉ. श्योराज सिंह बेचैन दलित शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं– 'दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है।'[2] इसी प्रकार कँवल भारती का मानना है कि 'दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है। जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया और जिस पर सछूतों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की, वही और वही दलित है, और इसके अन्तर्गत वही जातियाँ आती हैं, जिन्हें अनुसूचित जातियाँ कहा जाता है'[3]

दलित आलोचक बिना किसी भेद-भाव और भयमुक्त होकर अपनी आलोचना प्रस्तुत करते हैं जिसके कारण आलोचना प्रामाणिक और विशिष्ट मानी जाती है। ओमप्रकाश वाल्मिकी ने 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' की भूमिका में आलोचना के सन्दर्भ में लिखा है कि– 'दलित लेखकों द्वारा आत्मकथाएँ लिखने की जो छटपटाहट है वह भी इन स्थितियों की ही परिणति है। सामाजिक अन्तर्विरोध से उपजी विसंगतियों ने दलितों में गहन नैराश्य पैदा किया है। सामाजिक संरचना के परिणाम बेहद अमानवीय एवं नारकीय सिद्ध हुए हैं। सामाजिक जीवन की दग्ध अनुभूतियाँ अपने अन्तः में छिपाए दलितों के हीन-दीन चेहरे सहमे हुए हैं। इन भयावह स्थितियों के निर्माता कौन हैं? दोहरे सांस्कृतिक मूल्यों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी ढोते रहने को अभिशप्त जनमानस की विवशता साहित्य के लिए जरूरी क्यों नहीं है? क्यों साहित्य एकांगी होकर रह गया है? ये सारे प्रश्न दलित साहित्य की अन्तःचेतना में समायोजित हैं[4]।

दलित साहित्य का जन्म उत्पीड़न की कोख से हुआ है। आर्यों के बाद भारत के मूल निवासियों और आर्यों के बीच लम्बे समय तक यहाँ के निवासी संघर्ष करते रहे तथा अपनी पराजय के बाद हाशिये पर आ गये और आर्यों का भारत में वर्चस्व स्थापित हो गया। कालांतर में ऐसे-ऐसे नियम बनाये गये जिनसे मनुष्य का एक बहुत बड़ा समूह को दस्यु से दास फिर अस्पृश्य बना दिया गया तथा ब्राह्मण वर्ग ने सारा विशेषाधिकार सुरक्षित कर लिया। इस व्यवस्था का विद्रोह गौतमबुद्ध ने किया। उन्होंने पूजा उपासना का अधिकार शूद्रों को ही नहीं बल्कि स्त्रियों को भी दिया तथा बुद्ध ने अपनी शिक्षाओं के माध्यम से लोगों में ज्ञान का दीपक जलाया तथा अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया तथा इनके आधार पर बौद्ध साहित्य की रचना की

गयी, जिसमें मानव और मानव के बीच जाति, धर्म, और वर्ण के आधार पर किसी प्रकार का कोई भेद-भाव नही बरता गया। इसलिए बौद्ध साहित्य दलित साहित्य का प्रेरणा-स्रोत बना। हम मध्यकाल में जब प्रवेश करते हैं तो देख पाते हैं कि अधिकांश सिद्ध और नाथ मूलतः बौद्ध थे। इनका विरोध हिन्दू वर्चस्ववादियों से मूलतः साधना पद्धति से था जिसने मनुष्य को अस्पृश्य बना दिया था और मंदिरों में प्रवेश तथा धर्मग्रन्थों के पठन-पाठन से भी वंचित कर दिया था।

दलित साहित्य के संदर्भ में यह धारणा प्रायः प्रचलित रही कि इसका उद्‌भव मराठी से ही हुआ था। हिन्दी दलित साहित्य पर तो उसकी कलम होने का आरोप भी लगता रहा था। हिन्दी के प्रख्यात आलोचक नामवर सिंह ने हिन्दी दलित साहित्य पर प्रहार करते हुए कहा है– *'मूल पौधा तो मराठी का है, अब हिन्दी में इसकी कलम लगाई जा रही है '*[5] लेकिन यह सच नहीं है, हिन्दी में जब हम सिद्ध और नाथ कवियों का अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि चौरासी सिद्ध कवियों में तीस शूद्र थे, इन सभी सिद्ध कवियों ने वर्णव्यवस्था, जाति तथा ब्राह्मण वर्चस्व का खुला विरोध किया। इसी प्रकार नाथों के गुरु गोरखनाथ ने शूद्रों को पढ़ाने की बात कही है– *'वसैन्दर मुनि मुषि ब्रहम जो होते सुद्र पढ़ाऊ बानी/असंवद विधि ब्राह्मण जग निपजा, मैने जुगति जगाया पानी'* बौद्ध, सिद्ध और नाथ साहित्य से होती हुई दलित चेतना की सबल अभिव्यक्ति निर्गुण संतों की वाणी में हुई। हिन्दी के लोकगीतों में दलितों ने अपनी पीड़ा को निरंतर गाया। 'हीरा डोम' की कविता 'अछूत की शिकायत' जो सरस्वती मासिक के सितम्बर 1914 अंक में प्रकाशित हुई थी उसी पीड़ा को व्यक्त करती है– *'हमनी के रात दिन दुःखवा भोगत बानी /हमनी के सहेबे से गिनती सुना इबि। हमनी के दुख भगवनओं न देखता जे/हमनी के कबले कलेसवा उठाईबि।*

मध्यकाल के सन्तों में कबीर, रैदास, पीपा, धन्ना, सहजोबाई आदि ने ईश्वर को अपने मन के अन्दर ही ढूंढा और पाया। यह आकस्मिक नहीं था बल्कि एक विवशता थी क्योंकि ब्राह्मणों ने अपने मंदिरों में जाने तथा अपने ग्रन्थों को पढ़ना वर्जित कर रखा था। अतः इन्होंने अपने मन को ही मंदिर माना। रैदास ने कहा– *'का मथुरा का द्वारका, का कासी हरिद्वार।/रैदास खोजा दिल आपना, तउ मिलिया दिलदार।।'* रैदास ने जन्माधारित वर्ण-व्यवस्था पर चोट की, जो व्यक्ति को जन्म लेते ही उच्च और निम्न बनाती है– *'रैदास जन्म के कारनै होत न कोई नीच।। नर को नीच कारे डारी है, ओछेकरन की कीच।।'* दलित सन्तों की वाणी ओजस्वी एवं विरोध परक थी। धार्मिक, जाति व्यवस्था एवं अंधविश्वास के प्रति विरोध, सामाजिक असमानता के प्रति नकारात्मक, परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों को चुनौती, साहित्यिक मिथकों, प्रतीकों, छन्दों और भाषा के विद्रोह का स्वर इन दलित संतों की अभिव्यक्ति का विषय रहा।

आधुनिककाल में दलित साहित्य को सबसे अधिक डॉ. अम्बेडकर के जीवन और उनके साहित्य ने प्रभावित किया है। शताब्दियों से अशिक्षा, अज्ञान एवं दरिद्रता के अंधेरे में भटकते हुए इस वर्ग के लिए डॉ. अम्बेडकर एक सूर्य के रूप में उदित हुए, जिसने उन्हें समता, शिक्षा, सम्मान का प्रकाश प्रदान किया। डॉ. अम्बेडकर को अपने बचपन में ही अस्पृश्यता के अभिशाप का आभास हो गया था। डॉ. अम्बेडकर को छात्र जीवन में ऐसे कटु अनुभव हुए जिनके कारण उनके मन में हिन्दुओं और हिन्दू धर्म के प्रति अपार घृणा पैदा हो गयी थी तथा अम्बेडकर ने अपना सम्पूर्ण जीवन दलित समाज को अस्पृश्यता के अभिशाप से मुक्ति दिलाने में लगा दिया। शरण कुमार लिम्बाले के अनुसार 'दलित साहित्य अपना केन्द्र बिंदु मनुष्य को मानता है। बाबा साहब के विचारों से दलित को अपनी गुलामी का एहसास हुआ। उनकी वेदना को वाणी मिली, समाज को बाबा साहब के रूप में अपना नायक मिला। दलितों की वेदना दलित साहित्य की जन्मदात्री है। दलित साहित्य की वेदना 'मैं' की वेदना नहीं है, वह बहिष्कृत समाज की वेदना है।'[6] दलित साहित्य की प्रेरणा का स्रोत वर्तमान काल में तो डॉ. अम्बेडकर का जीवन, साहित्य और विचारधारा ही है। सभी भाषाओं के दलित लेखक एकमत हो इसे स्वीकार करते हैं।

बीसवीं सदी का अंतिम दशक दलित साहित्य के विकास में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है, क्योंकि इसी दशक में हिन्दी दलित साहित्य ने अपनी विधाओं का विस्तार किया। कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, निबंध, नाटक आलोचना में ही नहीं अनुवाद और शोध के क्षेत्र में भी पर्याप्त कार्य हुआ है। इसकी बढ़ती लोकप्रियता के कारण कुछ ऐसे लोग भी जागे जिन्होंने यह प्रश्न उठाया कि न तो साहित्य दलित होता है और न साहित्यकार, दलित की भावना रखकर कोई व्यक्ति अच्छा साहित्य नहीं लिख सकता। इसका उत्तर भी दलित साहित्यकारों ने दिया कि दलित शब्द हिन्दुओं की उस कुत्सित मनसिकता का प्रतीक है जिसके तहत उन्होंने एक पूरे वर्ग का दैहिक, मानसिक, आर्थिक, धार्मिक और नैतिक उत्पीड़न किया है और यह आज के दलित जीवन का सच है कि आज दलित सम्मान पाने के लिए ही साहित्य, समाज और राजनीति में संघर्ष कर रहे हैं। यह सारी उथल-पुथल उसी का परिणाम है।

हिन्दी दलित आलोचना के क्षेत्र में दलित आलोचकों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। दलित आलोचक कर्मकाण्डी और अंधविश्वासी पौराणिक मान्यताओं एवं भाग्य-भगवान जैसी बातों को मानने के पक्षधर नहीं हैं। दलित साहित्य में इनके विरुद्ध और जाति आधारित शोषण, दमन, उत्पीड़न के खिलाफ विरोध का भाव अभिव्यक्त हुआ। अतः इस साहित्य की भाषा कड़वाहट, आक्रोश और संघर्ष से भरी हुई है जो गैर दलित विचारकों की रचना पद्धति से परे है। दलित साहित्य की भाषा, बिम्ब, प्रतीक, भावबोध के परम्परावादी साहित्य से भिन्न हैं, उसके संस्कार भिन्न हैं। दलितों की मान्यता है कि दलित साहित्य का सही आलोचक दलित ही हो सकता है क्योंकि उसने उस स्थिति को करीब से देखा, पीड़ा को भोगा है। इसी संदर्भ में काशीनाथ सिंह अपना विरोध व्यक्त करते हुए कहते हैं– घोड़ा पर लिखने के लिए घोड़ा होना जरूरी नहीं है। इस वक्तव्य को खारिज करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकी अपने सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका में लिखते हैं– 'विद्वान कथाकार का यह तर्क किस सोच को खारिज करता है? घोड़े को देखकर उसके बाह्य अंगों, उसकी दुलकी चाल, उसके पुट्ठों, उसकी हिनहिनाहट पर ही लिखेंगे। लेकिन दिन-भर का थका-हारा, जब वह अस्तबल में भूखा-प्यासा खूँटे से बंधा होगा तब अपने मालिक के प्रति उसके मन में क्या भाव उठ रहे होंगे उसकी अन्तःपीड़ा क्या होगी इसे आप कैसे समझ पाएंगे? मालिक का कौन सा रूप और चेहरा उसकी कल्पना में होगा इसे सिर्फ घोड़ा ही जानता है।[7]

दलित आलोचना का उद्देश्य किसी के मन में शत्रुता का भाव उपजाना नहीं है, बल्कि दलित आलोचना मित्रता, समानता, अपनापन और दलितों के प्रति हो रहे दुर्व्यवहार को उजागर करना है। वह चाहता है इस समाज में वर्ण व्यवस्था, जातिभेद, साम्प्रदायिकता का विरोध हो और यह जड़ से समाप्त हो। दलित आलोचक समाज में अलगाववाद का नहीं भाईचारे का समर्थन करना चाहते हैं तथा स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय की पक्षधरता पर जोर देना ही इस साहित्य का प्रमुख उद्देश्य है।

दलित साहित्य सहानुभूति नहीं चाहता, अपना अधिकार चाहता है। जिस समाज को सदियों से अचेतन अवस्था में रखा गया था आज उसमें चेतना जागृत हो रही है। डॉ. श्योराज सिंह बेचैन का इस सन्दर्भ में कहना है कि 'दलित साहित्य उन अछूत का साहित्य है जिन्हें सामाजिक स्तर पर सम्मान नहीं मिला। सामाजिक स्तर पर जातिभेद के जो लोग शिकार हुए हैं उनकी छठपटाहट ही शब्दबद्ध होकर दलित साहित्य बन रही है।

सन्दर्भ

1. दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, ओमप्रकाश बाल्मीकि, पृ. 13। **2.** वही - पृ. 13। **3.** वही - पृ. 13। **4.** दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र ओमप्रकाश बाल्मीकि, भूमिका। **5.** दलित साहित्य का प्रतिमान, डॉ. एन. सिंह, पृ. 10। **6.** उत्तर प्रदेश पत्रिका, सितम्बर- अक्टूबर 2002 पृ. 42। **7.** दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र-ओमप्रकाश बाल्मीकि, भूमिका। 8. दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र- ओमप्रकाश बाल्मीकि, भूमिका पृ.15।

❑❑

शोध छात्र- हिन्दी विभाग,
पश्चिम बंगाल राज्य विश्वविद्यालय बारासात,
कोलकाता -700126, मो. 7439489720

स्वातंत्र्योत्तर स्वप्नभंग 'निन्यानबे' में : एक विश्लेषण

डॉ. बिन्दु एम.जी.

स्वप्न और स्वप्न भंग के साथ गहरा नाता रखने वाला सामाजिक प्राणी है मनुष्य। मनुष्य असल में स्वप्न जीवी है। भविष्य संबंधी सपना वह निरंतर देखता ही रहता है। स्वतंत्रता पूर्ववर्ती भारत का जन मानस सपनों से भरा था। स्वतंत्र भारत में जीने का सपना वे देख रहे थे। दीर्घ काल के संग्राम के बाद अंग्रेजी शासकों को यहां से भगाने में हम सफल हुए, भारत देश की जनता के चिरकालीन स्वप्न का साक्षात्कार भी हो गया। परन्तु स्वातंत्र्योत्तर भारत की सामाजिक परिस्थिति देश की जनता के सपने के एकदम विपरीत ही थी। उनका सपना मात्र सपना ही रह गया। अंग्रेज जिस शोषण से युक्त शासन नीति को यहां चला रहे थे उसका पल्ला पकड़ कर आगे बढ़ने का कार्य हमारे देशी नेतागण करने लगे। शोषित जनता तब भी शोषण की चक्की में पिसती रही।

श्री रवीन्द्र वर्मा का उपन्यास निन्यानबे स्वतंत्र भारत की जनता के सपने के दुस्वप्न में परिणत होने की कहानी कहता है। सन 1857 से लेकर 1992 तक भारत देश में फैली विध्वंसकारी घटनाओं को एक सूत्र में पिरोने का कार्य श्री रवीन्द्र वर्मा ने इस उपन्यास में किया है। रामदयाल इस उपन्यास का सर्वप्रमुख कथा पात्र है। रामदयाल के परिवार की पांच पीढ़ियों का चरित्रांकन उपन्यास में मिलता है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी मनुष्य की मानसिकता में होने वाले परिवर्तनों को उपन्यास में दिखाया गया है। इन पांच पीढ़ियों की कहानियों के द्वारा लेखक ने भारत के गौरवपूर्ण अतीत को दिखाया है, वर्तमान महत्वाकांक्षा से युक्त जनमानस को दिखाया है, साथ ही साथ भविष्य के प्रति आशंकित मानव हृदय को दिखाया है।

रामदयाल के परिवार के एक पुरखे ने 1857 के देशव्यापी स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया था। अंग्रेजी सैनिकों ने उसको पकड़ लिया और तीसरे दिन घर के आंगन में नीम के पेड़ पर उसकी लाश लटकी हुई दीख पड़ी। इस आतंक से भयभीत होकर उसका पुत्र घर से भाग कर जंगल में छिपकर रहने लगा। जंगल में भूख मिटाने के लिए उसको घास खानी पड़ी। इसी के पुत्र रामदयाल थे। त्याग और बलिदान की भावना उनको विरासत के रूप में मिल गयी थी। देश की आज़ादी उनके लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी। महात्मागांधी के अहिंसा सिद्धांत पर उनकी पूरी आस्था थी। स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेकर कई बार उन्होंने जेल वास भी किया था। देश सेवा के नशे में पड़कर वे सरस्वती पाठशाला में काम करने लगे। देश की आज़ादी ही उनके लिए सर्वप्रमुख थी। इसके लिए अपनी सारी सुख सुविधाओं को त्यागने को वे तैयार थे। एक बार वे अपनी पत्नी से कहते हैं -'तुम्हें मालूम है गांधीजी ने अफ्रीका में अपनी पत्नी से टट्टी साफ कराई थी और कहा था, यदि मुझे अपनी शादी और देश की आज़ादी में से एक को चुनना पड़े तो मैं आज़ादी चुनूंगा।[1]

देश स्वतंत्र हुआ। समय के बदलाव के साथ समाज तथा मनुष्य की जीवन शैली में कई सारे परिवर्तन आ गए। मनुष्य अधिकाधिक स्वार्थी होने लगे। परन्तु रामदयाल के व्यक्तित्व में तब भी

कोई बदलाव नहीं आया था। वे पहले के जैसा सादा जीवन जी रहे थे। गांधीजी के अहिंसा सिद्धांत पर उनका पूरा भरोसा था। अब भी वे घर में धारीदार पट्टे का जांघिया पहनते थे। उनके बच्चे भी धारीदार जांघिया पहनते थे। इस सादा जीवन के पीछे एक नग्न सत्य छिपा रहता था, वह है आर्थिक अभावग्रस्तता। उनका परिवार अभावों का परिवार था। रामदयाल की पत्नी का विचार इस बात को स्पष्ट करता है, 'अम्मा ने एक बार ज़रूर सोचा था कि वे भी घर में पांच गज धोती की जगह धारीदार जांघिया पहन सकती तो खर्च कम होता। घर का दिनारंभ एक लंबी खोह सी टट्टी, घर में बने काले दन्तमंजन, एक जीभी और एक तौलिए से होता, घर के सभी सदस्य एक जीभी और एक तौलिए का इस्तेमाल करते थे'।[2]

असल में रामदयाल का परिवार स्वतंत्र भारत के परिवार का प्रतीक है। उनके पास सपने के सिवा कुछ भी नहीं है। इस परिस्थिति में भी देश भर में यह नारा गूंज रहा था कि 'भारत समाजवाद की ओर'। नेहरूजी के नेतृत्व में पंचवर्षीय योजना का बोलबाला सर्वत्र व्याप्त था। लोग यही सोचते थे कि बड़े उद्योग अब राज्य के हाथ में होंगे और उनका लाभ बड़ों की बड़ी तोंदों में नहीं छोटों के छोटे पेंटों में जाएगा। 'अपने समाज में आने वाले समाजवादी ढांचे के बारे में नेताओं के भीगे भीगे उद्‌गार पढ़कर रामदयाल को लग रहा था जैसे घर में आने वाले नए बच्चे की अग्रिम जन्मकुंडली पढ़ रहे हों। रामदयाल का स्वप्न हो गया क्योंकि रामदयाल स्वप्न देखना चाहते थे।[3]

स्वतंत्र भारत की हर एक भारतीय की सोच लगभग रामदयाल की जैसी थी। अर्थाभाव से मुक्त एक स्वतंत्र देश की परिकल्पना सब लोग करते थे। लेकिन यथार्थ ठीक इसके उल्टा ही था। आगामी पीढ़ी ने इस यथार्थ को तुरंत पहचान लिया। रामदयाल के बच्चे इसका उदाहरण हैं। बचपन से लेकर उनके बच्चे गरीबी और अभावों का जीवन जी रहे हैं। पेट भर खाने को वे बहुत अधिक चाहते थे। इसलिए बचपन से लेकर अनजाने ही यह स्वार्थ भावना जाग उठती है कि किसी न किसी प्रकार जीवन में सफल होना है। वे मात्र अपने बारे में सोचने वाले हो गये। रामदयाल का बड़ा बेटा बलदयाल (बल्लों) पढ़ने में होशियार है। वह डॉक्टर बनना चाहता है। इसका फार्म भरने के लिए उसने पिता से पच्चास रुपया मांगा तो रामदयाल उत्तर देते हैं कि मेरे पास कभी पैसा नहीं रहता, मुझे पैसों की ज़रूरत नहीं है तो बल्लो चीखकर इस प्रकार कहता है - पैसा नहीं है तो मैं डाक्टर कैसे बनूंगा। यह असल में एक युवा मानस की फटती हुई आवाज थी जिसमें रामदयाल की पारिवारिक खनक थी। इसी आवाज में रामदयाल का छोटा भाई तीन दशक वर्ष पहले चीखा था- 'खद्दर की टोपी से देश आजाद नहीं होगा'। हरी रामदयाल का छोटा भाई था। वह क्रान्तिकारी दल का प्रवर्तक था। स्वतंत्रता की एक लड़ाई में बम विस्फोट में वह मारा गया। यहां हरी और बल्लों की आवाज में निराशा की छाया है किन्तु दोनों का संवाद अलग-अलग था। हरी की निराशा मात्र उसके लिए नहीं थी। वह अपने बारे में सोचता भी नहीं था। अतः हरी का जमाना अपने बारे में सोचने का जमाना नहीं था। आज जमाना बदल गया है। व्यक्ति मात्र अपने बारे में सोचने वाला बन गया है। लेकिन रामदयाल अपने आप को बदलने में पूर्णतः असमर्थ हो जाते हैं। वे अपने बेटे से कहते हैं- 'पैसा होता तो हमारे देश में कोई नंगा होता न भूखा। पैसा नहीं है इसलिए फाके हैं, मौत है। फिलहाल जो है उसी से गुजारना है'।[4] बाबूजी का यह कथन बिल्लो के अन्दर के खालीपन को और अधिक बढ़ाता है। भविष्य में मात्र अन्धकार ही उसको दिखाई पड़ा। आगे की पढ़ाई में उसको कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उच्च शिक्षा उसे निजी कमाई पर ही करनी पड़ी। आखिर उसे कालेज में नौकरी मिलती है।

रामदयाल का दूसरा बेटा किन्ने (कृष्ण दयाल) आधुनिक उपभोग वादी संस्कृति का समर्थन करने वाला है। बचपन से ही उसको चित्र रचना में रुचि थी और वह कविता भी लिखता था। उसके मन में यह भरोसा था कि एक दिन उसकी कविताएं और चित्र संसार में जाने जाएंगे। उसने अपने नाम को भी बदल डाला। अब वह 'के के' नाम से जाना जाता है। वह अन्तर्राष्ट्रीय चित्रकार बन गया है। उसके चित्र देश विदेश में बिकते हैं और अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों में लगाए जाते हैं। समाज में नाम और स्थान कमाने के अलावा उसका और कोई लक्ष्य नहीं था। इस लक्ष्य के सामने सब कुछ, अपने माता-

पिता को भी छोड़ने को वह तैयार था। उसके यहां पहुंचे माता पिता को गैरेज में छोड़कर वह चला जाता है। दंभ के उत्तुंग शिखर पर पहुंच कर वह कहता है- 'अन्तर्राष्ट्रीय कलाकार को पैसे की ज़रू रत नहीं होती। पैसे को अन्तर्राष्ट्रीय कलाकार की जरूरत होती है। क्योंकि वह अन्तर्राष्ट्रीय कलाकार का रोजगार करता है'।[5] आधुनिक भूमण्डलीकरण और बाजारीकरण की दुनिया में मानव जीवन में हुए परिवर्तन यहां देखने को मिलता है। 'जब कलाकार का भूमण्डलीकरण होता है तो क्या वह देहरी द्वार, घर-बार व अपने परिवार सबसे ऊपर उठ जाता है'।[6]

रामदयाल का तीसरा बेटा हरी जिसको रामदयाल ने अपने छोटे भाई का नाम दे दिया। हरी रामदयाल को बहुत प्यारा था लेकिन वह रामदयाल को बहुत अधिक आतंकित करता है। बचपन से ही वह रामदयाल के विरुद्ध था। वह धारीदार जांघिया नहीं पहनता। कालेज के छात्र नेता का अनुयाई बनकर कई बुरी करतूतों में भाग लेता था। बाद में वह नेता और ठेकेदार बन जाता है। ठेके से वह लाखों कमाता है। एक आलीशान महल बनाता है। बाद में वह अपने पुश्तैनी घर को बेचकर तथा उससे मिलने वाले एक लाख रुपए से अपने पास के निन्यानबे लाख को करोड़ बनाकर करोड़पति बनना चाहता है। बल्लों विक्षिप्त होकर उससे कहता है -'भैया क्या तुम्हें मालूम है कि हमारे पिता के पिता ने पिछली सदी में घास खाई थी जब उनके पिता को मारकर अंग्रेजों ने उनकी लाश हमारे घर के सामने लटका दी थी और घर में आग लगा दी थी? एक सदी बाद उनके बेटे का बेटा निन्यानबे लाख का मालिक है। एक बार अंग्रेजों ने घर जलाया और तुम घर बेचोगे?'।[7] भूमंडलीकरण और बाजारू संस्कृति के कारण उत्पन्न विकृत सामाजिक स्थिति मनुष्य को भी विकृत बना दिया है। विज्ञापन ई संस्कृति का मूल उद्देश्य माल को बेचना और लाभ कमाना ही है। वहां घर परिवार और मानवीय संवेदना को कोई महत्व नहीं है। सब कुछ बिकाउ की चीज है। इसलिए हरी निन्यानबे लाख को एक करोड़ बनाने के लिए अपने पुश्तैनी घर को बेचने का निर्णय कर लेता है।

इस उपन्यास में सन् 1957 से लेकर 1999 तक के राष्ट्रीय, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक परिवर्तनों का पर्दाफाश है। कांग्रेस और नेहरू जी का समाजवादी सपना, नेहरू जी की मृत्यु, बैंकों का राष्ट्रीयकरण, भारत पाकिस्तान युद्ध, बंग्लादेश का जन्म, आपातकाल, इन्दिरा गांधी की हत्या, बाबरी मस्जिद विध्वंस आदि का अंकन उपन्यास में है। आज की राजनीति धर्म पर आधारित राजनीति है। धर्म को वोट बनाने के काम आज चल रहे हैं। बाबरी मस्जित विध्वंस के पीछे भी यही राजनीति कार्यरत थी। 'प्रिया बता रही थी कि उसके स्कूल में दो मुस्लिम लड़कों ने मिट्टी की मस्जिद बनाकर गिराने का एतराज किया तो लड़कियों ने धुनाई कर दी। लड़कियां प्रिंसिपल के पास शिकायत के लिए गई थी लेकिन प्रिंसिपल अपने कमरे में सो रही थी। मस्जिद गिर रही थी और प्रिंसिपल सो रही है'।[8]

राजनीतिक षड्यंत्र का पर्दाफाश इन वाक्यों में है। धर्म को लेकर चलने वाली हलचल का बुरा असर बल्लो पर पड़ता है। क्योंकि उसने एक मुसलमान लड़की से शादी की है। जब उसने पहली बार अपनी पत्नी को उल्फत पुकारा तो आनन्द का अनुभव करता था, किन्तु आज वह नाम पुकारने से डरता है। उपन्यास में यह बताया गया है कि बाबरी मस्जिद में राममंदिर का शिलान्यास हुआ रथयात्राओं का शोर बढ़ा, सड़कों बाजारों और बागो में 'जै श्री राम' का नारा बुलंद हुआ। ये सारी अफवाहें यह दिखा रही हैं कि आज यहां जीने के लिए या तो राम बनना है या रहीम और फिर विपक्ष में खड़े होकर लड़ना भी है। लड़ाने वाले ऊपर कुर्सी पर बैठे लोग हैं, हम नीचे सड़क पर लड़ते मरते रहते हैं। निरंतर चलने वाले इस षडयंत्र पर उंगली उठाने का कार्य उपन्यास में किया गया है।

संदर्भ

1. निन्यानबे- रवीन्द्र वर्मा : पृष्ठ संख्या 11। **2.** निन्यानबे- रवीन्द्र वर्मा : पृष्ठ संख्या 54। **3.** निन्यानबे- रवीन्द्र वर्मा : पृष्ठ संख्या 67। **4.** निन्यानबे- रवीन्द्र वर्मा : पृष्ठ संख्या 52। **5.** निन्यानबे- रवीन्द्र वर्मा : पृष्ठ संख्या 198। **6.** निन्यानबे- रवीन्द्र वर्मा : पृष्ठ संख्या 199। **7.** निन्यानबे- रवीन्द्र वर्मा : पृष्ठ संख्या 206। **8.** निन्यानबे- रवीन्द्र वर्मा : पृष्ठ संख्या 182। ❑❑

एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग- महाराजा कॉलेज, अर्नाकुलम
केरल-683513, मो. 6238615803

यजुर्वेदीय संख्यायें : आधुनिक गणित के परिप्रेक्ष्य में

आयुष नंदन

प्रस्तावना (शोध-सार) इस शोधपत्र में यजुर्वेद के मंत्रों का गणित से सम्बन्ध और उन मंत्रों की आधुनिक गणितीय धारा में भूमिका पर विचार किया जाएगा। इसमें यह देखा जाएगा कि कैसे मंत्रों का उपयोग कर आज के गणितीय सिद्धांतों को समझा जा सकता है, जैसे कि अंकगणितीय अनुक्रम (Arithmetic Progression), गुणोत्तर श्रेढ़ी (Geometric Progression), संख्याओं की पहचान (Number), संख्यात्मक संरचना (Number System), सम और विषम संख्याएँ (Even and Odd Numbers), प्राकृतिक और पूर्णांक (Natural and Whole Numbers), विभाज्य संख्या (Divisible Number), अविभाज्य संख्या (Prime Number) और गणना की मूल क्रियाएँ, जैसे- जोड़, घटाव, गुणन और भाग (Addition, Subtraction, Multiplication, Division) आदि। शोधपत्र में ऐसे कई गणितीय सिद्धांतों को प्रस्तुत किया जाएगा जो न केवल प्राचीन समय में महत्वपूर्ण थे, बल्कि आज भी वैज्ञानिक अध्ययन और व्यावहारिक कार्यों में उपयोगी हैं। भारतीय गणित की यह प्राचीन धारा आज भी वैश्विक संदर्भ में अत्यधिक प्रासंगिक है। (बीज शब्द- 1. वेद 2. यजुर्वेद 3. मन्त्र 4. गणितीय सिद्धान्त 5. अंकगणितीय अनुक्रम 6. गुणोत्तर श्रेढ़ी 7. संख्या 8. आधुनिक गणित 9. गुणन 10. सच्छन्दाः 11. विच्छन्दाः)।

परिचय– वेदों को विश्व के सबसे प्राचीन और अमूल्य ज्ञान का स्रोत माना जाता है। ये मानवता के इतिहास में विचार, दर्शन, विज्ञान, और संस्कृति के आधारभूत सिद्धांतों का संग्रह हैं। वेद न केवल धार्मिक या आध्यात्मिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि इनकी गहरी वैज्ञानिक, चिकित्सीय, गणितीय और दार्शनिक धारा भी अत्यंत समृद्ध है। वेदों ने ही विज्ञान के सिद्धांतों की नींव रखी और समग्र ज्ञान की उत्पत्ति यहीं से हुई। जैसा कि मनुस्मृति में कहा गया है की वेद सभी ज्ञानों का स्रोत हैं। जब हम वेदों के मन्त्रों का गहरे से अध्ययन करते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि इनमें वैज्ञानिक तथ्यों और सिद्धांतों के गहरे रहस्य भी छिपे हुए हैं। वेद न केवल धार्मिक शिक्षा का आधार हैं बल्कि इनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी अत्यंत समृद्ध और महत्वपूर्ण है। यजुर्वेद का समय 1200 ईसा पूर्व से 1000 ईसा पूर्व है। इसका गणित के क्षेत्र में बहुमूल्य योगदान है। गणितशास्त्र अपनी सभी शाखाओं जैसे अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति और त्रिकोणमिति आदि प्राचीन भारत में अच्छी तरह से विकसित थे। वैदिक लोग गणितीय ज्ञान से पूर्णतया परिचित थे तथा उन्हें व्यावहारिक ज्यामिति का भी ज्ञान था। ज्यामिति की उत्पत्ति शुल्बसूत्र से हुई है। वैदिक लोग विशेष प्रकार के उपकरणों, जैसे ईंटों का उपयोग करके निर्धारित आकृतियों और आकारों में बलि-वेदियाँ बनाते थे। शुल्बसूत्र आठ हैं– बौधायन, मानव, आपस्तम्ब,

कात्यायन, सत्याषाढ़, वाधुल, वराह और मैत्रायणी। इनमें से प्रथम चार स्वतंत्र ग्रन्थ के रूप में उपलब्ध हैं। सात शुल्बसूत्र कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित हैं और कात्यायन शुल्बसूत्र शुक्ल-यजुर्वेद से सम्बन्धित है। वेदांग के अन्तर्गत शुल्बसूत्रों के द्वारा त्रिकोण, आयतों, वर्गों, समांतर चतुर्भुजों और वृत्तों के गुणों की व्याख्या करके उनको बनाने के महत्वपूर्ण नियम दिए गए हैं।

यजुर्वेद के मन्त्र संख्या 17.2 में 100 से 1012 तक की संख्याओं की जानकारी प्राप्त होती है। निम्न सारणी के माध्यम से यजुर्वैदिककालीन संख्या लेखन पद्धति को स्पष्ट किया गया है। एक– 1 (100), दश- 10 (101), शत- 100 (102), सहस्र- 1000 (103), अयुत- 10000 (10 4), नियुत- 100000 (105), प्रयुत- 1000000 (106), अर्बुद- 10000000 (107), न्यर्बुद-100000000 (108), समुद्र- 1000000000 (109), मध्य- 10000000000 (1010), अन्त- 100000000000 (1011), परार्द्ध- 1000000000000 (1012)। यहाँ हमें आधुनिक गणितशास्त्र के Exponent and Powers की अवधारणा प्राप्त होती है। जैसे अयुत 10000 (104) = 10x10x10x10। यजुर्वैदिक याग पद्धति में संख्याओं की लेखन पद्धति का स्पष्टतया वर्णन मंत्र 18.24 तथा 18.25 में प्राप्त होता है- *एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च मे एकादश च मे एकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च मे एकविंशतिश्च मे एकविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे एकत्रिंशच्च मे एकत्रिंशच्च मे त्रयस्त्रिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।*[i] अर्थात् एक, तीन, पाँच, सात, नव, ग्यारह, तेरह, पन्द्रह, सतरह, उन्नीस, इक्कीस, तेईस, पच्चीस, सत्ताईस, उन्तीस, इकत्तीस और तैंतिस प्रभृति अयुग्म साम मुझे यज्ञ से सिद्ध होवें। अयुग्म संख्या का विवरण है– (1,3), (3,5), (5,7), (7,9), (9,11), (11,13), (13,15), (15,17), (17,19), (19,21), (21,23), (23,25), (25,27), (27,29), (29,31)। *चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विंशतिश्च मे विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मे द्वात्रिंशच्च मे द्वात्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मेऽष्टाचत्वारिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्'।*[ii] अर्थात् चार, आठ, बारह, सोलह, बीस, चौबीस, अठ्ठाईस, बत्तीस, छत्तीस, चालीस, चवालीस और अड़तालीस प्रभृति स्वर्गप्रापक युग्म स्तोम मुझे यज्ञ के द्वारा सिद्ध होवें। युग्म संख्या का विवरण है– (4,8), (8,12), (12,16), (16,20), (20,24), (24,28), (28,32), (32,36), (36,40), (40,44), (44,48)। यहाँ हमें उपर्युक्त दोनों मंत्रों में आधुनिक गणितशास्त्र के क्रमशः विषम संख्या (Odd Number) एवं सम संख्या (Even Number) का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है साथ ही यहाँ समान्तर श्रेणी (Arithmetic Progression) की भी अवधारणा प्राप्त होती है। मन्त्र संख्या 18.25 में 'Table of 4' (4 का पहाड़ा) भी प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त यजुर्वेद (18.26) में इन संख्याओं का विवरण प्राप्त होता है– 1, 11/2, 2, 21/2, 31/2, 41/2।

यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता के मन्त्र संख्या (7.2.11-20) में संख्याओं का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। यथा– 1, 3, 5, 7, 9, 11, 13, 15, 17, 19, 29, 39, 49, 59, 69, 79, 89, 99। मैत्रायणी संहिता (1.5.8) में जोड़, घटाव, गुणा, भाग, दशमलव और स्थिति चिह्न इत्यादि गणितीय तथ्यों का भी वर्णन प्राप्त होता है। यजुर्वेद के इस मन्त्र में जोड़, घटाव तथा गुणन इत्यादि का वर्णन दिया हुआ है– *आशुस्त्रिवृद्धान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशो धरुण एकविंशः प्रतूर्तिरष्टादशस्तपो नवदशोभीवर्तः सविंशो वर्चो द्वाविंशः सम्भरणस्त्रयोविंशो योनिश्चतुर्विंशो गर्भाः पञ्चविंशऽओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिंशःप्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशो ब्रध्नस्य विष्टपञ्चचतुस्त्रिंशोनाकः षट्त्रिंशोविवर्तोऽष्टाचत्वारिंशो धर्मं चतुष्टोमः*[iii] अर्थात् हे ईंट, तुम तीन बार स्तुत हो। चन्द्रमा की 15 किरणें तुम हो, 17 व्योम तुम हो। 21 सूर्य तुम हो, 18 प्रतूर्ति तुम हो। 19 तप तुम हो, 19

अभीवर्त तुम हो, 22 वर्च्च तुम हो, 23 सम्भरण तुम हो, 24 योनि तुम हो, 25 गर्भ तुम हो, 3x9=27 ओज तुम हो, 31 क्रतु तुम हो, 33 प्रतिष्ठा, 34 ब्रह्म के विष्ट, 36 नाक, 48 विवर्त तथा 4 स्तोम तुम ही हो। यजुर्वेद के नौवें अध्याय में आये निम्न मन्त्रों में क्रमशः एक-एक अक्षर की वृद्धि के क्रम से 17 अंकों द्वारा सृष्टि के 17 पदार्थों का चित्रण है। ये 17 समांक संख्यायें एकपदी क्रम से दी गई हैं-

अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत्तमुज्जेषमश्विनौ द्वयक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयतां तानुज्जेषंदृविष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रीन् लोकानुदजयत्तानुज्जेषम्।।[iv] *पूषा पंचाक्षरेण पंचदिश उदजयत्ता उज्जेषं सविता षडक्षरेण षड्तूनुदजयत्तानुज्जेषं मरुतः सप्ताक्षरेण सप्तदृग्राम्यान् पशूनुदजयैस्तानुज्जेषं बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजयत्तामुज्जेषम्*[v] *मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृतं स्तोममुदजयत्तमुज्जेषं वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्तामुज्जेषमिन्द्र एकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत्तामुज्जेषं विश्वेदेवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयैस्तामुज्जेषम्।।*[vi] *वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशं स्तोममुदजयैस्तमुज्जेषं रूद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशं स्तोममुदजयंस्तमुज्जेषमादित्याः पंचदशाक्षरेण पंचदशं स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषमदितिः षोडशाक्षरेण षोडशं स्तोममुदजयत्तमुज्जेषं प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशं स्तोममुदजयमत्तमुज्नेषम्* [vii] *यजुर्वेद में एकपदी (Monomial), द्विपदी (Binomial), त्रिपदी (Trinomial) तथा चतुष्पदीक्रम (Quadrinomials) आदि की संख्याओं द्वारा अभीष्ट गणितीय संयोजन का संकेत भी वेदमंत्रों में स्पष्ट रूप से किया गया है- एकपदीं द्विपदीं त्रिपदीं चतुष्पदीमष्टापदीम् भुवनानु प्रथन्तां स्वाहा।*[viii] *तथा द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा।।*[ix]

यहाँ 'सच्छन्दाः' एवं 'विच्छन्दाः' पदों का क्रमशः अर्थ विभाज्य संख्या (Divisible Number) तथा अविभाज्य संख्यायें (Prime Number) हैं। सम संख्यायें (Even Numbers) विभाजित होती हैं और विषम संख्यायें (Odd Numbers) अविभाजित होती हैं। यद्यपि कुछ विषम संख्यायें भी ऐसी हैं जो विभाजित हो जाती है। यथा 9 एवं 15 आदि ऐसी संख्यायें हैं जो विषम होने पर भी विभाज्य (सच्छन्दा) हैं। ऋग्वेद की अपेक्षा यजुर्वेद में संख्याओं का वैविध्य अधिक देखने को मिलता है।

निष्कर्ष– आज हमें इस तथ्य को उद्धृत करने की महती आवश्यकता है कि विश्व में सभी वैज्ञानिक आविष्कारों का स्रोत वेद ही हैं और आधुनिक विज्ञान की समस्त शाखाओं का समग्र ज्ञान इनमें ही निहित है। इस ज्ञान को हम तार्किक दृष्टि से समझकर तथ्यात्मक अनुसंधान के माध्यम से समस्त विश्व को नई दृष्टि प्रदान कर सकते हैं।

सन्दर्भ

i. *यजुर्वेद, 18.24।* ***ii.*** *यजुर्वेद, 18.25।* ***iii.*** *यजुर्वेद, 14.23।* ***iv*** *यजुर्वेद, 9.31।* ***v*** *यजुर्वेद, 9.32।* ***vi.*** *यजुर्वेद, 9.33।* ***vii.*** *यजुर्वेद, 9.34।* ***viii*** *यजुर्वेद, 8.30।* ***ix*** *यजुर्वेद, 23.34।*

सहायक स्रोत

1. शास्त्री, रामकृष्ण (अनुवादक), शुक्ल यजुर्वेद, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, उत्तर प्रदेश, 1999। **2.** कुलकर्णी, रघुनाथ पुरुषोत्तम, चार शुल्बसूत्र, महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली.2003। **3.** तिवारी, दया शंकर, संस्कृत वांग्मय में गणितीय परम्परा, चौखम्भा ओरियंटालिया, 2019। **4.** आचार्य, सुद्युम्न, गणितशास्त्र के विकास की भारतीय परम्परा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2006। **5.** Sen, S.N and Bag, A.K., Sulbsutras, Indian National Science Academy, New Delhi, 1983. **6.** Bag, A.K., Mathematics in ancient and Medieval India, Chaukhamba Orientaliya, Varanasi, 1979. **7.** Amma, T.A. Saraswati, Geometry in Ancient and Medieval India, Motilal Banarasidass, Delhi, 1977. **8.** Banerjee, M.; Goswami, B. (ed.), Science and Technology in Ancient India, Sanskrit Pustak Bhandar, Calcutta, 1994.

❑❑

शोधार्थी

निदेशक– प्रो. दया शंकर तिवारी

संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

मो. 8210027602

विष्णु पुराण में वर्णित अतिथि सत्कार

संतोष कुमार पाण्डेय

अतिथि का शाब्दिक अर्थ है– जिसके आने की कोई तिथि न हो। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में इसे भगवान का दर्जा दिया गया, इसमें कई अन्य देवताओं का वास बताया गया। विष्णु पुराण में गृहस्थ का कर्त्तव्य बताने के प्रसंग में अतिथि सत्कार सम्बन्धी वर्णन कई स्थानों पर प्राप्त होते हैं। इसके अनुसार गृहस्थ व्यक्ति को घर आए अतिथि की गोत्र (जाति), शिक्षा, आय तथा निवास स्थान इत्यादि पूछे बिना उसे भगवान विष्णु का रूप मानकर अपने सामर्थ्य के हिसाब से उसका आतिथ्य-सत्कार करना चाहिए। प्राचीन काल में अतिथि सत्कार का आध्यात्मिक महत्व था। इसके माध्यम से व्यक्ति के पाप नष्ट हो जाते थे तथा वह प्रगति पथ पर अग्रसर हो जाता था। आधुनिक युग में जहाँ लोगों में परिस्थितिवश वैयक्तिकता, स्वार्थपरकता की भावना बढ़ती जा रही है, ऐसे में विष्णु पुराण में वर्णित अतिथि सत्कार की व्यवस्था का चिन्तन कर उसे व्यावहारिक जीवन में आत्मसात कर लेने की नितान्त आवश्यकता है। विष्णु पुराण में अतिथि सत्कार का अत्यधिक प्रेरणास्पद वर्णन प्राप्त होता है। इस शोधपत्र में उसी के वर्णन तथा आधुनिक युग में उसकी प्रासंगिकता पर विचार किया गया है। (बीज शब्द :- अतिथि, गृहस्थ आश्रम, गृहस्थ व्यक्ति, विष्णु पुराण, पाप पुण्य, देवता, अतिथि सत्कार, प्राचीन युग, आधुनिक युग, प्रासंगिक, सूर्यास्त, पंच महायज्ञ।)

भारतीय वाङ्मय में पौराणिक साहित्य को एक विशिष्ट तथा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। पुराण भारतीय साहित्य, जीवन शैली के रत्नजड़ित आभूषण तथा अमूल्य धरोहर हैं। ये अतीत को वर्तमान से जोड़ने वाली कड़ी के रूप में हैं। पुराण हमारे समक्ष प्राचीन भारत के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक जीवन का सुन्दर चित्रण अत्यन्त सरल, सहज व सुग्राह्य शैली में प्रस्तुत करते हैं। इसमें केवल धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जैसे पुरुषार्थ के दर्शन नहीं होते हैं[1] बल्कि जीवन के विविध पक्षों का भी वर्णन प्राप्त हो जाता है। यदि कोई भारतीय संस्कृति की प्राचीनता, उपयोगिता को सम्यक रूप से जानना चाहता है तो पुराणों से अधिक सहयोगी साधन कोई दूसरा नहीं हो सकता है।

पुराणों की संख्या मुख्य रूप से 18 हैं।[2] इन अष्टादश पुराणों में विष्णु पुराण, वैष्णव धर्म का मुख्य ग्रन्थ है, इसके आराध्य देव विष्णु हैं जिनको इस पुराण में सर्वेश कहकर सम्बोधित किया गया है तथा उनको सभी जीवों का आश्रय स्थल बताया गया है।[3] शतपथ ब्राह्मण में भी भगवान विष्णु को सर्वश्रेष्ठ देवता कहा गया है।[4] विष्णुपुराण में मुख्य रूप से श्री कृष्ण का चरित्र वर्णित है और संक्षिप्त रूप से भगवान श्री रामकी कथा भी प्राप्त होती है।[5] पराशर ऋषि द्वारा लिखित 23,000 श्लोकों वाला यह पुराण सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, दार्शनिक, भौगोलिक, ज्योतिष तथा कर्मकाण्ड की दृष्टि से अत्यधिक महत्व का है।

विष्णु पुराण में गृहस्थ का कर्तव्य बताने के प्रसंग में अतिथि सत्कार का वर्णन करते हुए बताया गया है, "अतिथि जिस घर में भी आए वह सन्तुष्ट होकर ही वापस लौटे यदि अतिथि किसी घर से असुन्तुष्ट होकर वापस लौट जाता है तो उस घर के व्यक्तियों के समस्त पुण्य कर्म को हर ले जाता है। गृहस्थ व्यक्ति को घर में उपलब्ध संसाधनों के अनुसार ही अतिथि का स्वागत करना चाहिए तथा अतिथि को भी जिस में घर जाए उस व्यक्ति की सामाजिक, आर्थिक, स्थिति के अनुसार ही सत्कार की आशा करनी चाहिए।"[6] "गृहस्थ व्यक्ति के लिए अतिथि के प्रति अहंकार, अपमान, दम्भ का आचरण अनुचित है।"[7] अर्थात् अतिथि के प्रति मन में बहुत ही सम्मानजनक भाव होना चाहिए। "विष्णु पुराण में देवता, ब्राह्मण, भिक्षुगण को अतिथि बताया गया है जिनका पूजन करने से मनुष्य के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।"[8] जिस प्रकार हम जानबूझकर या गलती से हुए पापकर्म के प्रायश्चित के लिए किसी देवी-देवता की आराधना/धार्मिक अनुष्ठान करते हैं ताकि हमारे पाप कर्म का प्रभाव या तो कम हो जाए अथवा समाप्त हो जाए, ठीक उसी प्रकार अतिथि स्वरूप देवता को सन्तुष्ट करके जहाँ पर हम सभी पापकर्मों से मुक्ति पा सकते हैं वहीं असन्तुष्ट करने पर हम पाप के भागीदार भी बनते हैं। "अतिथि की सेवा अत्यन्त कल्याणकारी है, कई प्रमुख देवता जैसे धाता, प्रजापति, इन्द्र, अग्नि, वसुगण, अर्यमा आदि घर आने वाले अतिथि में प्रवृष्ट होकर भोजन ग्रहण करते हैं।"[9] ऋग्वेद[10], मनुस्मृति[11], श्रीमद्भागवत्[12], विष्णु पुराण[13] में यह वर्णन मिलता है कि 'जो पुरुष बिना अतिथि के भोजन करता है, वह पाप का भागीदार होता है अतः प्रत्येक मनुष्य को सदैव अतिथि पूजा के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। प्रत्येक गृहस्थ व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह अपने भोजन के साथ कुछ अतिरिक्त भी बनाए जिसे घर आए अतिथि को खिलाया जा सके।' बुद्धिमान पुरुष भोजन करते समय भी घर आए अतिथि का अपनी सामर्थ्य के अनुसार स्वागत करता है।

अतिथि सत्कार की विधि बताते हुए कहा गया कि, "सर्वप्रथम पैर धुलाना चाहिए, फिर आसन देना चाहिए, इसके बाद स्वागत सूचक शब्दों के साथ भोजन कराकर विश्राम की व्यवस्था करनी चाहिए।"[14] विष्णु पुराण के अनुसार, "घर आए अतिथि को अपनी सामर्थ्य के अनुसार भोजन के लिए अन्न, शाक, पानी देकर तथा विश्राम के लिए घास-फूस का बिस्तर, यदि वह भी संभव न हो तो पृथ्वी पर लेटाकर उसका स्वागत करना चाहिए।"[15] महाभारत के अनुसार घर में यदि कुछ न उपस्थित हो तो कुशों का आसन, शीतल जल, मधुर वाणी, बैठाने के लिए स्थान इन चार वस्तुएं जो आसानी से तथा प्रत्येक घर में मिल जाती हैं, से ही सत्कार कराना चाहिए।[16] अर्थात् घर में उपलब्ध संसाधनों के अनुसार, प्रेमपूर्वक अतिथि का सत्कार करना चाहिए इसके पीछे यही भावना रही होगी कि यदि व्यक्ति सामर्थ्य से अधिक बाहर जाकर अतिथि सत्कार करेगा तो उस पर अनावश्यक बोझ बढ़ेगा।

विष्णु पुराण से ज्ञात होता है कि "अतिथि को बिना सत्कार किए वापस कर देने पर पाप पुण्य की मात्रा भी समय के अनुसार घटती या बढ़ती रहती थी। दिन के समय यदि अतिथि वापस लौटता था तो जितना पाप लगता था, उससे आठ गुना अधिक पाप सूर्यास्त के समय लौटने पर लगता था।"[17] सूर्यास्त के समय आए हुए अतिथि का स्वागत करने से समस्त देवताओं के पूजन के बराबर पुण्य मिलता था।[18] भारतीय संस्कृति में अतिथि को भगवान का स्थान दिया गया। गृहस्थ जीवन में सम्पन्न किए जाने वाले पंचमहायज्ञों (ब्रम यज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, नृयज्ञ) में नृयज्ञ अर्थात् अतिथि सत्कार का महत्वपूर्ण स्थान है। इसी यज्ञ के द्वारा घर आए हुए अतिथि का सत्कार कर उन्हें अपनी सामर्थ्य के अनुसार उन्हें सन्तुष्ट किया जाता था।[19] जिस प्रकार देवी-देवताओं की पूजा करते समय उपलब्ध सामग्री पर नहीं बल्कि श्रद्धा पर ध्यान रखा जाता है, ठीक उसी प्रकार अतिथि सत्कार में अपनी सामर्थ्य के अनुसार घर में उपलब्ध सामान का प्रयोग कर उसे सन्तुष्ट किया जा सकता है। "अतिथि से भी यही आशा की गई कि वह किसी गृहस्थ के घर कम से कम दिन रुके तथा उसकी स्थिति के अनुसार ही सत्कार की भी इच्छा रखे, इसी कारण

मनुस्मृति में एक रात रुकने वाले को ही अतिथि की संज्ञा दी गई।"[20]

विष्णु पुराण में एक स्थान पर ऋषि और्व के द्वारा महाराजा सगर को गृहस्थ आश्रम के सदाचारों के अन्तर्गत अतिथि सत्कार के महत्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि गृहस्थ व्यक्ति को गो-दोहन-काल पर्यन्त अथवा इससे भी कुछ अधिक समय तक घर के द्वार पर यदि कोई अतिथि आ जाए तो उसका स्वागत करें, चरण धुलकर आसन प्रदान करे फिर सामर्थ्य अनुसार भोजन कराकर मधुर वाणी से प्रश्न पूछकर तथा उसके प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर देकर सन्तुष्ट करें, जिसके पास कोई समग्री न हो, जिससे कोई सम्बन्ध न हो, जिसके कुल गोत्र की कोई जानकारी न हो तथा जो भोजन प्राप्त करने की इच्छा रखता हो, ऐसे अतिथि का भी स्वागत करना चाहिए। अतिथि सत्कार न करने वाला मनुष्य अधोगति को प्राप्त करता है। गृहस्थ व्यक्ति को घर आए अतिथि के अध्ययन, गोत्र, आचरण, कुल, निवास स्थान इत्यादि के विषय में कुछ भी नहीं पूछना चाहिए, उसे हिरण्यगर्भ बुद्धि से अतिथि की पूजा करनी चाहिए। हे राजन! दिन में अतिथि के लौट जाने पर जो पाप लगता है, उससे कई गुना अधिक सूर्यास्त के पश्चात् लौटने पर लगता है। अतः सूर्यास्त के समय अथवा सूर्यास्त के पश्चात द्वार पर आए हुए अतिथि का गृहस्थ व्यक्ति को अपनी सामर्थ्य के हिसाब से स्वागत करना चाहिए क्योंकि इस समय अतिथि के पूजन से समस्त देवी-देवताओं का पूजन हो जाता है।

इस पुराण के अनुसार गृहस्थ व्यक्ति को घर आए अतिथि से तीन बातें नहीं पूछनी चाहिए। प्रथम– अतिथि से उसकी शिक्षा के विषय में प्रश्न नहीं करना चाहिए, इसके पीछे का कारण यह था कि यदि अतिथि कम पढ़ा लिखा है अथवा निरक्षर है तो उसे इस प्रश्न का उत्तर देने में संकोच का अनुभव हो सकता है। द्वितीय-अतिथि से उसकी गोत्र/जाति के विषय में नहीं पूछना चाहिए, इसके पीछे का कारण यह रहा कि यदि अतिथि निम्न जाति का है तो उसे अपनी जाति बताने में शर्म महसूस हो सकती है। तृतीय-अतिथि से उसकी आय के विषय में नहीं पूछना चाहिए, इसके पीछे का कारण यह रहा कि यदि गृहस्थ व्यक्ति की तुलना में अतिथि की आदमनी कम है तो उसे बताने में वह शर्म का अनुभव कर सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि गृहस्थ व्यक्ति को अतिथि के स्वाध्याय, गोत्र, जाति, आय के विषय में बिना पूछे ही उसे विष्णु का रूप मानकर उसकी सेवना करनी चाहिए क्योंकि देश, नाम, विद्या, कुल, आय इत्यादि पूछ कर जो अतिथि को भोजन देता है, उसे न तो पुण्य प्राप्त होते हैं और न ही स्वर्ग के दर्शन होते हैं।

विष्णु पुराण में एक स्थान पर अतिथि सत्कार से सम्बन्धित अत्यधिक रोचक वर्णन कबूतर और व्याध का मिलता है, इसके अनुसार दुर्दान्त नाम का एक व्याध जंगल में शिकार की खोज में भटक रहा था। कई पशु-पक्षियों का शिकार करके जब वह शाम के समय अपने घर को वापस लौट रहा था, उसी समय अचानक बड़े तीव्र गति का तूफान आया तथा ओलों की बौछार होने लगी। इस अचानक आयी विपत्ति को देखकर दुर्दान्त भागा तथा अत्यधिक कष्ट सहते हुए एक विशाल पेड़ के नीचे गिर गया। उसकी इस दुर्दशा को देखकर वृक्ष पर रहने वाले एक कबूतर को तरस आ गया। यद्यपि कबूतर की पत्नी को पहले ही दुर्दान्त व्याध ने पकड़ रखा था, फिर भी कबूतर ने अतिथि सत्कार धर्म का स्मरण करके व्याघ्र को ठण्ड से बचाने के लिए आवश्यक सामग्रियों को एकत्रित करके आग जला दी। फिर यह देखकर कि व्याध भूख से व्याकुल है, कबूतर के पास कोई खाद्य सामग्री न होने के कारण स्वयं आग में कूदकर अपने शरीर को व्याध को प्रदान कर उसकी भूख को शान्त किया। कबूतर के इस तरह त्यागपूर्वक अतिथि सत्कार की भावना से देवताओं का आसन हिल गया तथा स्वयं देवतागण उसे स्वर्ग ले जाने के लिए धरती पर आए। इस प्रकार की घटना को देखकर व्याध भी आश्चर्यचकित रह गया तथा अपने उद्धार का मार्ग पूछने लगा। इस पर स्वर्ग जा रहे कबूतर ने बताया कि जो निःस्वार्थ भाव से अतिथि सेवा करता है, वह अवश्य ही भव सागर से पार होता है। इस तरह एक कपोत (कबूतर) ने घर आए अतिथि सत्कार के लिए अपने आपको अग्नि को समर्पित कर दिया।

जो व्यक्ति निःस्वार्थ भाव से अपनी सामर्थ्य के अनुसार घर आए अतिथि का स्वागत करता है, वह निश्चित रूप से विष्णु लोक को प्राप्त करता है, इसलिए यह प्रत्येक गृहस्थ का धर्म है कि भूख से पीड़ित मनुष्य को भोजन प्रदान करे। अतिथि सत्कार का महत्व बताते हुए कहा गया है कि–

भूमिमापस्थता चान्न प्रिय वाक्यमनुतमम्।
आसनं वसनं पाद्य कोटिल्ये न विवर्जितरू।।
आत्मो जीवनाथाय नित्यमेव करोति यरू।
इत्येवं मोदतेसौ वै परत्रेह तथेव च।।

अर्थात् घर की शीतल छाया तथा पृथ्वी, जल, अन्न, आसन, वस्त्र या निवास स्थान तथा पाद्य (पैर धोने के लिए जल) ये सभी वस्तुएँ जो व्यक्ति प्रतिदिन अतिथि को सरलता से अर्पित करता है, वह इस लोक तथा परलोक में भी आनन्द प्राप्त करता है। अतिथि का सत्कार करना प्रत्येक गृहस्थ का परमकर्तव्य था। यह अत्यन्त पुण्य व सौभाग्य कार्य था इसी कारण इसे पंचमहायज्ञों में स्थान मिला। घर में अतिथि अकेला ही नहीं आता है, बल्कि कई प्रमुख देवता अतिथि में प्रविष्ट होकर ही भोजन प्राप्त करते हैं इसी कारण अतिथि का आदर-सत्कार किए बिना वापस कर देना पाप माना गया।

लोगों में व्यक्तिवाद की भावना का तेजी से प्रसार हो रहा है, वे स्वार्थी, एकांगी होते जा रहे हैं। आज की युवा पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी के लोगों के साथ सामन्जस्य बैठाने में कठिनाई होती है। अब बढ़ती हुई महंगाई, समय का अभाव, एकांगी प्रवृत्ति, व्यक्तिवाद, यातायात तथा संचार के साधनों के विकास के कारण लोग सोचते हैं कि या तो कोई अतिथि न आए या फिर अत्यन्त कम समय के लिए आए, फिर चाय-नाश्ता करके वापस भी लौट जाए। कई बार बच्चों की पढ़ाई में बाधा तथा अन्य समस्याओं के बहाने उनको मना भी कर दिया जाता है। बच्चे अपने माता-पिता का ही अनुकरण करते हैं, इसी परिवेश में उनका पालन-पोषण होता है, वे भी एकांगी होते जाते हैं तथा एक समय के बाद उनके वृद्ध माता-पिता भी उनके लिए बोझ स्वरूप हो जाते हैं। भारतीय संस्कृति का इतिहास अत्यन्त गौरवशाली रहा है। यहाँ पर प्राचीन काल से ही अनेक विदेशी यात्री अतिथि स्वरूप आते तथा अत्यन्त सम्मान पाते रहे हैं परन्तु अब लोगों में नैतिक तथा चारित्रिक पतन के कारण प्रतिदिन चोरी, डकैती, लूट, हत्या की घटनाएँ सामने आती रहती हैं। भारतीय संस्कृति के प्रति उदासीनता के कारण उनको इस बात की जानकारी ही नहीं हो पाती है कि हमारे प्राचीन गौरव ग्रन्थों में अतिथि को अत्यधिक सम्मान की दृष्टि से देखा गया, उनको देवता मानकर आदर-सत्कार किया गया है। उस समय लोगों का नैतिक तथा चारित्रिक स्तर अत्यन्त उन्नत था जिस कारण भारत को विश्व में सम्मानित स्थान प्राप्त हुआ था।

विष्णु पुराण में अतिथि सत्कार विषयक जो सारगर्भित वर्णन प्राप्त है, आज की युवा पीढ़ी को उसका अध्ययन, चिन्तन, मनन कर उसे अवश्य अपनाना चाहिए। ऐसी उत्कृष्ट भावना को अपना लेने से हम अतिथियों के प्रति होने वाले नियमित तथा अनियमित अपराध से बच सकेंगे, इहलोक तथा परलोक को सुधारने के साथ-साथ पुण्य कर्म भी प्राप्त कर सकेंगे। भारतीय संस्कति को अतिथि सत्कार की दिशा में आगे ले जाने तथा विश्व में पुनः सम्मानित स्थान दिलाने में हम अपना सहयोग भी दे सकेंगे। निश्चित तौर पर हम कह सकते हैं कि विष्णुपुराण में उल्लिखित अतिथि सत्कार विषयक वर्णन प्राचीन काल में भी प्रासंगिक था, आज भी प्रासंगिक है और भविष्य में भी प्रासंगिक ही रहेगा।

सन्दर्भ

1. विष्णुपुराण, वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई श्रीः धरी टीका से उद्धृत। **2.** मार्कण्डेय पुराण 137/7-11, वायु पुराण 104/2-10, मत्स्य पुराण 3/6/21-24, भागवत पुराण 13/13-4-8, मत्स्य पुराण 53/11-56। **3.** सर्वेश सर्वभूतात्मन्सर्वं सर्वाश्रच्युत, प्रसीद विष्णु... विष्णु पुराण 1/9/57। **4.** शतपथ ब्राह्मण 14/1/1/5। **5.** विष्णु पुराण, गीता प्रेस गोरखपुर, तृतीय अंश। **6.** अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते। सदत्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यामादाय गच्छति। विष्णु पुराण 9/15 (तृतीय अंश), गोरखपुर। **7.** अवज्ञानंमहकारो दम्भश्चैव गृहे सतः। परितापोघातौ च पारूष्यं च न शस्यते।। विष्णु पुराण 9/16

(गीताप्रेस, गोरखपुर)। **8.** इंत्येतेऽतिथयः प्रोक्तः प्रागुक्ता भिक्षवश्चये। चतुरः पूजयित्वैतान्नृपः पापपात्प्रमुच्यते।। विष्णु पु. 11/67। **9.** धादा प्रजापतिः शक्रो वह्निवसुग्रणोऽर्यमा। प्रविश्यातिथिमेते वै भुञ्जन्तेऽन्नं नरेश्वर।। विष्णु पुराण 11/69। **10.** केवलाघो भवति केवलादी- ऋग्वेद 10/117/6। **11.** अघं स केवलं भुङक्तेयः पचन्त्यात्मकारणात्– मनुस्मृति 3/118। **12.** भुञ्जते ते त्वधं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् - श्रीमद्भागवत 3/13। **13.** तस्मादतिथिपूजाय यतेत सततं नरः। स केवलमघं भुङ्क्ते ह्यतिथिं बिना।। विष्णु पुराण 11/70। **14.** अतिथिं चागतं तत्र सशक्त्या पूजयेद्बुधः। पादशौचासन प्रहस्वागतोक्त्या च पूजनम्।। ततश्चान्नप्रदानेन शयनेन च पार्थिव।। विष्णु पुराण 11/107। **15.** अन्नशाकाम्बुदानेन स्वशक्त्या पूजयेत्पुमान्। शयनप्रस्तरमहीप्रदानैरथवापि तम्।। विष्णु पुराण 12/33। **16.** तृणानि भूमिरूदकं वाक् चतुर्थी च सुनृतां। एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन।। महाभारत (उद्योगपर्व) 36/34। **17.** दिवातिथौ विमुखे गते यत्पातकं नृपः। तदेवाष्टगुणं पुसस्सूर्योदे विमुखेगता।। विष्णु पुराण 11/108। **18.** तस्मात्स्वशक्त्या राजेन्द्र सूर्योढ़मतिथिं नरः। पूजयेत्पूजिते तस्मिन्पूजितासर्वदेवताः विष्णु पुराण 11/109। **19.** द्विवेदी शिवबालक, भारतीय संस्कृति, पृ.-30। **20.** एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः। अनित्यं हि स्थितौ यस्यमात्तस्मादतिथिरूच्यते।। मनु स्मृति 3/102।

❐❐

शोधार्थी
निदेशक- डॉ. सिद्धार्थ सिंह
प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग
तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय
जौनपुर (उत्तर प्रदेश), मो. : 9415311389

मैं तो प्रतिदिन यही अनुभव करता हूं कि मेरे भीतरी और बाहरी जीवन के निर्माण में कितने अगणित व्यक्तियों के श्रम और कृपा का हाथ रहा है और इस अनुभूति से उद्दीप्त मेरा अन्तःकरण कितना छटपटाता है कि मैं कम से कम इतना तो इस दुनिया को दे सकूं जितना मैंने उससे अभी तक लिया है।

– आइन्स्टाइन

अनुराग पर ही यह सारा संसार ठहरा है। यह अनुराग स्नेह, श्रद्धा, प्रणय, प्रेमभक्ति इत्यादि भिन्न-भिन्न नामों से व्यवहृत है।... मनुष्यों के हृदय में अनुराग ही जीवन का सुख और प्रफुल्लता का भाव प्रकट करता है। ... कष्टों से भरे संसार को स्वर्ग बनाने के लिए एकमात्र अनुराग ही चाहिए।

– ज्ञानेंद्र मोहन दास

अनुराग यौवन, रूप या धन से नहीं उत्पन्न होता। अनुराग से अनुराग उत्पन्न होता है।

– प्रेमचंद

भारत की पहली शिक्षिका सावित्रीबाई फुले

बिंदु आर.

'अस्मिता' शब्द निजत्व से परिचय करवाता है। अस्मिता का संबंध पहचान से है तो 'विमर्श' का संबंध व्यवस्थित रूप से अंततः तर्कसंगत निर्णय अथवा निष्कर्ष पर पहुँचना है। 'अस्मिता विमर्श' वंचितों को उनकी पहचान दिलाने का वह आंदोलन है जो इस उपेक्षित वर्ग को सामाज की मुख्यधारा के लोगों के साथ चलने के लिए सक्षम बनाएगा। 'अस्तित्व मूलक विमर्श हाशिए पर गए लोगों की मौजूदगी और उनकी निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी तथा उनके जीवन संघर्ष पर विचार विवेचन करते हुए उनकी वास्तविक स्थिति का उद्घाटन करना एवं उनके प्रति मानवीय संवेदना को उभार करके उनकी दशा में परिवर्तन लाना है।'[1] 'हिंदी साहित्य में अस्तित्व मूलक विमर्श ने बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रारंभ होकर शीघ्र ही विस्तृत फलक स्वरूप व आयामों में अपने आप को व्याप्त कर लिया।'[2] अस्मिता मूलक विमर्श दो प्रकार के हैं– सहानुभूतिपरक लेखन और स्वानुभूति परक लेखन। 'सहानुभूति परक लेखन के अंतर्गत लेखक स्वयं उस पक्ष से संबंधित नहीं होता है जिस पक्ष का विमर्श वह साहित्य में कर रहा है। स्वानुभूति परक लेखन में लेखक स्वयं हाशिए पर धकेल दिए गए पक्ष का होता है और वह अपनी वेदना, व्यथा, विद्रुपता तथा समाज के दूसरे पक्ष द्वारा स्वयं एवं सामान-धर्मा पर किए जा रहे अन्याय, अत्याचार, शोषण की आत्मसात पीड़ा को अभिव्यक्त करता है।'[3] आधुनिक युग में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अस्मिता के लिए किसी न किसी रूप से संघर्ष करना ही पड़ रहा है। इसी से दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, स्त्री विमर्श, किन्नर विमर्श, वृद्ध विमर्श, बाल विमर्श, दिव्यांग विमर्श आदि कई विमर्श हिंदी साहित्य में आज देखे जा सकते हैं। कहानी, उपन्यास, कविता, आत्मकथा और अन्य विधाओं के माध्यम से विमर्श होता आ रहा है। हाशियेकृत लोगों की ओर सेअपनी पहचान और अस्मिता के लिए जो लड़ाई लड़ी जा रही है उसका साहित्यिक रूप ही अस्मितामूलक विमर्श है।

दलित विमर्श जाति आधारित अस्मिता मूलक विमर्श है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में दलित शब्द का अर्थ है 'जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है, और उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, पस्त, हतोत्साहित, वंचित आदि है।'[4] भारत में दलित आंदोलन की शुरुआत महाराष्ट्र में ज्योतिराव गोविंदराव फुले ने शुरू किया था। उनके द्वारा दिखाए गए पथों पर दलितों ने अपने अधिकारों की कई लड़ाइयां लड़ीं। उनके बाद दलित आंदोलन को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने का काम बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर ने किया। 'दलित' शब्द सबसे पहले ज्योतिराव फुले द्वारा दलित वर्गों या हिंदू के अस्पृश्य जातियों के लिए इस्तेमाल किया गया था। दलित चेतना की वैचारिक अभिव्यक्तिका सीधा संबंध डॉ. अंबेडकर के चिंतन और दर्शन से है।

चर्चित सामाजिक कार्यकर्ता, आलोचक, चिंतक, कवयित्री एवं राष्ट्रीय स्तर पर स्त्री मुक्ति आंदोलन की अग्रणीनेत्री रजनी तिलक जी द्वारा रचित जीवनी है 'भारत की पहली शिक्षिका सावित्रीबाई

फुले'। यह पुस्तक स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा 1998 में पहली बार प्रकाशित हुई थी। यह 61 पन्नों की एक छोटी सी पुस्तक है। इसमें रजनी तिलक जी ने सावित्रीबाई फुले के जन्म से लेकर मृत्यु तक के कार्यों को रेखांकित किया है। उनकी कुछ कविताएँ भी इस पुस्तक में संकलित हैं।

दलित चिंतकों ने सामाजिक असमानता, शोषण और अस्पृश्यता से मुक्ति पाने में शिक्षा को सबसे बड़ा हथियार माना है। दलित स्त्रियों के उत्थान हेतु शिक्षा के महत्व को सर्वप्रथम मूर्त रूप देने में ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले का नाम सबसे महत्वपूर्ण है। रजनीतिलक जी के शब्दों में भारत के प्रतिक्रियावादी, पुरातन पंथी और यथार्थवादी ताकतों को सशक्त चुनौती देने वालों में फुले दंपति यानी क्रांतिसूर्य ज्योतिराव गोविंदराव फुले एवं उनकी पत्नी सावित्रीबाई फुले के नाम अग्रणीय हैं। पश्चिमी भारत में फुले दंपति परिवर्तनकारी प्रगतिशील आंदोलन के हरावल दस्ते के प्रमुख नेता थे।'[5] सावित्रीबाई फुले ने भारत की स्त्रियों की स्थिति में सुधार व उनमें जागरण लाने के कार्य में सर्वाधिक प्रयास किया है। रजनी जी के शब्दों में 'सावित्रीबाई फुले हमारे देश की वह पहली औरत थी, जो दबे- पिछड़े समाज में पैदा हुई। नौ वर्ष की अल्पायु में विवाह के बाद घर गृहस्थी के साथ-साथ कठोर परिश्रम से स्वयं पढ़ी और गांव-गांव जाकर दीन-हीन दुखी दलितों और स्त्रियों के लिए पाठशालाएँ खोलीं।'[6]

19वीं सदी विश्व इतिहास में महान लोगों, आंदोलनों और परिवर्तनों की जननी है। महाराष्ट्र में पेशवा कालीन युग स्त्रियों और दलितों के लिए निराशा और अंधकार का युग था। ऐसे घोर अंधकार में ईस्ट इंडिया कंपनी पूरे भारत में पाँव जमा चुकी थी। 1 जनवरी 1818 में जनता विरोधी ब्राह्मण हितैषी पेशवा राज्य का अंत हुआ। महाराष्ट्र के सतारा जिले में नायगांव नामक गाँव में 3 जनवरी 1831 को सावित्रीबाई फुले का जन्म हुआ। इनकी माता का नाम लक्ष्मीबाई और पिता का नाम खंडोजी था। उस समय सामाजिक कुरीतियाँ, सती प्रथा, बाल विवाह, पर्दा, देवदासी, छुआछूत चरम शिखर पर थी। सावित्रीबाई फुले का विवाह नौ वर्ष की अल्पायु में 1840 में महान क्रांतिकारी ज्योतिबा फुले से हुआ। तब ज्योतिबा फुले की उम्र 13 वर्ष थी।

इस समय में समाज में अंधविश्वास, छुआछूत, बाल विवाह आदि प्रथा चरम पर थी। स्त्रियों का पढ़ना तो दूर की बात थी। सावित्रीबाई फुले को पढ़ने की बहुत शौकीन थी, लेकिन उसके पिता ने उसे पढ़ने से मना कर दिया। जब ज्योतिराव फुले से उसकी शादी हुई तो उन्होंने उसको पढ़ाया। महात्मा ज्योतिराव फुले ने अपने एक मित्र की सहायता से दिनांक 1 जनवरी 1848 में पूणे के बुधवार पेठ में कन्या शाला की स्थापना की। इस प्रकार लड़कियों की शिक्षा की भारतवर्ष में यह पहली पाठशाला थी। सावित्रीबाई फुले को इस पाठशाला की मुख्याध्यापिका नियुक्त किया गया। उनके शिक्षिका बनने पर समाज में प्रखर विरोध हुआ। गाली-गलौज-पत्थर व गोबर फेंकने पर भी सावित्रीबाई फुले ने अपना काम बंद न किया। अछूतों की मदद करने एवं शिक्षा का मार्ग न छोड़ने पर उन्हें अपने पति के साथ घर से निकाल दिया गया। 'आज समाज में हर स्तर की महिलाएँ उच्च शिक्षा संपन्न नजर आती हैं, किंतु सावित्रीबाई फुले के जमाने में दलित या बहुजन की ही नहीं, बल्कि सामान्य ब्राह्मण परिवारों में भी पढ़ी-लिखी बालिका नजर नहीं आती थी। ऐसे विपरीत समय में सावित्री बाई फुले ने शिक्षा ग्रहण कर केवल अपने ज्ञान की ही बढ़ोत्तरी नहीं की बल्कि दलित व महिलाओं के उद्धार के लिए शिक्षा का प्रचार व प्रसार भी किया।'[7]

पाठशाला प्रारंभ करने में संस्थापकों को जितने कष्ट उठाने पड़े उससे कहीं ज्यादा कठिनाई और यातनाएं सावित्रीबाई फुले को पाठशाला चलाने में हुई। उस पर कई इल्जाम लगाए गए। कोई भी पुरुष नौकरी करने को तैयार नहीं होता था। ना ही कोई अपनी लड़की को पाठशाला में पढ़ने भेजता। ज्योतिराव फुले ने 1848 से 1851 के बीच पूणे और अन्य कई देहातों में लड़कियों की अनेक पाठशालाएँ स्थापित कीं। 1 मई 1852 में वेताल पेठ में महात्मा फुले ने अस्पृश्य वर्ग के बच्चों के लिए एक पाठशाला प्रारंभ किया। पूरे देश में अस्पृश्य वर्ग के लिए यह पहली पाठशाला थी। महात्मा फुले ने स्थापित की हुई सभी पाठशालाओं को मूर्तरूप देने में सावित्रीबाई का सहयोग बेमिसाल है। रजनी तिलक जी ने इसे इस प्रकार व्यक्त किया है– 'मिशनरी महिलाओं की तरह किसानों और अछूतों की प्रत्येक झुग्गी-झोंपड़ी

में जा जाकर बच्चों और बड़ों को पढ़ाने का आग्रह कर उन्होंने लोगों के बीच शिक्षा का प्रसार किया है।'8 सावित्रीबाई ने महात्मा ज्योतिराव फुले के मार्गदर्शन में स्त्रियों की स्थिति सुधारने के लिए 'महिला सेवा मंडल' की स्थापना की थी। संपूर्ण भारत में छुआछूत मिटाने का काम करने वाली यह पहली संस्था थी। सन् 1876-77 में महाराष्ट्र में भारी अकाल पड़ा था। कुछ महान लोगों ने ज्योतिराव फुले के छात्रावास को कई बोरे अनाज दिये। इन छात्रावासों में 12 वर्ष तक की उम्र के बच्चों के लिए निःशुल्क भोजन की व्यवस्था थी। पूरे महाराष्ट्र में सत्यशोधक समाज की ओर से चलाए गए सारे छात्रावासों का कारोबार सावित्रीबाई स्वयं देखती थी।

200 वर्ष पहले समाज परंपराओं और अनेक अंधानुकरण जैसी रूढ़ियों से ग्रस्त था। स्त्री युवावस्था या बाल्यावस्था में ही विधवा हो गई तो उन्हें गुमराह कर अनाचार का शिकार बनाया जाता था। इन विधवा स्त्रियों के हाथों बाल हत्या न होने के उद्देश्य से सावित्रीबाई के नेतृत्व व निगरानी में महात्मा फुले ने 28 जनवरी 1853 को एक 'बाल हत्या प्रतिबंधक गृह' की स्थापना की। यह शेल्टर अनेक विधवाओं का सुरक्षा घर सिद्ध हुआ। दयाभाव महान धर्म का एक पहलू है। इसकी शिक्षा हमें सावित्रीबाई द्वारा किए गए महान कार्यों से मिलती थी। सन् 1885 में सावित्रीबाई ने बाल हत्या प्रतिबंधक गृह में प्रसूति के लिए आई 'काशीबाई' नामक ब्राह्मण बाल विधवा के अनैतिक बालक को गोद लिया। उन्होंने उसको यशवंत नाम रखा, उसे पढ़ा-लिखाकर डॉक्टर बनाया।

ज्योतिराव फुले का देहावसान 63 वर्ष की उम्र में 1890 को हुआ। पति के चले जाने के बाद उन्होंने महात्मा ज्योतिराव फुले द्वारा स्थापित सारी संस्थाओं की बागडोर संभाली। 1896 में महाराष्ट्र में पुनः अकाल पड़ा। सैकड़ों लोग भूख और प्यास से तड़प-तड़प कर मरने लगे। ऐसे समय सावित्री बाई ने अकाल ग्रस्त क्षेत्रों के लिए सरकार से राहत कार्य प्रारंभ कराए। 1897 में पूणे को प्लेग की बीमारी ने घेर लिया। रोजाना सैकड़ों लोग मरने लगे। ऐसे भयंकर दिनों में सावित्रीबाई ने घर-घर जाकर लोगों को ढांढस बंधाती, उनकी तकलीफों की शिकायतों की गुहार उन्होंने सरकार तक पहुँचाई। 10 मार्च 1897 में ही उनकी जीवन यात्रा समाप्त हुई।

सावित्रीबाई फुले की कविताएँ साहस और सुधारवाद की कविताएँ हैं। सावित्रीबाई जी ने विद्या को श्रेष्ठ धन माना है और सब को विद्या प्राप्त करने का उपदेश भी दिया है। *'करो हासिल ज्ञान। विद्या को देवता जान।।/ लीजिए विद्या का लाभ। दृढ़ निश्चय कर।।/ विद्याधन है बच्चे। सभी दौलत से बढ़कर।।/ धन का संचय जिसके पास। ज्ञानी मानते हैं उसे सब जन।।'*[9] सावित्रीबाई फुले जी ने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करके अपनी जातिगत नीचता और अज्ञान दूर करके सुधार लाने को कहा है– *'स्वावलंबन का उद्योग, ज्ञान धन का संच करो निरंतर। विद्या के बिना व्यर्थ जीवन पशु जैसा, आलसी बन चुप ना बैठो।। विद्या प्राप्त करो शूद्रो अति शूद्रों के दुख निवारण हेतु। अंग्रेजी का ज्ञान हासिल करने का शुभ अवसर हाथ आया।। अंग्रेजी लिखकर पढ़कर जात-पात की दीवारों को ढहा दो। भट-बामणों के षड्यंत्रों के पिटारों को दूर फेंककर।।'*[10]

ध्येय, निष्ठा, मेहनती वृत्ति, लगन आदि के बल पर सावित्रीबाई फुले लोकप्रियता के शिखर पर पहुंची। अपने कार्यों का प्रचार उन्होंने मिशनरी प्रणाली, समाज चेतना जागृत करने की निष्ठा से किया। रजनी तिलक जी के शब्दों में 'सावित्री बाई फुले की यह संक्षिप्त जीवनी न केवल बहुत महत्वपूर्ण है बल्कि यह उनके जीवन का सार एवं उनकी सोच की अभिव्यक्ति है।'[11]

संदर्भ

1. https://wwwapnimaati.com अस्मिता मूलक विमर्श : वैचारिकी–डॉ. रमेश पुरी। **2.** वही। **3.** वही। **4.** दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र- ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली पहला सं. 2001, पृष्ठ 13। **5.** भारत की पहली शिक्षिका सावित्रीबाई फुले (जीवनी) रजनी तिलक, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं. 1998 पृष्ठ 5। **6.** वही पृष्ठ 11। **7.** वही पृष्ठ 18। **8.** वही पृष्ठ 29। **9.** वही पृष्ठ 45। **10.** वही पृष्ठ 45। **11.** वही पृष्ठ 53।

❑❑

शोधार्थी, हिंदी विभाग-
कोच्चि विज्ञान व प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय, कोच्चि, केरल-682022
मो. 9747902254
Email- br94962@gmail.com

विभाजन की सीमारेखा : नाटक 'ड्रॉइंग द लाइन'

डॉ. ऐश्वर्या झा

1947 भारत की स्वतंत्रता का वर्ष.... भारत के विभाजन का वर्ष.... बनने और बिगड़ने की प्रक्रिया लाखों लोगों के आशियानों के उजड़ने एवं काल के गाल में समाने का वर्ष.... आंकड़ों के अनुसार इस विभाजन ने एक करोड़ बीस हजार लोगों को विस्थापित किया था। आंकड़े जो भी हो दोनों देशों के लोगों के लिए ये विभाजन एक नासूर है। नफरत का ऐसा तूफ़ान है जिसकी आग अभी भी बुझी नहीं है। जो लोग विस्थापित होकर पाकिस्तान से भारत आए या भारत से पाकिस्तान गए उनके जीवन का संघर्ष, उनकी जद्दोजहद, विभाजन की हिंसा की स्मृति से मुक्ति उन्होंने कैसे पाई, विस्थापित का अपना देश हुआ या नहीं या अपनी ज़मीन ही तलाशते रहे। यह विभाजन एक ऐसी त्रासदी था जिसके घाव अभी तक पूरी तरह भर नहीं पाए हैं। जैसा कि मशहूर पाकिस्तानी इतिहासकर आयशा जलाल ने कहा है, विभाजन '20वीं सदी के दक्षिण एशिया की केन्द्रीय ऐतिहासिक घटना था, एक ऐसा ऐतिहासिक क्षण था जिसने आने वाले अनेक दशकों को परिभाषित कर डाला। मानव इतिहास में कभी भी इतने विराट पैमाने पर आबादी की अदला-बदली नहीं हुई जितनी विभाजन के कारण बने पाकिस्तान और भारत के बीच हुई। इस त्रासदी के परिणामों के बारे में पक्के आंकड़े तो उपलब्ध नहीं हैं लेकिन आम राय यही है कि कम से कम डेढ़ करोड़ लोग अपना घर बार छोड़ने पर मजबूर हुए इस दौरान हुई लूटपाट बलात्कार और हिंसा में कम से कम 15 लाख लोगों के मरने और अन्य लाखों लोगों के घायल होने का अनुमान है। न सिर्फ देश बंटा बल्कि लोगों के दिल भी बंट गए।[1]

भारत स्वाधीनता का अमृत महोत्सव मना रहा है। आज़ादी के अमृत महोत्सव का मतलब है– 75 साल पर आत्मनिरीक्षण, 75 साल पर विचार, 75 साल की उपलब्धियां, 75 साल के बाद की संभावनाएं। स्वतंत्रता संग्राम की घटनाएं आज भी प्रेरित करती हैं, वर्तमान और भावी पीढ़ी को संदेश देती हैं जिन्हें आत्मसात् कर आधुनिक भारत निरंतर आगे बढ़ रहा है। आज़ादी के नाम पर भारत-पाकिस्तान का बंटवारा हुआ था। साझी सामाजिक विरासत बंटी, जमीनें बंटी, मुद्रा कोष क्या भाई भाई तक बंट गए। लीथ एंडरसन के एक लेख के अनुसार सिर्फ 7 दिनों में 6 लाख लोग इस खूनी आजादी में मारे गए। इस विभीषिका के लिए दोनों मुल्क का एक वर्ग ब्रिटिश के 'डिवाइड एंड रूल' नीति एवं तब के हुकमरानों के साथ किसी एक व्यक्ति को जिम्मेदार मानते हैं तो वो है भारत-पाकिस्तान की 'बाउंड्री-कमीशन' के मुखिया सर सिरील रेडक्लिफ।[2] उन पर जल्दीबाज़ी एवं भारत-पाक की सीमाओं के सीमांकन को गुप्त रखने जैसे आरोप भी लगाए गए। भारत और पाकिस्तान के बीच विभाजन की रेखा सिरील रेडक्लिफ ने खींची थी, जो पेशे से वकील थे। कहते हैं कि संयुक्त राष्ट्र द्वारा बाउंड्री कमीशन के सदस्य मनोनीत किए जाने के विषय में कोई फैसला नहीं होने पर, मो. जिन्ना ने माउंटबेटन को रेडक्लिफ के नाम का

प्रस्ताव रखा जिसे कृष्णा मेनन की सलाह से नेहरू पटेल ने भी मान लिया।[3]

भारत-पाक बंटवारा मानव इतिहास की अब तक की सबसे बड़ी त्रासदियों में से एक माना जाता है। बँटवारे के समय सीमा के दोनों ओर पंजाब और बंगाल के बड़े प्रांतों में सबसे बड़े पैमाने पर भौगोलिक बदलाव हुआ था। पश्चिमी पंजाब पश्चिमी पाकिस्तान का हिस्सा बन गया जबकि पूर्वी पंजाब भारत को दे दिया गया और बंगाल के विभाजन के बाद कई पूर्वी हिस्सों को पूर्वी पाकिस्तान का हिस्सा बना दिया गया। आज के मानचित्र पर रेडक्लिफ रेखा पश्चिमी भाग में भारत-पाकिस्तान सीमा के रूप में जाना जाता है, जबकि पूर्वी भाग भारत-बांग्ला देश सीमा के रूप में जाना जाता है। सीमा रेखा 2900 किलो मीटर लंबी है जिसमें केवल 5 क्रॉसिंग प्वाइंट्स हैं। एक महीने से कुछ अधिक के समय में ये सब काम पूरा किया गया।

बंटवारा क्यों, कैसे और किसकी वजह से हुआ इसका जवाब हर शख़्स अपने अपने चश्मे के हिसाब से तलाशता रहा है। लोग अपने मन के जवाब के अनुसार तर्क भी ढूंढ लेते हैं। हिंदू मुस्लिम, भारत पाकिस्तान हो या इस पार के हों या उस पार के, हर पक्ष के लिए इस रेखा के मायने मानवीय-राजनीतिक दृष्टिकोण से एक दम अलग अलग है। विभाजन को एक वर्ग विभीषिका स्मृति दिवस मनाता है कुछ इसे कड़वी दवाई मानते हैं। पाकिस्तान के इतिहासकार हिंदू बहुल राष्ट्र से मुक्ति मानते हैं। परंतु विभाजन भारतीय इतिहास की सबसे भयानक त्रासदियों में से एक है। समाज, इतिहास, राजनीति, संस्कृति, साहित्य जीवन का कोई भी क्षेत्र इससे अछूता नहीं रहा। आज भी बंटवारे की तपिश दिखाई देती है। विभिन्न भारतीय भाषाओं के तमाम लेखकों ने अपने-अपने ढंग से इस त्रासदी पर कल्पना और यथार्थ की अभिव्यक्ति के माध्यम से अपनी संवेदनाएं व्यक्त की हैं। हिंदी नाटकों में नरेंद्र मोहन (नो मैंस लैंड), असगर वजाहत (जिन लाहौर नहीं देख्या ओ जन्मया नहीं), गिरिराज किशोर (काठ की तोप) आदि नाटककारों ने इतिहास के सबसे बड़े विस्थापन को नाटकों में अंकित किया है। विभाजन एवं उससे जुड़े घटनाओं को दोनों देश के साहित्य ने अपने नज़रिए से देखा है। विभाजन के बाद कुछ दशक तक, साहित्यिक कार्यों में एक आवर्ती विषय बना हुआ था। विभाजन जनित त्रासदी पर भारत एवं पाकिस्तान में पिछले 75 वर्ष में विविध आयामों पर कई कविता, कहानी, उपन्यास एवं नाटक आदि लिखे गए। दर्जनों फिल्म, सीरियल, वेबसेरीज़ एवं नाटक भी आये जो अपने अपने दृष्टिकोण से सही ग़लत समझाते रहते हैं। स्वाभाविक तौर पर सीमावर्ती क्षेत्र पर विभाजन एवं उस से जुड़े घटना ने लोगों को अधिक प्रभावित किया, इसलिए यह साहित्य-लेखन के केंद्र में भी रहा है। यही कारण है कि उर्दू, पंजाबी, हिन्दी, बंगला और सिंधी के लिखित साहित्य पर विभाजन की गहरी छाप दिखाई देती है। कविता और नाटक की अपेक्षा कथा-साहित्य (कहानी और उपन्यास) में इस व्यापक मानवीय त्रासदी को ज्यादा स्थान मिला है।

कुछ वर्ष पूर्व भारत एवं पाकिस्तान विभाजन जनित त्रासदी साहित्यिक रूप से फिर चर्चा में आई, भारत में नहीं, पाकिस्तान में नहीं बल्कि ब्रिटेन में। दिसंबर 2013 में 'ड्रॉइंग द लाइन' नामक नाटक का मंचन, लंदन के हैम्पस्टेड थिएटर में होने की ख़बर ने पुनः पूरे विश्व का ध्यान इस विभाजन जनित त्रासदी पर आकर्षित किया।[4] ये नाटक दुनिया के सबसे मुश्किल विभाजन करने वाले व्यक्ति पर आधारित है। नाटक सिरील रेडक्लिफ की कहानी बयां करता है जिन्हें 1947 में इंग्लैंड से आनन-फानन में भारत के दो टुकड़े करने के लिए बुलाया गया था। हॉवर्ड ब्रेटन ने अपने शोध एवं अनुभव से रेडक्लिफ के दिलो-दिमाग़ में चल रहे उतार चढ़ाव की ना सिर्फ कल्पना की है बल्कि उन्हें नायक के रूप में प्रस्तुत किया। तब अविभाजित भारत एवं इंग्लैंड में चल रहे राजनीतिक समीकरण एवं अफ़वाह को भी समाहित किया गया है। विश्व के प्रसिद्ध नाटककार हॉवर्ड ब्रेटन इस नाटक के लेखक हैं। इस नाटक से पूर्व, हॉवर्ड ब्रेटन ने चालीस से अधिक नाटक लिखे हैं, जिनमें क्रिस्टी इन लव (1969), द रोमन्स इन ब्रिटेन (1980), दी स्टेरे परवडा (1985), और ऐनी बोलिन (2010) प्रमुख थे। इन्हें देश एवं विदेश में कई पुरस्कार भी दिये गये। अपने इंटरव्यू में हॉवर्ड जॉन ब्रेटन ने इस नाटक के लिखने के

पीछे की एक कहानी का भी खुलासा किया है। नाटक लिखने के कुछ वर्ष पूर्व पहले वे भारत आए, केरल में उनकी मुलाक़ात एक युवक से हुई जिसके पास पाकिस्तान में उसके पुश्तैनी घर की चाबियाँ आज भी हैं। उस व्यक्ति के गुस्से, बेबसी, कटुता ने हॉवर्ड जॉन ब्रेटन को इस विषय पर शोध करने के लिए प्रेरित किया। नाटक में कई मुश्किल परिस्थितियों को भी हल्के फुल्के किंतु तंज़ और व्यंग्य में दिखाया गया। लंदन के हैम्पस्टेड थियेटर में हॉवर्ड ब्रेटन द्वारा लिखित 'ड्राइंग द लाइन' को देखने के लिए दर्शकों की भीड़ उम्मीद से कई गुणा अधिक आ गयी थी। टिकट की मांग को पूरी नहीं होने के कारण इसका सीधा प्रसारण द गार्जियन अखबार के सहयोग से इंटरनेट पर करना पड़ा।[5]

नाटक में दिखाया गया कि लंदन में दूसरे विश्व युद्ध से कमजोर पड़े ब्रिटिश प्रधानमंत्री क्लेमेंट एटली ने एक अदालत के न्यायाधीश को एक आवश्यक सन्देश भिजवाया जिसमें वकील से जज बने सिरिल रैडक्लिफ को भारत जा कर देश में चुनौतीपूर्ण मिशन को अंजाम देने को कहा गया। इंडिया, एक ऐसा देश जहां वह कभी नहीं पहले गए थे, ना उन्हें कोई विशेषज्ञ जैसा ज्ञान था, ना कार्टोग्राफी का, ना ही गणित का। अधिक विदेश की यात्रा भी नहीं की थी। सीमित सर्वेक्षण एवं वर्षो पुराने आँकड़े के आधार पर लकीर खींचना आसान नहीं था जो भारतीय उपमहाद्वीप को दो नए संप्रभु राष्ट्रों में विभाजित करती। ब्रिटिश प्रधानमंत्री क्लेमेंट एटली ने कहा आप के पास समय केवल छह सप्ताह एवं फीस 3000 पौंड। 8 जून 1947 को रेडक्लिफ भारत पहुंचे। इस मसले के लिए महज 36 दिन का समय था।[6] इतना अल्प समय सामान्य जानकरी जुटाने के लिए भी पर्याप्त नहीं थी। बहुत से लोग उन्हें इस कार्य के लिए अनुपयुक्त मानते थे, किंतु यही उनकी सबसे बड़ी योग्यता थी कि वे भारत के बारे में ना के बराबर जानते थे, ना हिंदू को न मुस्लिम धर्म को जानते थे। वैश्विक राजनीति में ना के बराबर जुड़ाव था। ये सब उन्हें इस कार्य के लिए सबसे अधिक योग्य बनाता था। विषय से एक दम दूर, कोई पूर्वाग्रह नहीं कोई पक्षपात की संभावना नहीं। उनकी ईमानदार छवि ने अपने हाथों में करोड़ों लोगों के भाग्य की लकीर खींचने की ताकत का सबसे बड़ा आधार था। यह नाटक में विभाजक के किरदार, जिस ने मानचित्र पर एक अमिट रेखा खींच दी थी उस के मानसिक एवं राजनीतिक सोच पर केंद्रित है। इंडिया के बारे में उसकी आधी अधूरी जानकरी को नाटकीय एवं रोचक तरीके से दिखाया गया है। ये नाटक भारत पाकिस्तान के दर्जनों लेखकों के चश्मे से नहीं बल्कि एक दुसरे देश के लेखक के दिमाग से सब घटनाओं को नए तरीके से दिखाने का अच्छा प्रयास है। हिंदुस्तान के विभाजन की प्रक्रिया बहुत कम समय में पूरी की गई। यह इतनी जल्दी हुआ कि जनता असमंजस में रह गई। इससे पहले कि व्यक्ति अपने परिवार के भविष्य के बारे में सुव्यवस्थित ढंग से कोई निर्णय ले पाता उसे जबर्दस्ती एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर फेंक दिया गया था। भारत को जब बर्मा से अलग करके, सिंध और उड़ीसा प्रांत बनाए गए थे तब इससे अधिक समय लगा था। बर्मा को अलग करने में तीन वर्ष लगे थे। सिंध को बम्बई से अलग करने में दो वर्ष और उड़ीसा को बिहार से अलग करने में दो वर्ष लगे थे लेकिन पाकिस्तान बनाने में सिर्फ दो महीने 12 दिन का समय दिया गया। 3 जून, 1947 को 'माउण्टबेटन योजना' स्वीकार की गई और 15 अगस्त, 1947 को दोनों अधिराज्यों की स्थापना कर दी गई। बंटवारे की कार्यवाही इतने कम समय में पूरी की गई जिससे दोनों देशो को व्यापक समस्याओं का सामना करना पड़ा।'[7]

लेखक हॉवर्ड जॉन ब्रेटन ने रेडक्लिफ के किरदार में एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण किया, जो किरदार के रूप में किये गए इतने बड़े फैसले पर अपनी सफ़ाई पेश कर रहा हो। इस दरमियान वो अपने विवेक से संघर्ष करता भी दिखा। ब्रेटन ने अपने एक इंटरव्यू में कहा, 'ऐसे सुराग थे कि रैडक्लिफ के बंगले में आत्मा की एक अंधेरी रात थी, उन्होंने अपनी फीस स्वीकार करने से इनकार कर दिया, सभी कागज और ड्राफ्ट नक्शे, इंग्लैंड ले गए और उन्हें जला दिया। और जो कुछ हुआ उसके बारे में उसने अपने परिवार से भी एक शब्द कहने से इनकार कर दिया। जब मैंने इन विवरणों की खोज की तो मेरे नाटककार का दिमाग तेज हो गया।[8]

बीबीसी में प्रकाशित एक रिपोर्ट में नाटक का एक दृश्य प्रकशित किया गया, जिसे पढ़ एक आम आदमी भी समझ जायेगा विभाजनकर्ता को सीमावर्ती इलाके का ए बी सी डी तक नहीं पता थी। एक हवाई यात्रा के सिवा वो सीमा पर गए भी नहीं थे।[9]

पहला व्यक्ति (रेडक्लिफ से)– नक्शे पर आपने जो लकीर खींची है वो फिरोज़पुर की रेलवे लाइन है. आपने रेलवे लाइन के बीचों बीच सीमारेखा खींच दी है। एक पटरी भारत में हो जाएगी और दूसरी पाकिस्तान में... रेडक्लिफ (नक्शे पर खींची रेखा मिटाते हुए)– तो हम सीमारेखा को थोड़ा दक्षिण की ओर कर देते हैं। पहला व्यक्ति-लेकिन यहाँ तो हिंदुओं के खेत हैं। रेडक्लिफ-तो सीमारेखा को उत्तर की ओर कर देते हैं...

नाटक के पोस्टर में बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा गया था, क्या सच में अंग्रेजों ने मूर्ख को भेजा है? ये नाटक रेडक्लिफ के सोच को जनता तक लाने में कामयाब रहा। रेडक्लिफ खुद इस कार्य से अधिक खुश नहीं थे, उन्होंने अपनी फीस नहीं ली। भारत दूसरी बार नहीं आये, ना ही कभी अपने विचार सार्वजनिक रूप से रखे। अपने कई इंटरव्यू में जरूर कुछ बातें की। मशहूर पत्रकार और लेखक कुलदीप नैयर को 5 अक्टूबर, 1971 को लंदन में रेडक्लिफ ने कहा कि वह पहले लाहौर को भारत का हिस्सा बनाने का इरादा कर चुके थे। दरअसल उस वक्त ज्यादातर हिंदू यह मानकर चल रहे थे कि लाहौर भारत और कलकत्ता पाकिस्तान का हिस्सा बनेगा। लाहौर में 45 प्रतिशत से अधिक हिंदू थे, किंतु फिर पाकिस्तान के पास कोई बड़ा शहर नहीं आता। जिन्ना भी कोलकाता को पूर्वी पाकिस्तान में शामिल करना चाहते थे। उनके शब्दों में कहें तो, कलकत्ता के बिना पूर्वी बंगाल का कोई मतलब नहीं था।[10] नाटक में इन सब बातों को ड्रामा के तरीके से लोगों के सामने रखा। रेडक्लिफ ने हिंसा एवं जल्दीबाज़ी पर एक बार कहा था कि 'मुझे जल्दी में सबकुछ करना था। मेरे पास ब्यौरों में जाने का समय नहीं था। जिलों के नक्शे तक उपलब्ध नहीं थे और जो उपलब्ध थे वे भी सही नहीं थे। सिर्फ डेढ़ महीने में मैं क्या कर सकता था? इस नाटक को हॉवर्ड डेविस प्रोडक्शन द्वारा 2 घंटे 15 मिनट में 25 से अधिक दृश्यों के माध्यम से दिखाया गया। हैम्पस्टेड, लंदन में जब 'ड्राइंग द लाइन' नाटक का मंचन हुआ, सिरिल रैडक्लिफ के रोल में टॉम बियर्ड ने रैडक्लिफ को जीवंत कर दिया। कृष्णा के रूप में पीटर सिंह और तीन दर्जन से अधिक कलाकारों ने कमाल का अभिनय किया।[11]

नाटक का केंद्र में बड़े नाम- गांधी, नेहरू, जिन्ना, एटली, माउंटबेटन नहीं हैं बल्कि कहानी का मुख्य फोकस सिरिल रेडक्लिफ पर है। नाटककार ने रेडक्लिफ के वकील जैसा काम किया है, उनका रैडक्लिफ न तो निंदनीय है और न ही आलसी, केवल अपनी विषय के गहराई से बाहर, इंडिया और उसकी राजनीति से अपरिचित है। रेडक्लिफ के जल्दी जल्दी में किये गए बँटवारे के प्रश्न पर उनके बचाव में भी कुछ काल्पनिक तर्कों का सहारा भी लिया, जैसे नेहरू के साथ एडविना की दोस्ती से परेशान होने के वज़ह से माउंटबेटन ने स्वतंत्रता की तिथि पहले कर दी। उस समय के प्रमाण एवं अखबार के अनुसार अंग्रेजों की वापसी की तिथि पहले करने में प्रधानमंत्री एटली की महत्वपूर्ण भूमिका थी। एंड्रयू व्हाइटहेड ने अपनी समीक्षा में ये लिखा है कि इतने जटिल विषय के लिए, एक अधिक अनुभवी नाटक एक बेहतर दांव हो सकता है।[12]

75 वर्ष बाद भी आज बंटवारे का घाव भरा नहीं, रोष और दर्द आज भी है। भारत के लोग जिन्ना की हठधर्मी को दोष देते हैं, दूसरी तरफ पाकिस्तान में गांधी, नेहरू और पटेल को बंटवारे का खलनायक बनाया जाता है। हिंदुओं और मुस्लिमों दोनों के अपने अपने तर्क या कुतर्क हैं।[13] ब्रिटिश नाटककार हॉवर्ड ब्रेटन द्वारा लिखित 'ड्रॉइंग द लाइन' एक उल्लेखनीय चित्रण है। इस नाटक ने भारतीय उपमहाद्वीप से बाहर, इस घटना जो मानवता के इतिहास में एक बड़ी विभीषिका पर पूरे विश्व का ध्यान खासकर युवा पीढ़ी का ना केवल ध्यान खींचा बल्कि उन्हें अंदर तक झकझोर दिया।

संदर्भ

1. https://www.bhaskar.com/ news/ABH-radcliffe-was-divided-into-3657372.html, **2.** https://hindi.theprint.in/ india/ 75-years-of-rad-

cliffe-line-published-two-days-after-independence-there-was-a-mass-exodus/ 375120/ 3.https://www.hampsteadtheatre.com/ whats-on/2013/drawing-the-line/,4. https://www. the-guardian.com/ stage/2013/dec/10/ drawing-the-line-review.,5.https:// m. thelallantop.com/ article/ news-detail/ 625ea3df5c967a2aeda 3559f, 6. https:// www.hmoob.in/ wiki/ Radcliffe Award. 7. https://www.bbc.com/ hindi/ international/2013/12/ 131226 radcliffe partition india pak tan va. 8. https://scroll.in/article/ 891693/i-nearly-gave-you-lahore-when-kuldip-nayar-asked-cyril-radcliffe-about-deciding-indo-pak-border/. 9. https://www.drama onlinelibrary.com/ person?docid-person brentonHoward. 10. https://www.historyworkshop. org.uk/ theatre-review-drawing-the-line/ 11. https:// www.jansatta.com/ jansatta-special/ radcliffe-who-drew-the-line-between-india-and-pakistan-did-not-come-to-india-before-1947/2326719/ (जानकारी संदर्भ वेबसाइट पर पूर्व में प्रकाशित एवं 27 अक्टूबर 2022 तक उपलब्ध)।

❒❒

एसोसिएट प्रोफेसर,
हिंदी विभाग त्रिपुरा विश्वविद्यालय
मोबाइल -9810407023
ईमेलः *aishwaryajha@tripurauniv.ac.in*

देशभक्ति हृदय में अंकुर ले चुकी थी, देश-सेवा की प्रेरणा भी हृदय में स्थान बना चुकी थी, किन्तु देश-भक्ति का एक रूप यह भी होगा कि पढ़ना-लिखना छोड़कर, घर-द्वार की चिन्ता भूलकर, फकीरी का बाना लेकर इस गांव से उस गांव, उस गांव से इस गांव, देश माता की मुक्ति का अलख जगाना होगा, यह तो कभी सोचा ही नहीं था।

–रामवृक्ष बेनीपुरी

अवतार, तात्पर्य है शरीरधारी पुरुष विशेष। जीवमात्र ईश्वर का अवतार है, परन्तु लौकिक भाषा में सबको हम अवतार नहीं कहते। जो पुरुष अपने युग में सबसे श्रेष्ठ धर्मवान है उसी को भावी प्रजा अवतार-रूप से पूजती है।

– महात्मा गांधी

अपने विषय के लिए अपनी आत्म-कथा लिखना एक कठिन तथा नाजुक विषय है। यदि वह अपनी निन्दा करे तो उसके दिल में चोट-सी लगती है और यदि वह अपनी प्रशंसा करे, तो पाठकों के कानों में उसकी बातें खटकती हैं।

– अब्राहम काउले

संस्कृति और धर्म

डॉ. आशीष

भारत अनेक संस्कृतियों को मानने वाला देश है। भिन्न-भिन्न संस्कृति होते हुए भी हम एक सूत्र में बंधे हुए हैं, जिसे भारतीयता कहा जाता है। इसमें सहिष्णुता, परोपकारिता, सद्भाव, सहअस्तित्व जैसे रूप अनायास ही समाहित हो जाते हैं। भारतीयता का संस्कार मां की कोख से ही आरंभ हो जाता है, परंतु जन्म के उपरांत और युवावस्था में आने के बाद उसका पालन करना न करना व्यक्ति के विचार स्वातंत्र्य पर निर्भर करता है। गोविंद चातक ने संस्कृति को जीवन का संस्कार माना है और इस संबंध में लिखा है कि 'संस्कृति जीवन का संस्कार है, वह केवल अतीत की विरासत ही नहीं, वह भविष्य की निर्देशिका भी है। वह कई स्तरों पर जीने का अर्थ, मानवता की उर्ध्व गति और मनुष्य की सृजन क्षमता को ही व्यक्त नहीं करती वरन् चेतन-अचेतन रूप से उसके रूपांतरण की प्रक्रिया भी है, जिसमें उसके बनने-बनाने की क्रिया निरंतर लगी रहती है।'[1]

धर्म का संस्कृति के साथ गहरा संबंध है। मनुष्य आदिम अवस्था से ही धर्म के साथ जुड़ा हुआ है। मनुष्य प्रकृति के उन सभी तत्वों की आराधना करता था, जो उसके जीवन में सहायक थी। मनुष्य ने धर्म को दैनिक जीवन शैली के रूप में अपनाया और अनवरत उसका पालन करता रहा है। धर्म शांति एवं सद्गति की भावना प्रवाहित करता है।

मनुष्य के जीवन में जब संस्कृति का निर्माण और विकास होता है, तो वहां भी अप्रत्यक्ष रूप से धर्म की ही भूमिका रहती है। मनुष्य धर्म के माध्यम से अपने मन को संस्कारित करता है। वह उसको अपने जीवन में कार्यान्वित भी करता है। जब माता-पिता अपने बच्चे को संस्कार देते हैं या उसको संस्कारित करते हैं तो वे धर्म का ही सहारा लेते हैं। इसलिए भारत में धर्म को हमेशा से ही संस्कृति से जोड़ कर देखा जाता है। इस संदर्भ में विष्णु प्रभाकर कहते हैं–'धर्म की भाषा निरंतर खोज है, संस्कृति की भाषा सतत् आचरण हैं। कोई भी धर्म आचरणहीन व्यक्तियों के लिए कल्याणकारी नहीं हो सकता और आचरण की प्राप्ति कर्मकांड और आडंबरों से नहीं होती है, जीवन का धर्म पालन करने से होती है। विश्वास और आचरण साथ-साथ ही चल सकते हैं। यही संस्कृति है जो अज्ञात की खोज को भी उपयोगी बना देती है।'[2]

हिंदू धर्म अत्यंत प्राचीन धर्म है। इसे सनातन भी कहा जाता है। भारत में इस धर्म के अनुयायी बहुसंख्यक हैं। धार्मिक एकता को अप्रत्यक्ष रूप में सांस्कृतिक एकता भी कहा जा सकता है। इसके बावजूद धर्म के आधार पर संस्कारों में भिन्नता दिखाई देती है। समय के प्रवाह में तथाकथित उच्च वर्ग ने कुछ नियम और प्रथाएं ऐसी बनायीं कि उसका वर्चस्व समाज के अन्य तबकों पर बना रह सके। कर्म आधारित व्यवस्था को धीरे-धीरे जन्म आधारित बना दिया गया। इसके मानक भी समाज के तथाकथित उच्च वर्ग ने तय किए। अतः संस्कारों की

दृष्टि से उच्च और निम्न तबकों में भिन्नता दिखाई देती है। इस उच्च वर्ग ने निम्न वर्ग को अपने अधीन बनाए रखने के लिए कार्यों का आवंटन उसी प्रकार किया। यद्यपि कर्म आधारित व्यवस्था में हीनता की भावना नहीं थी और सभी एक-दूसरे के पूरक थे तथापि काल प्रवाह में यह व्यवस्था जन्म आधारित इसलिए भी बनी कि कर्म कुशलता पारिवारिक परिस्थिति में बचपन से ही अनुभव का हिस्सा हो जाती थी। यह भी उल्लेखनीय है कि मनुष्य अपने परिवेश से ही सीखता है और सहज रूप में जो प्राप्त होता जाता है, उसी में वह गुजर-बसर करता है। कर्म आधारित व्यवस्था का जन्म आधारित परिवर्तन संभवतः इसी स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण होता गया। भारतीय ग्रामीण संस्कृति में कर्म का यही प्रचलन बनता गया, जिसे शहरों के विकास के साथ-साथ बदलते हुए देखा जा सकता है।

एम. एन. श्रीनिवासन अपनी पुस्तक 'आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन' में लिखा है कि 'यदि किसी जातियों के बीच आर्थिक, सामाजिक ही नहीं, कर्मकांडीय सम्बन्धों को भी देखा जाए तो हरिजन उस व्यवस्था के अभिन्न अंग हैं, वे कृषि में कुछ आवश्यक आर्थिक कार्य पूरा करते हैं। प्रायः गाँव के सेवकों, हरकारों और मेहतरों का कार्य करते हैं, और गांव के उत्सवों-त्यौहारों पर ढोल-पीटते हैं, तथा सामुदायिक भोज की पत्तल उठाते हैं।[3] इस तरह कुछ कार्य, अनुष्ठान और संस्कार जीवन का हिस्सा बनते गए। यह भी कि प्रत्येक जाति ने इसी व्यवस्था में अपने जीवन एवं अस्तित्व को सुरक्षित देखा। समय के प्रवाह में कर्म की उच्चता एवं नीचता सामाजिक विमर्श का हिस्सा बनी और रूढ़ हो चुकी वर्ण-व्यवस्था सत्ता के रूप में स्थापित हो गई। यह चर्चा का विषय रहा है कि कथित रूप से निचली जातियों पर संस्कृति और संस्कार के नाम पर एक अप्रत्याशित सत्ता बनी हुई है।

भारत में अनेक प्रांत हैं और प्रत्येक प्रांत में एक विशिष्ट भाषा है। इस प्रकार भारत अनेक भाषाओं का एक राष्ट्र है। प्रत्येक प्रांत के लोग अपनी-अपनी भाषा में विचार विनिमय करने के बावजूद धार्मिक संस्कृति के दृष्टि से एकता के सूत्र में बंधे हुए दिखायी देते हैं। उदाहरणतः जो मंदिर उत्तर में हैं, वही मंदिर दक्षिण में भी हैं। इसी प्रकार पूर्व और पश्चिम में भी हैं। इन मंदिरों में पूजा अर्चना करने वाले सभी एक ही रीति से पूजा अर्चना करते हैं। भाषाएं भिन्न हैं किंतु उनके अनुयायी एक ही धर्म को मानने वाले हैं। भारत के किसी भी प्रांत में अधिकतर एक जैसी रीति का पालन करने वाले लोग दिखाई देंगे, जो सुबह उठ कर स्नान करते हैं, टीका लगाते हैं और व्रत एवं धार्मिक यात्राओं में विश्वास रखते हैं। यही कारण है कि उत्तर भारत के लोग दक्षिण में और दक्षिण भारत के लोग उत्तर भारत में तीर्थाटन के लिए आते-जाते हैं। रामायण एवं महाभारत को जितनी प्रसिद्धि उत्तर भारत में मिली है, उतनी ही दक्षिण में भी दिखाई देती है। यह सांस्कृतिक एकता भारत की अखंडता का बोध कराती है।

हिन्दू धर्म का रूप-स्वरूप भारत में जैसा दिखाई देता है, उसका वैसा स्वरूप विदेशों में दिखाई नहीं देता, क्योंकि परिवेशगत प्रभाव उसके रूप-स्वररूप एवं व्यावहारिक पक्ष में अंतर करता है। जैसे- भारत के मंदिरों में प्रवेश करते समय जूते या चप्पलें बाहर उतार दिए जाते हैं। इसे संस्कार के रूप में देखा जा सकता है। विदेशों में गिरजाघरों में जूते या चप्पलें पहन कर अंदर प्रवेश करना आम बात है, क्योंकि वहाँ की भौगोलिक स्थिति ही ऐसी है कि बिना जूते या चप्पलों के नहीं रहा जा सकता। यह प्रवृति धीरे-धीरे वहाँ की संस्कृति बन गई। भारत में अधिकतर गिरजाघरों में प्रवेश करते समय जूते या चप्पलें बाहर ही उतार दिए जाते हैं, क्योंकि यहां पर लोग भारतीय संस्कृति का अनुसरण करते हैं। इस्लामिक देशों में दरगाह में किसी प्रकार का कोई चढ़ावा नहीं चढ़ाया जाता। जैसे फूल या अगरबत्ती, बताशे परंतु वहीं भारत के प्रत्येक दरगाह में हमें फूल और अगरबत्ती चढ़ावे के रूप में दिखाई देता है। इस तरह हम कह सकते हैं कि प्रत्येक देश की अपनी अलग-अलग संस्कृति है। वही, परिवेशगत प्रभाव भी संस्कृति के रूप परिवर्तक-संवर्धन में सहायक होता है।

धर्म और संस्कृति के संबंध में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी धर्म को संस्कृति से पृथक मानते हैं। उनका मानना है कि भारत एक राष्ट्र, एक जाति, एक कुटुंब

है, जिसमें भिन्न-भिन्न मत एवं संप्रदाय के लोग रहते हैं। वे धर्म को व्यक्तिगत चयन और संस्कृति को सामूहिक मानते हैं। उनके लिए संस्कृति प्राथमिक तत्व और धर्म गौण है। उनका तर्क है कि कोई व्यक्ति चाहे जिस धर्म का हो परंतु जब राष्ट्र और संस्कृति की बात आती है तो सब भारतीय ही कहलाते हैं। उदाहरणस्वरूप जापान के व्यक्ति धर्म में बौद्ध, ईसाई या मुस्लिम भले ही हों, परंतु जब संस्कृति एवं राष्ट्र की बात आती है तो वह पहले जापानी कहलाए जाएँगे, यही राष्ट्र के प्रति एकता संस्कृति कहलाती है। वे कहते हैं -'संस्कृति की एकता ने एक जाति बना दी है। एक जाति में अनेक मत-मजहब होते हैं। उस एकत्रित समूह में वैदिक सनातनी, आर्य समाजी, वैष्णव, शैव सभी तरह के लोग होंगे और अवैदिक जैन, बौद्ध आदि भी। कुछ 'ला-मजहब' और नास्तिक भी होंगे।[4]

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी कहते हैं कि भारतीय संदर्भ में धर्म और संस्कृति की दृष्टि से देखा जाए तो कोई अनजान व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को उसके धर्म के अनुसार नहीं पहचान पाएगा। किसी व्यक्ति के सामाजिक जीवन और परिवेश से उसके प्रादेशिक संस्कृति का तो पता चल सकता है परंतु धर्म का नहीं। नाम के हिसाब से भी किसी को पहचाना नहीं जा सकता कि वह व्यक्ति किस धर्म से संबंध रखता है।

धर्म को व्यक्तिगत चयन मानते हुए किशोरीदास उसके अनुसरण को भी व्यक्तिगत मानते हैं। वे संस्कृति के साथ इसका संबंध नहीं मानते। इस संबंध में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी से पूर्णतः सहमत नहीं हुआ जा सकता। यदि धर्म को व्यक्तिगत चयन मान भी लिया जाए, तो संस्कृति का अनुसरण करना एक प्रकार की जीवन सम्मत अनिवार्यता है। संस्कृति के कई गुण धर्म के अंतर्गत आते हैं, जिनका अनुसरण स्वाभाविक प्रक्रिया है। हम जिस देश में रहते हैं, उसकी संस्कृति हमारे जीवन का अभिन्न अंग होती है। अतः धर्म और संस्कृति को पृथक नहीं माना जा सकता। भारत में धर्म व्यक्ति की मानसिक अवस्था से जुड़ा हुआ है। इससे वह आध्यात्मिक विकास पाता है और समाज को सकारात्मक ऊर्जा देने का प्रयास करता है। इस संबंध में रामजी उपाध्याय कहते हैं कि 'धर्म के अंतर्गत प्रायः उन नियमों का समावेश किया गया है जिनसे व्यक्ति के अभ्युदय के साथ ही समाज की आधिभौतिक और आध्यात्मिक प्रगति की संभावना हो।[5] दोनों एक दूसरे के संपूरक दृष्टिगोचर होते हैं। संस्कृति एवं धर्म में अंतर करना कृत्रिमता ही कही जा सकती है। भारतीय संदर्भ में कोई भी व्यक्ति जन्म के पूर्व तथा अपनी मां की कोख से ही संस्कृति का हिस्सा बन जाता है। यह जितना संस्कृति का पक्ष है उतना ही धर्म का भी। अतः किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में संस्कृति के साथ-साथ धर्म का अपना योगदान होता ही है। कुल मिलाकर संस्कृति व धर्म व्यक्ति के माध्यम से राष्ट्र के निर्माण में सहायक बनते हैं।

संदर्भ

__1.__ गोविंद चातक, संस्कृति, समस्या और समाधान आमुख। __2.__ विष्णु प्रभाकर, संस्कृति क्या है? पृ. 21। __3.__ आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, एम.एन. श्रीनिवासन, पृ. 19। __4.__ किशोरीदास वाजपेयी, संस्कृति का पांचवां अध्याय, पृ. 19। __5.__ रामजी उपाध्याय, भारत की संस्कृति-साधना, पृ. 16।

❐❐

- 89, 8th Cross Road,
Sharadamba Nagar, Jalahalli,
Bangalore (Karnataka) - 560013
Mo. 9958232816

आनन्द
की पूर्ति सौंदर्य में दृष्टिगत
होती है। आनन्द बाहरी हालात
पर नहीं अंदरूनी हालात पर
निर्भर है।

–डेल कार्नेगी

योगविद्या : कार्पल टनल सिंड्रोम प्रबंधन के सन्दर्भ में

मयंक उनियाल

सारांश : दशकों पूर्व मनुष्य जीवन सम्बन्धी कार्यों जैसे यातायात, मनोरंजन, व्यवसाय आदि के क्रियान्वयन में शारीरिक ऊर्जा का व्यय करता था परन्तु विज्ञान व तकनीक युक्त वर्तमान शताब्दी में जीवन सम्बन्धी विभिन्न कार्यों का निष्पादन मोबाइल, इंटरनेट आदि द्वारा एक संकेत मात्र से सम्पन्न हो रहे हैं। जिससे मनुष्य दिन-प्रतिदिन शारीरिक अकर्मण्यता की ओर प्रेरित हो रहा है। कार्पल टनल सिंड्रोम (सी.टी.एस.) कलाइयों का दीर्घकाल तक एक शारीरिक स्थिति में रहकर कार्य करने जैसे कंप्यूटर व मोबाइल का अति उपयोग आदि एवं अन्य द्वितीयक कारकों द्वारा उत्पन्न एक स्थिति है जिसका प्रभाव कलाइयों की सन्धि तक सीमित न रहकर शरीर के ऊपरी भाग से सम्बंधित जटिल कार्यों पर भी पड़ता है। इस समस्या के निदान हेतु चिकित्सक एवं फिजियोथेरेपिस्ट विभिन्न शारीरिक व्यायाम, औषधियों एवं सर्जरी आदि का सुझाव देते हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में सी.टी.एस. निराकरण, प्रबंधन व स्वस्थ जीवनशैली हेतु योगांगों के अनुप्रयोग एवं महत्ता को सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। (बीज शब्द : सी.टी.एस., योगाभ्यास, मेरुरज्जु, मीडियन तंत्रिका, लिगामेंट्स, ट्रांसवर्स कार्पल लिगामेंट)।

प्रस्तावना : अज्ञानतावश साधारण जन-मानस का योगविद्या के प्रति दृष्टिकोण संकीर्ण है। योगविद्या को मात्र भगवान एवं आध्यात्मिकता प्राप्ति के एक माध्यम रूप में ही स्वीकार किया गया है, परन्तु वर्तमान में योग आधारित शोधकार्य, अनुसंधान एवं परीक्षण योग के चिकित्सीय प्रभावों को उजागर कर रहे हैं। योग का शाब्दिक अर्थ है 'जोड़ना' अर्थात न्यूनतम दो अवयवों का आपस में युग्मन ही योग है। अतः योग को मात्र एक दृष्टिकोण से जांचना गलत होगा। सी.टी.एस. भी आधुनिक परिवेश में जन्मी एक ऐसी समस्या है जिसकी उत्पत्ति का आधार भौतिकवादी व सुविधाजनक जीवन व्यापन एवं शारीरिक निष्क्रियता से है। कलाई की सन्धि में उत्पन्न यह समस्या भुजा सम्बंधित मुख्य तंत्रिका को उत्तेजित कर अँगुलियों एवं अंगूठों की कार्यशीलता को बाधित करने लगती है। इस शोधकार्य के माध्यम से योग अभ्यासों द्वारा सी.टी.एस. के निदान एवं प्रबंधन को लक्षित करने का प्रयास किया गया है।

साहित्यिक पुनरावलोकन : पूर्व में सी.टी.एस. एवं योगाभ्यासों पर आधारित परीक्षणों एवं शोधकार्यों से विभिन्न सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए हैं जिस कारण शोधार्थियों एवं अनुसंधानकर्ताओं को सी.टी.एस. व योगांगों के मध्य सम्बन्ध को जीवन्त करने हेतु बाध्य किया है। 2012 में प्रकाशित एक शोधपत्र के अनुसार पारंपरिक विधि से सी.टी.एस. का उपचार करने में योगाभ्यास का विशेष स्थान है (1. Ibrahim, 2012)। अन्य शोधकार्य में यह सिद्ध हुआ है कि योगाभ्यास कंप्यूटर सम्बन्धी कार्य करने वाले समस्त व्यक्तियों की कौशल क्षमता में वृद्धि करता है तथा कम्प्यूटर पर दीर्घ समय तक कार्य करने से उत्पन्न होने वाली जटिलता से भी

बचाव करता है (DR.SUBHALAKSHMI.S, 2016)। इसी क्रम में 2020 में हुए एक अन्य शोध ने पुष्टि की है कि कार्पल टनल सिंड्रोम प्रबंधन में योग एवं शारीरिक चिकित्सा एक लाभकारी साधन है (Alessia Genova, 2020)।

शोध प्रश्न :

● क्या वर्तमान में भी इस समस्या का निराकरण औषधि एवं सर्जरी रहित संभव है? ● क्या योगांग मानसिक या आध्यात्मिक लाभ प्राप्ति हेतु ही सीमित हैं? ● योगाभ्यास इस समस्या के निदान में किस प्रकार प्रभावशील है?

अध्ययन के उद्देश्य :

● स्वस्थ कार्य-जीवन संतुलन अनुरक्षण में योगाभ्यासों की भागीदारिता सिद्ध करना। ● आधुनिक विकारों की पुरातन चिकित्सा प्रणाली द्वारा समाधान की संभावना का विश्लेषण करना। ● योग पद्धति से प्राप्त चिकित्सीय गुणों को पटल पर लाना। ● आधुनिक समय में योग प्रतिपालन हेतु जन-मानस को प्रेरित करना।

शोध प्राविधि : प्रस्तुत शोधपत्र पूर्णरूपेण वैध द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है तथा इस शोधपत्र की पूर्णता हेतु अवलोकन विधि का चयन किया गया है। प्रस्तुत समस्त आंकड़े प्रामाणिक हैं तथा विभिन्न विश्वसनीय ई-स्रोतों, ई-पुस्तकालयों, वैज्ञानिक एवं चिकित्सीय पृष्ठभूमि पर आधारित आलेखों, शोधपत्रों, आख्याओं एवं वेबसाइटस से प्रेरित हैं।

कार्पल टनल सिंड्रोम का परिचय : सी.टी.एस. एक पेशीय कंकाल स्थिति है

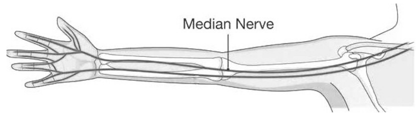

जिसका सम्बन्ध कलाई के जोड़ में उत्पन्न असुविधा से है। मानव शरीर में सर्वाधिक संवेदनशील संस्थान तंत्रिका तंत्र है जिसमें मस्तिष्क, मेरुरज्जू (स्पाइनल कॉर्ड) व तंत्रिकाओं का समायोजन होता है। मानव शरीर में 12 जोड़ी तंत्रिकाओं का उद्गम मस्तिष्क एवं 31 जोड़ी तंत्रिकाओं का मेरुरज्जु से होता है (भालेकर, 2018)। तंत्रिकाओं द्वारा मस्तिष्क से किसी विशिष्ट अंग एवं विशिष्ट अंग से मस्तिष्क तक संवेदनाओं, सूचनाओं एवं आवेगों का आवागमन संभव होता है। मीडियन तंत्रिका, शरीर के ऊपरी भाग से सम्बद्ध अति महत्वपूर्ण तंत्रिका है जो मुख्यतः कोहनी की सन्धि के सामने से गुजरकर अँगूठे, तर्जनी व मध्यमा के सामने एवं अनामिका के कुछ भाग तक जाती है। मीडियन तंत्रिका द्वारा ही अँगूठे, अँगुलियों व मस्तिष्क के मध्य सूचनाओं का आदान-प्रदान संभव हो पाता है (कॉल्टर, 2010)।

मानव शरीर 206 पृथक-पृथक अस्थियों से निर्मित है जिनमें से 8 अस्थियों का संयोजन, जिसे चिकित्सीय भाषा में कार्पल अस्थियाँ कहा जाता है जो मनुष्य की एक कलाई में होती हैं। समस्त अस्थियां आपस

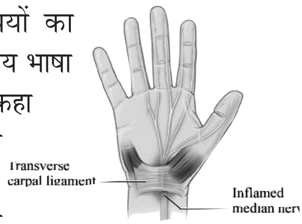

में विभिन्न लिगामेंट्स (स्नायुओं) द्वारा जुड़ी रहती हैं (गोरे, 2021)। इस कारण शरीर में अनेकों लिगामेंट्स पाए जाते हैं। वह स्नायु जो कार्पल टनल सिंड्रोम की उत्पत्ति का कारक अर्थात जिसका सम्बन्ध विशेषतः कलाइयों की सन्धि से है, ट्रांसवर्स कार्पल लिगामेंट कहलाता है (कंट्रीब्यूटर्स, फिजियोपीडिया : अबाउट, 2025)। यहां चित्र के माध्यम से इस लिगामेंट की शारीरिक स्थिति को दर्शाया गया है। ट्रांसवर्स कार्पल लिगामेंट की क्षैतिज शारीरिक स्थिति कार्पल टनल सिंड्रोम की उत्पत्ति का मुख्य कारण माना जाता है।

कार्पल टनल सिंड्रोम उत्पत्ति का कारक : शोधपत्र में विभिन्न चित्रों के माध्यम से मीडियन तंत्रिका एवं ट्रांसवर्स कार्पल लिगामेंट के मध्य सम्बन्ध को दर्शाया गया है कि किस प्रकार मीडियन तंत्रिका उक्त लिगामेंट के नीचे से गुजरकर अंगूठों एवं अँगुलियों के संपर्क में आती है। इस लिगामेंट की क्षैतिज स्थिति के कारण इसके नीचे एक रिक्तस्थान (टनल) बन जाता है जिससे कोहर मीडियन तंत्रिका अग्रभाग की ओर गुजरती है। जब यह टनल किसी कारणवश बाधित होती है तो सी.टी.एस. समस्या जन्म लेती है। अतः सी.टी.एस. उत्पत्ति का प्राथमिक कारण मीडियन तंत्रिका में उत्पन्न दबाव अथवा तनाव जनित उत्तेजना व पीड़ा है। सी.टी.एस. की वृद्धि में कुछ अन्य प्रेरक तत्व जैसे

कलाईयों का बारम्बार उपयोग करने सम्बन्धी कार्य, कार्पल टनल में सूजन, कलाई की हड्डी का टूटना, चोट, मोच, अस्थि विस्थापन, मधुमेह, मोटापा, हॉर्मोन असंतुलन, पारिवारिक पृष्ठभूमि आदि का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है (कंट्रीब्यूटर्स, 2025)। इन कारकों द्वारा जब टनल रूपी रिक्त स्थान बाधित होता है तो मीडियन तंत्रिका में दबाव व उत्तेजना उत्पन्न होती है जिससे अँगूठे व अँगुलियों की कार्यक्षमता का ह्रास होता है तथा व्यक्ति हाथों एवं अँगुलियों में पीड़ा, इनका सुन्न हो जाना तथा दोनों में झुनझुनेपन की अनुभूति करता है।

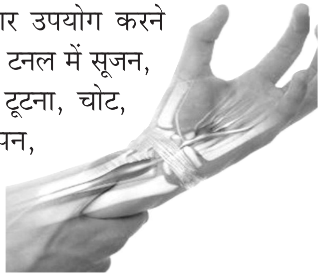

कार्पल टनल सिंड्रोम निदान हेतु उपयोगी योगाभ्यास : वैज्ञानिक तथ्यों, परीक्षणों एवं अमेरिकन अकैडमी ऑफ़ ओर्थोपेडिक सर्जनस संस्था द्वारा पुष्टि की गयी है कि कलाइयों के आकुंचन, प्रसारण, घूर्णन तथा नर्व ग्लाइड्स या नर्व फ्लॉसिंग (तंत्रिका प्रसार) सम्बन्धी समस्त शारीरिक क्रियाएं ट्रांसवर्स कार्पल लिगामेंट की क्रियाशीलता को प्रभावित कर सी.टी.एस. प्रबंधन में लाभकारी सिद्ध होती हैं (ऑर्थोपेडिक, 2022)। अतः अधोलिखित समस्त योगाभ्यास उक्त वर्णित क्रियाओं को केन्द्रित करते हुए वर्णित किए गये हैं।

❑ **पवनमुक्तासन समूह प्रथम–** पवनमुक्तासन समूह प्रथम जिसे आमवातनाशक समूह के नाम से भी चिह्नित किया जाता है, के अंतर्गत ऐसे विभिन्न प्रारंभिक योगाभ्यासों का समावेश है जिनमें उपरोक्तवर्णित समस्त शारीरिक क्रियाएं अन्तर्निहित होती हैं जिनमें से विशिष्ट का वर्णन अधोलिखित किया गया है।

अ) मुष्टिका बंधन– सर्वप्रथम किसी सुविधाजनक आसन में बैठकर, दोनों हाथों को कंधों के समानान्तर रखकर हथेलियों को नीचे की ओर तथा समस्त अँगुलियों को यथाक्षम प्रसारित किया जाता है। अन्ततः अंगूठे को अँगुलियों के भीतर रख मुष्टिका बनायी जाती है (सरस्वती स.श., 2005)।

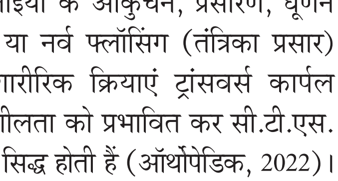

ब) मणिबंध नमन- सर्वप्रथम किसी आरामदायक आसन स्थिति ग्रहण कर दोनों हाथों को कन्धे के समानान्तर रखकर, हथेलियों एवं अँगुलियों को सीधा रखने के पश्चात कलाईयों को पीछे की ओर तत्पश्चात आगे की ओर इस प्रकार खींचा जाता है कि अँगुलियों की दिशा क्रमशः ऊपर एवं नीचे की ओर केन्द्रित हों (त्रिलोक, 2016)।

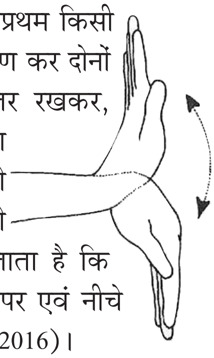

स) मणिबंध चक्र– दोनों हाथों के कन्धों को समानान्तर रखकर, अंगूठा मुष्टिका के भीतर रख दाएं हाथ से मुष्टिका बनाई जाती है। तत्पश्चात मुष्टिका का घूर्णन दक्षिणावृत्त तत्पश्चात वामवृत्त दिशा में किया जाता है। इसके पश्चात यही क्रिया बाएं हाथ से दोहराकर, अन्ततः दोनों मुष्टिकाओं को एक-साथ प्रयोग कर उक्त वर्णित विधि दोहराई जाती है (संदर्शिका, 2011)।

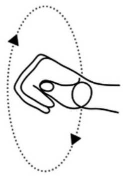
MANIBANDHA CHAKRA
wrist joint rotation

द) केहुनी नमन-- केहुनी नमन में सुविधाजनक आसन में बैठकर, दोनों हथेलियां आकाश की ओर रख, दोनों हाथों को कन्धे के समानान्तर फैलाया जाता है। प्रथम चरण में दोनों कोहनियों को मोड़कर अँगुलियों से कन्धे को बारम्बार स्पर्श किया जाता है जबकि द्वितीय स्तर में दोनों हाथों को दाएं तथा बाएं दिशा में फैलाकर पूर्व वर्णित विधि की पुनरावृत्ति की जाती है (कुमार, 2011)।

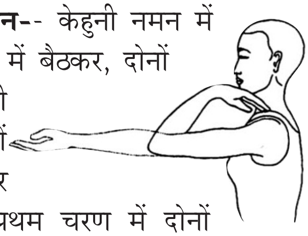

❑ **स्कन्ध चक्र–** इस क्रिया में दाएं हाथ की अंगुलियों को दाएं कंधे एवं बाएं हाथ की अंगुलियों को बाएं घुटने पर रखकर व मेरुदंड सीधा रखते हुए तथा दायीं कोहनी को वृत्ताकार आकृति देते हुए एक एक कर दक्षिणावृत्त एवं वामवृत्त

दिशा में घुमाया जाता है। यही प्रक्रिया बाएं हाथ से दोहराते हुए अन्त में उक्त क्रिया दोनों कोहनियों द्वारा एक साथ दोहराई जाती है (स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, 2013)।

❒ **ताड़ासन–** सर्वप्रथम दोनों पैरों को लगभग 10 सेमी. खोलकर व दोनों हाथों को मस्तिष्क के ऊपर उठाने के पश्चात अंगुलियों को आपस में इस प्रकार से बांधा जाता है कि हथेलियां आकाश की ओर केन्द्रित हों। हथेलियों के ऊपरी भाग को मस्तिष्क की सीध में रखकर तथा शीर्ष सम्मुख किसी बिंदु को केंद्र मानकर तथा श्वास भरते हुए दोनों हाथों को सीधा एवं प्रसारित कर एड़ियों को ऐसे उठाया जाता है कि शरीर का सम्पूर्ण भार पंजों पर रहे।

यही ताड़ासन का अभ्यास है (स्वामी, 2013)। ताड़ासन एवं अन्य आसनों को केन्द्रित कर किये एक शोधकार्य अनुसार योगासनों के माध्यम से दर्द में कमी, हाथों की पकड़ में मजबूती प्राप्त हुई (मरियन स. गारफिंकल और अन्य, 1998)।

❒ **गोमुखासन :** सर्वप्रथम दोनों पैरों को सामने फैलाकर, एक पैर मोड़कर उसकी एड़ी को विपरीत कुल्हे तथा दूसरे पैर को मोड़कर पहले पैर के ऊपर इस प्रकार से रखा जाता है कि इसकी एड़ी भी विपरीत कुल्हे के संपर्क में

आ जाए। तत्पश्चात जो पैर ऊपर है उससे सम्बंधित हाथ को ऊपर ले जाकर, कोहनी मोड़कर पीठ पर इस प्रकार से स्पर्श कराया जाता है कि हथेली का पीठ से संपर्क हो सके। अब विपरीत हाथ को पीछे से आकाश की ओर ले जाकर दोनों हथेलियों को आपस में बांध (इंटरलॉक) लिया जाता है। अन्ततः मेरुदंड सीधा रखकर एवं श्वास-प्रश्वास पर ध्यान केन्द्रित करते हुए यथाक्षम अभ्यास में रुका जाता है (सरस्वती, 2011)।

❒ **हस्त मुद्राएं–** साधारणतः योग पद्धतियों में मुद्राएं आध्यात्मिक अभ्यास के रूप में हैं, परन्तु इन मुद्राओं के अभ्यास से शारीरिक लाभों की पूर्ति भी होती है। सी.टी.एस. के प्रबंधन में विभिन्न मुद्राओं जैसे ज्ञान मुद्रा, ध्यानात्मक आसन में बैठकर अँगूठे से तर्जनी के शीर्ष भाग को स्पर्श कर यथाक्षम बने रहने का प्रयास, आकाश मुद्रा, अँगूठे एवं मध्यमा के शीर्ष भाग का संपर्क, पृथ्वी मुद्रा अर्थात अँगूठे व अनामिका के शीर्ष भाग का स्पर्श, वरुण मुद्रा अँगूठे तथा कनिष्ठा के शीर्ष भाग का स्पर्श कर आदि मुद्राओं का अभ्यास हितप्रद है (कृष्ण कुमार सुमन, 2017)।

❒ **प्राणिक मुद्राएं–** सी.टी.एस. के प्रबंधन में कुछ विशेष प्राणिक मुद्राओं का भी उल्लेख मिलता है जैसे प्राण मुद्रा अर्थात अँगूठे एवं अनामिका व मुष्टिका के शीर्ष भाग का संपर्क, अपान मुद्रा (अँगूठे, मध्यमा एवं अनामिका के शीर्ष भाग का संपर्क), व्यान मुद्रा (अँगूठे, तर्जनी एवं मध्यमा के शीर्ष भाग के मध्य स्पर्श), उदान मुद्रा (अँगूठे व तर्जनी, मध्यमा एवं अनामिका के शीर्ष भाग मध्य), समान मुद्रा (अँगूठे व समस्त चारों अंगुलियों के शीर्ष भाग) आदि अभ्यासों का उल्लेख प्राप्त होता है (स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, 2013)।

❒ **निष्कर्ष :** सी.टी.एस. उपचार सम्बन्धी पूर्व विदित तथ्यों एवं उपरोक्त वर्णित योगाभ्यासों की क्रियाविधि एवं इनसे प्राप्त शारीरिक एवं चिकित्सीय आयामों की वैज्ञानिक पुष्टि के आधार पर यह कहना उचित होगा कि योगांग पूर्व की भांति आधुनिक समय में भी उपयोगी हैं। अतः योग वर्तमान समय में व्याप्त अन्य विभिन्न प्रकार के रोगों एवं समस्याओं के निराकरण में सक्षम है। प्रस्तुत शोध-पत्र सी.टी.एस. निदान में योगाभ्यासों की उपयोगिता का पूर्ण समर्थन करता है।

संदर्भ

❍ कुमार, ड. क. (2011). योग महाविज्ञान नई दिल्ली, स्टैण्डर्ड पब्लिशर्स (इंडिया)।

❍ निर्देशिका, य.च. (2011). डॉ. प्रणव पंड्या, हरिद्वार : श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट (टीएमडी)।

❍ सरस्वती, स. न. (2011). घेरण्ड संहिता मुंगेर, बिहार : योग पब्लिकेशन ट्रस्ट।

❍ सरस्वती, स. श. (2005). पूर्ण योग नई दिल्ली : श्रीकुंज सदभावना मंच।

❍ स्वामी, स. न. (2013). बच्चों के लिए योग शिक्षा 2. मुंगेर, बिहारः योग पब्लिकेशनस ट्रस्ट।

❍ 'त्रिलोक', आर. परिवार। (2016)। संपूर्ण योग विद्या भोपाल : मंजुल पब्लिशिंग हाउस।

❍ Alessia Genova, O.D. (2020). Carpal Tunnel Syndrome : A Review of Literatre, Cureus, 1-8.

❍ Bhalekar, D. S. (2018). Anatomy & Physiology : Yogic Context. Lonavala : Kaivalyadham.

❍ Contributors, P. (2025, March). Carpal Tunnel Syndrome. Retrieved from www.physio-pedia.com : https ://www.physiopedia.com/ index.phptitle= Carpal_ Tunnel _Syndrome & oldid= 367388

❍ Contributrs, P. (2025, March). Carpal Tunnel Syndrome. Retrieved from www.physio-pedia.com : https://www.physiopedia.com/ index.php?title= Carpal_Tunnel_Syndrome & oldid=367388.

❍ Contributors, P. (2025, April), Physiopedia : About. Retrieved from www.physio-pedia.com : https://www.physiopedia.com/index.php?title= Physiopeida : About & oldid = 365952.

❍ Coulter, H.D. (2010). Anayomy of Hatha Yoga. New Delhi : Motilal Banarasidas.

❍ Dr. Subhalakshmi. S, D. (2016). A Study of Carpal Tunnel Syndrome among Regular Computer Users and Effect of Yogic Exercises in Them. INTERNATIONAL JOUNAL OF SCIENTIFIC RESEARCH (IJSR), 4-5.

❍ Gore, M. M. (2021). Anatomy and Physiology of Yogic Practices : Understanding of the Ygic Concepts and Physiological! Mechanism of the Yogic Practices. New Delhi : Motilal Banarsidas Publishing House.

❍ I Ibrahim, W.K. (2012), Carpal Tunnel Sydrome : A revies of the Recent Literature. The Open Orthopaedics Journal, 69-76.

❍ Krishan Kumar Suman, D. V. (2017), Yoga Theraphy. New Delhi : Lotus Press Publshers & Distributors.

❍ Marian S. Garfinkel, E., Atul Singhal, M., Warren A. Katz, M., David A. Allan, M.P., Rosemary Reshetar, E., & H. Ralph Schumacher, J. M. (1998). Yoga-Based Intervention for Carpal Tunnel Syndrome A Randomized Trial. JAMA, 1601-1603.

❍ Orthopaedic, A. A. (2022, June). Therapeutic Exercise Program for Carpal Tunnel Syndrome. Retrieved from https ://orthoinfo.aaos.org/ : https:// orthoinfo.aaos.org/contentassets/3 ceba801b19a 40b2ad071b05f133 c6a2/2022- therapeutic-exercise-program-for carpal-tunnel.pdf.

❍ Saraswati, S.S. (2012). Asana Pranayama Mudra Bandha. Munger, Bihar : Yoga Publications Trust.

❍ Swami Satyananda Saraswati. (2013). Yoga Education for Children Volume One. Munger, Bihar : Yoga Publications Trust.

❍ Swami Satyananda Saraswati, S. N. (2013). Mudra Vigyan. Munger, Bihar : Yoga Publications Trust.

❏❏

शोधार्थी,

ई मेल - makbuddy1110@gmail.com

मो. : 7417023990

(निदेशक- डॉ.गजानन्द वानखेड़े,

सहायक प्राचार्य, योग विज्ञान विभाग,

स्पर्श हिमालय विश्वविद्यालय,

देहरादून उत्तराखंड)।

जो वस्तु आनन्द नहीं प्रदान कर सकती, वह सुन्दर नहीं हो सकती, और जो सुन्दर नहीं हो सकती वह सत्य भी नहीं हो सकती। जहां आनन्द है वहीं सत्य है।

–प्रेमचंद

मीडिया ट्रायल : निष्पक्षता, उत्तरदायित्व एवं परिणाम

ड़ॉ. श्वेता

यह आलेख वर्तमान में तीव्र गति से मीडिया के समाज पर अंकित हो रहे परिणामों को सम्बोधित करता है। खासतौर पर, ऐसी सामाजिक संरचना जिसमें अधिकतर जनसंख्या अशिक्षित और भोली-भाली है, वहाँ मीडिया जैसे शक्तिशाली अस्त्र को चालाकी से अपने पक्ष में इस्तेमाल करने के उदहारण अनेकानेक हैं। इस लेख में मीडिया के दुष्प्रभाव तथा इनसे जुड़े मुद्दों का उदाहरणसहित वर्णन है। साथ ही आज सामने आए परिणामों का विचारकों द्वारा कई दशकों पूर्व भांप लिए जाने का उल्लेख है। इस सन्दर्भ में मैंने बौद्धिक अभिजात्यवाद तथा लोकप्रिय जनमत की कशमकश को वाद-विवाद द्वारा प्रस्तुत किया है। इसके अलावा यह भी चर्चित है कि अप्रभावित रहकर किसी व्यक्ति को कैसे स्वतन्त्र रूप से अपना मत निर्धारित करना चाहिए। अंततः आने वाले समय में बढ़ते मीडिया को ध्यान में रखकर लोगों को उनके उत्तरदायित्व की ओर प्रेरित किया गया है। (बीजशब्द : मीडिया ट्रायल, न्यायिक प्रक्रिया, मानहानि, निष्पक्ष सुनवाई, पूर्वाग्रह, अवांछित परिणाम, पब्लिक स्फीयर, विचारों का लोकतंत्रीकरण, बौद्धिक अभिजात्यवाद, गुणात्मक अंतर, समतलीकरण, निहित स्वार्थ, संदूषण, औसत जनमत की निरंकुशता, निश्चित परिणाम)।

आज का युग सूचना एवं समाचार का युग है। अनेक ऐसे माध्यम हमारी उंगलियों के सिराओं पर उपलब्ध हैं जिनसे हम रियल टाइम या वास्तविक काल में हो रही घटनाओं को अनुभव कर सकते हैं। सूचना एवं समाचार का प्रसार इतनी तीव्र गति से होता है कि प्रतिक्रिया देने से लेकर उनके विषय में राय निर्धारण के दौरान उचित समय देकर तसल्ली से उनकी समीक्षा करने का मौका भी नहीं मिल पाता है। इस बात का प्रभाव आज की सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों में साफ तौर पर परिलक्षित होता है। ध्यान से देखने पर हम पाते हैं कि निहित पार्टियां अपनी विचारधाराओं के पक्ष में मतों को प्रभावित करने के लिए मीडिया का उपयोग करतीं हैं। इस दृष्टिकोण से मीडिया एक अत्यंत शक्तिशाली अस्त्र बन जाता है। किन्तु जैसा प्रत्येक शक्तिशाली अस्त्र के साथ होता है, उपयोग के आलावा उसके दुरुपयोग की भी उतनी ही संभावना होती है। क्या इस दुरुपयोग की संभावनाओं का पूर्वाभास विचारकों को पहले ही हो गया था?

क्या महज संभावनाओं के अनुमानित आधार पर प्रेस की प्रगतिशीलता की बलि चढ़ा देना उचित होता? विशेषकर मीडिया की शक्ति के उपयोग का समाज पर प्रभाव का आकलन करना कठिन है, क्योंकि एक औसत उपभोक्ता के लिए इसे जान पाना अत्यंत मुश्किल है कि उसकी अपनी पृथक स्वतन्त्र सोच क्या है जो अचेतन रूप से मीडिया के सुझाए नैरेटिव से अप्रभावित रहे।

मीडिया ट्रायल : पृष्ठभूमि एवं प्रभाव- बीसवीं शताब्दी के अंत और इक्कीसवीं शताब्दी के आरम्भ के समय एक ऐसी नई परिघटना का उद्‌भव हुआ जो 'मीडिया ट्रायल' के नाम से प्रचलित हुआ। इस पद का उपयोग पारम्परिक तौर पर दूरदर्शन, समाचारपत्र जैसे मीडिया, तथा समकालीन तौर पर फेसबुक व्हॉट्सएप्प, इंस्टाग्राम इत्यादि जैसे सोशल मीडिया के ऐसे प्रभावों का वर्णन करने हेतु किया जाता है जहाँ केस के तथ्यों के बावजूद भी मीडिया अपने पास उपलब्ध जानकारियों के आधार पर किसी व्यक्ति की ऐसी छवि बनाते हैं जिसका अधिकतर नकारात्मक असर समाज में उस व्यक्ति की प्रतिष्ठा पर होता है। यह इसलिए आपत्तिजनक है क्योंकि इसमें न्यायपालिका की प्रक्रिया द्वारा आरोप सिद्ध अथवा असिद्ध होने से पहले ही मीडिया की प्रक्रिया द्वारा आरोपित व्यक्ति विशेष की ऐसी छवि प्रस्तुत हो जाती है जो उस व्यक्ति के लिए ऐसी पूर्वनिर्धारित नियति बन जाती है जिसके बोझ से मुक्त हो पाना उसके लिए यदि असंभव नहीं तो अत्यधिक कठिन हो जाता है। यदि सार्वजनिक रूप से मीडिया द्वारा किसी व्यक्ति को दोषी करार दे दिया जाता है, तो उसके पश्चात् न्यायिक प्रक्रिया द्वारा उसके बाइज्जत बरी किये जाने के बावजूद भी, उसके प्रति जनमत का पूर्णतः परिवर्तन संभव या प्रभावशाली नहीं है क्योंकि यह जनता के बीच उस व्यक्ति की हो चुकी मानहानि की भरपाई करने में असमर्थ है।

मीडिया ट्रायल का मुद्दा कई स्तर पर अनैतिक एवं समस्यात्मक है। एक तो मीडिया का प्रभावक्षेत्र असीमित तथा तात्कालिक है। उसपर मीडिया सुझाव की शक्ति का प्रचुर मात्रा में इस्तेमाल कर अपने प्रतिपादित विवरण को जनता द्वारा स्वीकारने के लिए एक प्रकार से प्रोत्साहित कर पा सकती है। इनका परिणाम होता है किसी व्यक्ति विशेष के प्रति एक पूर्वाग्रह धारणा की रचना जो न्यायपालिका की कार्यवाही आरम्भ होने से पहले ही एक प्रकार से उसके विरुद्ध निर्णय का एलान जैसा है। ऐसे में अनुचित पूर्वाग्रह के शिकार उस व्यक्ति की निष्पक्ष सुनवाई की सम्भावना और भी घट जाती है तथा उसे और उसके परिवार को समाज में अवमानना तथा जगहंसाई का सामना करना पड़ता है जिससे गुजरना तक अत्यधिक कष्टप्रद है और उबरना तो नामुमकिन। यहाँ विशेष रूप से उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि कुछ एक मामलों में जिस व्यक्ति को आरोपी समझा जा रहा होता है, वह खुद ही पीड़ित होता है जिसे अंततः निर्दोष पाया जाता है। उदहारण स्वरूप रायन इंटरनेशनल स्कूल, गुरु ग्राम के विद्यार्थी प्रद्युम्न ठाकुर हत्याकांड में, दोषी को शीघ्र गिरफ्तार करने के दबाव तथा/अथवा अन्य अज्ञात कारणवश, पुलिस द्वारा तुरंत ही उस स्कूल के एक बस कंडक्टर अशोक कुमार को यह कहकर पेश किया गया कि उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया है। तत्पश्चात जांच-पड़ताल में यह पता चला कि न केवल वह पूर्णतः निर्दोष था, बल्कि वह अपराध स्थल पर पहुँच कर चिकित्सा आपात में मदद करने वाले पहले कुछ व्यक्तियों में से महज एक था। यह समझना कठिन नहीं है कि किन तरीकों से उससे अपने विरुद्ध ऐसा झूठा कबूलनामा निकलवाया गया होगा तथा इस प्रक्रिया में व्यक्तिगत रूप से उसने क्या कुछ नहीं सहा होगा। इसके अलावा तथ्यों के सामने आने के पूर्व ही जिस त्वरित गति से टीवी पर उसे एक खूनी एवं पीडोफाइल बताकर पूरे देश में दिखाया गया, उससे न केवल वह, अपितु उसका पूरा परिवार देश की नफरत एवं हिकारत का पात्र बना।

यह अकारण नहीं है कि कानूनी सुनवाई के लिए एक उचित प्रक्रिया निर्धारित की गई है। मुकदमे की प्रक्रिया में साक्ष्य एकत्र करने, गवाहों से जिरह करने, अभियुक्त को कानूनी सलाह उपलब्ध कराने, न्यायाधीश की उपस्थिति में ही स्वीकारोक्ति की जांच करने जैसी सभी उचित सावधानी बरती जानी चाहिए, जिससे स्वीकारोक्ति या कबूलनामे के लिए जबरदस्ती किए जाने की संभावना समाप्त हो जाती है। इन सबके पश्चात् ही किसी ऐसे प्राधिकारी द्वारा निर्णय सुनाया जाना चाहिए जो मामले के सभी प्रासंगिक पहलुओं से अवगत हो और ऐसा करने के लिए सक्षम और प्रशिक्षित हो। तभी निष्पक्ष सुनवाई होगी और अभियुक्तों का निष्पक्ष प्रतिनिधित्व होगा। वास्तविक मामले से पहले ही हुआ सनसनीखेज मीडिया ट्रायल आरोपी को निष्पक्ष सुनवाई से वंचित कर देता है और इससे न्यायाधीश पर भी इस

बात का अत्यधिक दबाव पड़ता है कि यदि उसका निर्णय अदालत कक्ष के बाहर पहले से मौजूद दृष्टिकोण से सहमत नहीं है तो आम जनता उसके विषय में भी गलत राय कायम कर लेगी। राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ऐसे कई उदाहरण हैं, जहां यह पाया गया कि निर्दोष होते हुए भी अभियुक्त बदनामी के अनुचित दाग- जो तेजी से चिपक जाते हैं और आसानी से दूर नहीं होते हैं को झेलने के लिए अभिशप्त हुए हैं। निष्पक्ष सुनवाई की असंभवता के अलावा अभियुक्त पर अतिरिक्त कठिनाई यह है कि मुकदमे के परिणाम की परवाह किए बिना उसे अपना शेष जीवन लोगों के गहन सार्वजनिक परीक्षण के साथ ही बिताना पड़ेगा।[1]

आरोपियों को सजा दिलाने में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए हमें मीडिया की सराहना करनी चाहिए। एक सक्रिय मीडिया सभी क्षेत्रों के प्रभावशाली लोगों को बेनकाब करने में महत्वपूर्ण है। इसलिए मीडिया को लोकतंत्र के चार स्तम्भों में से एक माना जाता है। हम वर्तमान में ऐसी तकनीक के युग में रहते हैं जिसमें घटनाओं के घटित होने के साथ ही लोगों तक उनके विषय में जानकारी पहुँचाने की क्षमता है। हम अपने जीवनकाल में दैनिक प्रेस से लेकर इंटरनेट मीडिया और अब लाइव स्ट्रीमिंग तक बढ़ते हुए इस स्तर पर पहुँच गए हैं। केबल टेलीविजन, स्थानीय रेडियो नेटवर्क और इंटरनेट के आगमन ने जनसंचार माध्यमों की पहुंच और प्रभाव को कई गुना बढ़ा दिया है। लोगों तक इस निरंतर बढ़ती पहुंच ने लोकमत संचालन में मीडिया को एक अभूतपूर्व भूमिका दी है। हालाँकि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि समाज की राय को ढालने में मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका है और यह उस पूरे दृष्टिकोण को, जिसके माध्यम से लोग विभिन्न घटनाओं को देखते हैं को बदलने में मीडिया सक्षम है, लेकिन साथ ही यह भी स्वीकार किया जाना चाहिए कि केवल लोगों का ध्यान आकर्षित करने और टीआरपी रेटिंग हासिल करने के लिए मामलों को सनसनीखेज बनाकर बेखबर जनता के विश्वास का उलंघन न करने की जिम्मेदारी भी इसी मीडिया पर है। किन्तु यह भी पाया गया है कि उत्तेजित जनता को विचारोत्तेजक जानकारी देकर भीड़ में बदलने की क्षमता रखनेवाला मीडिया ने कई बार सार्वजनिक उन्माद के माहौल को भड़काया है।

अवांछनीय परिणाम : पूर्वानुमान या असावधानी-

यदि मीडिया के इस आचरण को हम इरादतन खतरे को अंजाम देने वाला या संदेहास्पद न भी समझें, तब भी अनजाने में ही सही, मीडिया को 'जनमत की निरंकुशता' को बढ़ावा देने में एक तरह से भागीदार माना जा सकता है। आए दिन हम ऐसे कार्यक्रमों का सामना करते हैं जो अत्यंत महत्वपूर्ण मुद्दों को सम्बोधित करते हैं और कार्यक्रम के अंत में संवेदनशील प्रश्नों पर दर्शकों/पाठकों/श्रोताओं से आमतौर पर हाँ/नहीं में जवाब माँगा जाता है या वे सुझाए गए परिणामों से सहमत असहमत हैं। इस प्रक्रिया में अनेक ऐसे चौंकाने वाले नतीजे सामने आते हैं जिनमें बहुमत की संवेदनहीनता परिलक्षित होती है। आज मीडिया ने यह संभव बना दिया है कि समाचार हर दरवाजे तक न्यूनतम और कभी-कभी बिना किसी लागत के पहुँच जाए। इसका परिणाम यह है कि खबरें अनगिनत लोगों तक पहुँच रहीं हैं एवं उनमें निहित मुद्दों पर अनगिनत राय बन रही हैं। हालाँकि यह हमें मानव जाति द्वारा हासिल की गई प्रगति का जश्न मनाने का एक कारण देता है, लेकिन साथ ही यह हमें उन अवांछित दुष्परिणामों के बारे में सोचने को बाध्य भी करता है जो दुर्भाग्य से समाचार के उन लोगों तक भी पहुंचने की वजह से होते हैं जिनमें से अधिकतर के पास दी गई जानकारी की समीक्षा कर सार्थक निष्कर्ष निकालने की विवेकशील क्षमता हो या न हो। लोकतंत्र के युग में जहां प्रति व्यक्ति एक मत है और प्रत्येक मत का महत्त्व सामान है, हम सोच में पड़ जाते हैं कि क्या यह एक सुखदाई उपलब्धि है या अफसोसजनक परिस्थिति। समाचार की अंधाधुंध उपलब्धता अन्य बातों के मध्य तर्कसंगत निष्पक्ष राय और जिसे में समाचार पर प्रतिक्रिया राय कहूँगी, के टकराव को भी सामने लाती है।

ऐसे में, हमारे विचारों और कार्यों को निर्धारित करने में समाचार/सूचना की क्या भूमिका होनी चाहिए? राय बनाने के लिए सूचना आवश्यक है, किन्तु क्या यह इसके लिए पर्याप्त भी है? ऐसे प्रश्नों के संभावित

उत्तरों में से एक हमें पब्लिक स्फीयर' (सार्वजनिक क्षेत्र) की अवधारणा की याद दिलाता है। 18 वीं शताब्दी के मध्य में समाज में एक महत्वपूर्ण क्षेत्र हुआ करता था, जिसे हैबरमास ने पब्लिक स्फीयर (सार्वजनिक क्षेत्र) कहा था, जो ऐसा सम्मानित और मान्यता प्राप्त स्थान था जहाँ सुविज्ञ लेकिन निष्पक्ष बुद्धिजीवियों से अपेक्षा की जाती थी कि वे मुद्दों एवं नीतियों पर तर्कसंगत रूप से विचार कर केवल गुण-दोष के आधार पर उनका आकलन कर राय व्यक्त करें। उनके राय-विचार की तत्कालीन सरकार से सहमति कतई आवश्यक नहीं होती थी। उनकी परिचर्चाओं को सरकार द्वारा भी सम्मान दिया जाता था क्योंकि उनके पास यह संदेह करने का कोई कारण नहीं था कि आलोचनात्मक विचार विपक्ष के थे साथ ही आम जनता में भी उनके विचारों को महत्त्व दिया जाता था क्योंकि उनके पास यह संदेह करने का कोई कारण नहीं था ये विचार तत्कालीन सरकार के थे। यह एक ऐसा स्थान था जहाँ गैर-राजनीतिक बुद्धिजीवी चर्चा करते थे और राजनीतिक तथा अन्य मुद्दों पर अपनी विशेष राय पेश करते थे। चूंकि ऐसे लोग न तो सत्ताधारी दल के होते थे और न ही विपक्ष के, इसलिए उनकी राय किसी निहित स्वार्थ से नहीं, बल्कि बुद्धिमान और योग्य दिमागों के प्रबुद्ध तर्कसंगत चिंतन से उत्पन्न होती थी। भले ही राजनीतिक परिधि से अलग होने के कारण उनके पास कोई राजनीतिक शक्ति न हो, लेकिन ऐसे विचारों को बहुत महत्व दिया जाता था और उन्हें सरकार एवं समाज दोनों का मार्गदर्शन प्रदान करने में सक्षम माना जाता था। हर्बर्ट ड्रेफस ने अपने लेख 'निहिलिस्म ऑन द इन्फॉर्मेशन हाइवे' (सूचना राजमार्ग पर शून्यवाद) में उल्लेख किया है कि कैसे कीर्केगार्ड प्रेस के आगमन और इसके माध्यम से आ जाने वाले दुर्भाग्यपूर्ण परिणामों के प्रति सशंकित थे। उन्हें पूर्वाभास था कि प्रेस और उसके बाद दैनिक समाचार पत्र के आगमन से ऐसी जिज्ञासा का विकास होगा जो विद्वान और योग्य, तथा यादृच्छिक और अयोग्य व्यक्तियों के विचारों के सभी गुणात्मक अंतरों को मिटा देगी। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को राय देने काबिल और अपनी राय को दूसरों की राय के बराबर होने का हकदार महसूस करता है। इस स्थिति को कीर्केगार्ड ने समतलीकरण कहा था। सार्वजनिक क्षेत्र का महत्व इसलिए था क्योंकि इसमें व्यक्त की गई राय तर्कसंगत और बौद्धिक होने के साथ पूर्णतः निष्पक्ष एवं उदासीन होती थी। तर्कसंगतता उन विचारों को साख प्रदान करती थी, जबकि निःस्वार्थता उन्हें विश्वसनीयता प्रदान करती थी। इस प्रकार दैनिक समाचार पत्र के भयावह परिणामों में से एक था 'लेवलिंग ऑफ द पब्लिक स्फीयर' अर्थात सार्वजनिक क्षेत्र का समतलीकरण या मिट जाना[2]

कुछ विचारकों ने सार्वजनिक क्षेत्र की अवधारणा की निंदा भी की थी क्योंकि यह कुछ विशिष्ट लोगों के बीच सूचना के राशनिंग का पक्षधर था और जनता को अभिव्यक्ति के अवसर से वंचित करता था। यह संभवतः ऐसे बौद्धिक अभिजात्यवाद को जन्म देता जो अहंकारी होता और लोकप्रिय जनमत को आसानी से खारिज कर देता। जनता की राय के कोई मायने नहीं रह जाते। अतः कुछ विचारक दैनिक प्रेस के आगमन की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे क्योंकि प्रेस की पहुंच समाचार पत्रों के माध्यम से हर चौखट तक थी जिससे इस सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार संभव होता। इस तरह प्रेस ने जनता को अब तक सूचना पर लगे अनकहे प्रतिबंध से एक प्रकार से मुक्त कर दिया और सूचना तथा विचारों का लोकतंत्रीकरण कर दिया। लेकिन, सूचना का प्रसार स्वयं पूरी तरह निःस्वार्थ नहीं है। हम इस तथ्य को भी नजरअंदाज नहीं कर सकते कि कई बार यह किसी सिद्धांत या व्यक्ति विशेष के प्रति 'राय निर्माण' अथवा उत्पादों के प्रचार-प्रसार जैसे कारकों से प्रेरित होता है। ऐसे मामलों में, जानकारी तथ्यों को प्रसारित नहीं करती है, बल्कि ऐसे प्रायोजित राय की ओर इशारा करती है, जिसका उद्देश्य सीधे-सादे भोले मन को सफलतापूर्वक बिक्री के आंकड़ों में परिणीत करना हो। तो हम इस प्रश्न पर आते हैं 'किसकी राय मायने रखती है?' मैं इस सरल किन्तु भ्रामक प्रश्न को वास्तविक जीवन के उदाहरण से संबोधित करना चाहूँगी जब मेरे पिता को घुटने के प्रतिस्थापन के लिए एक सुपर स्पेशलिस्ट डॉक्टर द्वारा सलाह दी गई थी। मैं सोच में पड़ गई कि क्या यह प्रक्रिया नितांत आवश्यक है। इसलिए मैं दूसरी राय के

लिए गई। परन्तु अगला डॉक्टर रियायती दर पर सर्जरी करने के लिए दोगुना इच्छुक था! आश्वस्त करने के बजाय, इसने मुझे प्रक्रिया की आवश्यकता के बारे में और अधिक सशंकित कर दिया। आखिरकार, मैं एक सर्जन के पास गई जो सशस्त्र बलों के साथ था और इसलिए उसे मेरे पिता जैसे गैर-सशस्त्र बल वाले व्यक्ति की सर्जरी करने की अनुमति नहीं थी। वह भी सर्जरी की आवश्यकता के लिए सहमत थे और अंततः मैं उनकी राय से संतुष्ट हो गई जबकि वह डिग्री तथा तजुर्बे के मामले में पहले डॉक्टरों से कम थे। पहली दो राय के निहित स्वार्थ से प्रेरित होने की संभावना ने मुझे राय की सत्यता पर संदेह करने के लिए मजबूर कर दिया था, जबकि स्वार्थमुक्तता के कारण तीसरी राय ने मेरा विश्वास हासिल कर लिया। तब मुझे तर्कसंगत, निःस्वार्थ राय के मूल्य का एहसास हुआ।

बढ़ते माध्यम, बढ़ते उत्तरदायित्व- मीडिया के निरंतर विस्तार के युग में पब्लिक स्फीयर का विनाश हो रहा है। जहाँ समान अधिकारों के पक्षधरों द्वारा इस स्थिति का जश्न मनाया जाता है, वहीं कुछ अन्य लोगों ने इस बात पर चिंता व्यक्त की है कि इससे निस्संदेह ही बहुमत की अति शक्तिशाली राय बनती है जिसमें अल्पमत पर महत्वपूर्ण रायों को दबाने की क्षमता है। जनमत जो एक समय पर निष्पक्ष तर्कसंगत, योग्य बौद्धिक अभिजात वर्ग के विवेक को इंगित करता था, अब अयोग्य बहुमत की औसत दर्जे की राय का प्रतिनिधित्व करता है। चूंकि लोकतंत्र के आदर्शों के अनुसार सभी समान हैं, इसलिए बहुमत की औसत दर्जे की राय ही प्रबल मानी जाएगी। जहाँ कुछ विचारकों ने मतों के लोकतंत्र को मुक्तिदायक पाया, किर्केगार्ड जैसे अन्य लोगों को डर था कि यह समाज को औसत जनमत की निरंकुशता की ओर ले जाएगा। और जनमत न केवल औसत दर्जे से ग्रस्त होने का जोखिम तो उठाता ही है, साथ ही यह भी खतरा मोल लेता है कि अपने स्वार्थ से प्रेरित मीडिया (या मीडिया का इस्तेमाल करने वाले) चालाकी और वाक् कौशल से भोली-भाली जनता को आसानी से बहका लें। यह पहलू हमारे सामने दिन प्रतिदिन और उजागर हो रहा है।

मीडिया की भूमिका जेसिका लाल मर्डर जैसे मामलों में सराहनीय रही है, जिसमें मीडिया के न होने पर दोषी कभी पकड़े न जाते। रिपोर्टिंग का ऐसा ही काम मीडिया के अस्तित्व का कारण है। मीडिया के पास यह बहाना है कि प्रस्तुत तथ्यों पर जनता की होनेवाली प्रतिक्रिया पर उसका कोई नियंत्रण नहीं है। फिर भी, अधिकतम दर्शक पाने की तीव्र प्रतिस्पर्धा के बीच विभिन्न चैनलों से रिपोर्टिंग के इस सरल नियम का उल्लंघन हो जाता है कि 'जैसा होता है उसे बिना किसी संदूषण के वैसा ही दिखाना चाहिए, रिपोर्टर कैसे तटस्थ रह सकते हैं, जब उनके नियोक्ता, समाचार चैनल खुद ही किसी एक या दूसरी विचारधारा का खुलकर समर्थन कर रहे हों? और विचारधारा को लेकर चैनल कैसे तटस्थ रह सकते हैं, जब उनका स्वामित्व ऐसे लोगों के पास हो जो राजनितिक विचारधारा से प्रेरित एक राय या उसकी विपरीत राय को बेचने या बढ़ावा देने वाले हों? क्या मीडिया वास्तव में स्वतन्त्र है? यह भी एक बहुत बड़ा प्रश्नवाचक चिह्न है। जब रिपोर्टिंग का एक क्षेत्र यानी राजनीतिक क्षेत्र संदूषण से मुक्त नहीं है, तो क्या हम दावे के साथ कह सकते हैं कि मीडिया कवरेज के अन्य क्षेत्र संदूषण से पूर्णतया मुक्त हैं?3

हम तक पहुंचने से पहले ही जब इतने सारे कारक तथ्यों से छेड़छाड़ करने में सक्षम हैं, तो हमें भी अपना निर्णय लेने से पहले हर संभव सावधानी बरतनी चाहिए। आज के युग में जब किसी भी सनसनीखेज दावे को तुरंत वायरल करने के लिए अनेकानेक मीडिया मौजूद हैं और वायरल हो रही खबर/सूचना/रील इत्यादि की सत्यता की निगरानी करने वाली कुछ ही एजेंसियाँ हैं, तब यह एहतियात और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। किसी मुकदमे में एक न्यायाधीश की भूमिका की हमें सराहना करनी चाहिए और उसके महत्व को हमें स्वीकार करना चाहिए क्योंकि वह एक तर्कसंगत उदासीन निष्पक्ष राय का प्रतीक एवं प्रतिनिधि है।4 प्रतिष्ठित वकीलों में से एक स्वर्गीय श्री राम जेठमलानी ने भी मीडिया द्वारा ट्रायल की बढ़ती प्रवृत्ति पर चिंता व्यक्त करते हुए कहा था कि इन दिनों मीडिया अदालत जैसा व्यव्हार करता है और वास्तविक अदालत द्वारा फैसला सुनाए जाने से

पहले ही अपना फैसला सुना देता है। मीडिया द्वारा ट्रायल कानून के उल्लंघन के अलावा कुछ नहीं है। यह अदालत की अवमानना है। जब मीडिया अदालत बन जाए और जनता जज बन जाए, तो क्या हम उम्मीद कर सकते हैं कि नतीजा उदासीन, तटस्थ और तर्कसंगत होगा? जब मीडिया बहुमत को नियंत्रित करने की क्षमता रखता हो और बहुमत में न्याय के नाम पर निश्चित परिणाम मांगने की ताकत, तो क्या स्वतंत्र और निष्पक्ष सुनवाई का अचूक आश्वासन हो सकता है?

सन्दर्भ :

1. डॉ.वी.वी.एल.एन. सास्त्री, मीडिया ट्रायल्स एंड क्रिमिनल जस्टिस इन इंडिया, ब्लू डायमंड पब्लिशिंग, छत्तीसगढ़, इंडिया, 2020। **2.** हर्बर्ट ड्रेफस, ऑन द इंटरनेट, 'निहिलिस्म ऑन द इन्फॉर्मेशन हाइवे : एनॉनिमिटी वर्सेस कमिटमेंट इन द प्रेजेंट एज फोर', राटलेज, 2008। **3.** जॉन ए. हर्ड, पॉलिसी एनलिसिस फॉर ह्वाट? द इफ्फेक्टिवनेस ऑफ नॉन पार्टिसन पॉलिसी रिसर्च ऑर्गनाइजेशन्स, (पॉलिसी स्टडीज जर्नल), 2005। **4.** जिष्णु दिनेशन, मीडिया ट्रायल्स? ऐन एनलिसिस ऑफ एथिकल इश्यूज, जर्नल ऑफ इमर्जिंग टेक्नॉलोजीज एंड इन्नोवेटिव रिसर्च, www.jetir.org. 2019।

❑❑

(एसोसिएट प्रोफेसर, दर्शन विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय)
फ्लैट नं. 165, मनु अपार्टमेंट्स,
मयूर विहार फेज 1,
दिल्ली, पिन कोड 110091, मो. 9811637578
ईमेल - shweta@mirandahouse.ac.in

प्रतिस्वर

वैचारिकी जनवरी-फरवरी 2025, भाग 41 अंक 1 प्राप्त हुई एतदर्थ धन्यवाद। अध्यक्षीय 'सत्य का अन्वेषण' पठनीय है। यह तो सत्य है कि मनुष्य इस सृष्टि के सत्य को जानने के लिए अनंतकाल से उत्सुक और प्रयत्नशील है। आज भी मनुष्य प्रकृति के अनेक तरह के तत्वों को जानने के लिए कुछ न कुछ प्रयोग करता ही है। संपादकीय विचार स्तुत्य व अनुकरणीय हैं। आध्यात्मिक विचार अच्छे से प्रकाशित हैं। डॉ. निशा भारद्वाज ने 'प्रयागराज कुंभ : परम्परा और धरोहर' के बारे में विभिन्न तरह के तथ्यों की सुन्दर जानकारी दी है, जैसे कुम्भ की शुरुआत और कहां-कहां कैसे क्यों हुई आदि। छात्रोपयोगी तथा शोध विद्यार्थी के लिए 'वैचारिकी' के सभी लेख बहुमुल्य हैं। लघुकथाएं प्रेरणादायक हैं। उत्तम प्रकाशन की शुभकामनाएं।

प्रधान सचिव- गीता माई रा.स.
कर्नाटक महिला हिन्दी सेवा समिति
178, चौथा मुख्य रास्ता, छठवां क्रॉस,
चामराजपेट, बेंगलूर-560018
मो. 8026617777

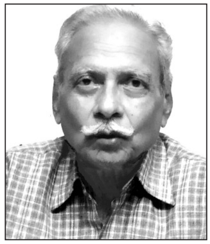

मृत्यु का पूर्वाभास

डॉ. आनन्द शर्मा

महाभारत के प्रसिद्ध यक्ष-युधिष्ठिर सम्वाद में यक्ष का प्रश्न होता है, 'सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है?' युधिष्ठिर का उत्तर था, 'मृत्यु सुनिश्चित होने पर भी हर कोई समझता है कि शायद उसकी मृत्यु नहीं होगी। यही सबसे बड़ा आश्चर्य है।' आज यक्ष का प्रश्न होता, 'सबसे बड़ा मित्र कौन है?' युधिष्ठिर का उत्तर होता, 'मृत्यु, जो जन्म के साथ ही छाया की तरह साथ चलती हुई अन्त तक साथ निबाहती है। छाया तो फिर भी अन्धकार में साथ छोड़ देती है। लेकिन मृत्यु किसी भी स्थिति में साथ नहीं छोड़ती। उसे ही सबसे बड़ा सहचर और मित्र कहा जा सकता है।' लेकिन यह अर्ध-सत्य ही होता। प्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक प्राणी की निश्चित मृत्यु दिखाई देती है। राम, कृष्ण जैसे अवतारी भी इससे नहीं बच पाये। यथासमय वे भी दैहिक मृत्यु को प्राप्त हुए थे। लेकिन श्रीकृष्ण तो अर्जुन को उपदेश देते हुए कुछ और ही बताते हैं। वे कहते हैं कि तेरे और मेरे अनेक जन्म हो चुके हैं, तुझे उनकी स्मृति नहीं है, किन्तु मुझे उन सबका स्मरण है। अर्थात् व्यक्ति बार-बार जन्म लेता रहता है।

कृष्ण का यह कथन महाभारत के शान्ति पर्व में एकदम जीवन्त होकर प्रमाण बन जाता है। उस महायुद्ध में अठारह अक्षौहिणी सेना और योद्धाओं में से पांचों पाण्डव और कृष्ण ही जीवित बचे थे तथा कौरव पक्ष से अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ही बचे थे। याने पचास लाख से अधिक विधवायें क्रन्दन करने के लिये अभिशप्त हो गयी थी। हस्तिनापुर में राजकुल की हजारों स्त्रियां, कौरवों की सौ विधवाओं के साथ आर्तनाद कर रही थी। इससे द्रवित महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास ने उन्हें रात्रि में गंगा तट पर आने के लिये कहा। वहाँ अपनी तप-शक्ति के द्वारा युद्ध में मारे गये वीरों का आह्वान किया तो वे भी अपने-अपने लोकों से वहां आ गये। वहाँ उनकी स्त्रियों, माताओं, बहनों आदि ने उनके साथ वार्तालाप किया। जन्मान्ध धृतराष्ट्र और गान्धारी को भी महर्षि व्यास ने दिव्य नेत्र देकर, अपने मृत पुत्रों को देखने का अवसर दिया। रात्रि भर साथ रहने के बाद प्रातः की किरण के साथ वे अपने-अपने लोकों को लौट गये। इससे स्पष्ट होता है कि वे सब मरे नहीं थे। उन्होंने सिर्फ देहत्याग किया था। वे कर्मानुसार प्राप्त लोकों में प्रेमपूर्वक रह रहे थे।

मृत्यु का सत्य– पुनर्जन्म के अनेक मामले हमेशा से सामने आते रहे हैं। आधुनिक विज्ञान भारी-भरकम रिसर्च के बाद भी इसके रहस्य से आज तक पूरी तरह अवगत नहीं हो पाया है। भारतीय दर्शन के दो मूलाधार हैं, 'आगम' और 'निगम' आगम याने तंत्र और निगम अर्थात् वेद। वेद के द्वारा तो परमात्मा के स्वरूप को जाना ही जा सकता है। किन्तु तन्त्र के द्वारा तो उसका साक्षात्कार भी किया जा सकता है। किसी भी देवी-देवता को प्रत्यक्ष बुला कर उनसे वांछित काम भी करवाया जा सकता है। यह तन्त्र शास्त्र अर्थात् आगम मृत्यु को असत्य कहता

है। उसके अनुसार सृष्टि और उसके प्रत्येक जीव का निर्माण 'पञ्च महाभूतों' से हुआ है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश मिल कर एक पिण्ड का निर्माण करते हैं। उसमें आत्म तत्व प्रविष्ट होकर उसे जाग्रत कर देता है। समय आने पर वह तत्व निकल जाता है। निर्जीव पिण्ड पुनः पंच महाभूतों में विखण्डित हो जाता है। उसे जलाकर, गाड़कर, मांसाहारी पक्षियों का भोजन बना कर यही काम तो किया जाता है। समय आने पर वे मिल कर फिर नये पिण्ड का निर्माण करते हैं। आत्म तत्व प्रविष्ट होकर उसे जोवन्त कर देता है। यही चक्र चलता रहता है। अब इसमें नष्ट क्या हुआ? कुछ भी तो नहीं। बस, रूप बदल गया। इसलिये आगम में मृत्यु को असत्य कहा गया है।

मृत्यु का पूर्वाभास– मानव देह का तो चलो विभिन्न तरीकों से निपटारा हो गया। उनके पालतू पशु-पक्षियों को भी इसी तरह ठिकाने लगा देते हैं। लेकिन जंगल के पशु-पक्षी भी तो अपनी देह त्यागते ही हैं। उन्हें कौन ठिकाने लगाते आता है? फिर तो जंगल में जगह-जगह मृत पशु-पक्षी मिलते रहने चाहिये। लेकिन ऐसा होता नहीं। सभी प्राणी तो एक-दूसरे का आहार नहीं हो जाते। उनमें से बहुत सारे वृद्धावस्था तक पहुँच कर अपनी स्वाभाविक मृत्यु को प्राप्त होते ही हैं। लेकिन क्या कभी किसी ने प्राकृतिक मृत्यु प्राप्त वन्य प्राणी को देखा है? जंगल की बात छोड़ें, शहरों में ही हजारों पक्षी उड़ते रहते हैं। वे भी तो मरते ही हैं। दुर्घटना में मरे एकाध पक्षी की बात जाने दें। स्वाभाविक मृत्यु प्राप्त कोई पक्षी कभी देखने में आया हो तो बतायें।

स्पष्ट है, मृत्यु का पूर्वाभास हो जाने पर वह अपने झुण्ड से अलग होकर एक निर्धारित स्थान पर चला जाता हैं। वहीं उसकी मृत्यु हो जाती है। हाथी, शेर, गैंडा जैसे विशालकाय प्राणियों को कौन मार सकता है? लेकिन मरते तो वे भी हैं ही। फिर उनके भी शव क्यों नहीं मिलते। वर्षों पूर्व पढ़ा था कि दक्षिण अफ्रीका में अन्वेषकों ने हाथियों का कब्रिस्तान खोजा है। वहाँ उन्हें ढेर सारा हाथी दाँत भी मिला है। मृत्यु का पूर्वाभास होने पर हाथी अपने झुण्ड से अलग होकर उस स्थान के लिये प्रस्थान कर देता है। वहां बैठ कर शान्ति से अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा करता है। चीटियों का श्मशान भी अन्वेषकों ने खोजा है।

वैसे तो प्रकृति या परमात्मा ने सन्तुलन बनाये रखने की सुव्यवस्था की हुई है। वनस्पति को नियंत्रित रखने के लिए शाकाहारी पशु और उनका सन्तुलन बनाये रखने के लिए मांसाहारी पशु-पक्षी की व्यवस्था है। यहाँ तक कि चींटी को भी कीवी का आहार बनाया है। इसके साथ उन्हें मृत्यु के पूर्वाभास का सामर्थ्य भी प्रदान किया गया है। लेकिन मानव के पास ऐसा सामर्थ्य नहीं होता। बीमारी या दुर्घटना की बात जाने दें। उसमें तो अनुभवी डाक्टर अनुमान लगा सकता है। अन्यथा अन्तिम समय तक सामान्य व्यक्ति को इसका ज्ञान नहीं होता। लेकिन ऐसा हो सकता है, मनुष्य अपनी आयु और मृत्यु के बारे में निश्चित रूप से ठीक तरह जान सकता है। आयुर्वेद और अनेक ज्योतिष ग्रंथों में इनका विशद उल्लेख मिलता है। आयुर्वेद के मूलाधार 'चरक संहिता' के 'अरिष्ट खण्ड' में जीवनावधि का पता बतानेवाले ढेर सारे प्रयोग हैं। इसे आयुर्वेद के कोर्स में पढ़ाया भी जाता है। ताकि चिकित्सा आरम्भ करने से पूर्व वैद्य को ज्ञात हो जाये कि रोगी का जीवन शेष है भी या नहीं। आयु शेष न रहने पर तो सभी औषधियां निष्फल हो जानी हैं। आयु शेष होने की स्थिति में वह विश्वास के साथ उसकी चिकित्सा कर सकता है।

साधुओं द्वारा मृत्यु का 'दैवीय परीक्षण'– जैन श्वेताम्बर साधुओं में आम तौर पर मूत्र परीक्षा द्वारा शेष आयु का निर्धारण किया जाता है। इसे वे 'दैवीय परीक्षण' कहते हैं। इसमें कांसे के पात्र में रोगी का मूत्र लेकर, उसमें सरसों के तेल की एक-दो बूँद डाल कर, उसके फैलने की स्थिति का बारीकी से अध्ययन किया जाता है। तेल से बनने वाली आकृति रोगी के जीवन का अकाट्य निर्धारण कर देती है। तेल का समान रूप से चारों ओर फैलने का अर्थ रोग साध्य और उपचार से ठीक हो जाने वाला है। किन्तु उसके बिखर जाने या तल में बैठ जाने का अर्थ मृत्यु योग उपस्थित हो जाना है। इसी प्रकार तेल के पूर्व दिशा में फैलने से दीर्घ आयु और दक्षिण दिशा में फैलने से कुछ दिनों का जीवन शेष रह जाता है। पश्चिम दिशा का अर्थ रोग चाहे जितना

बढ़ जाये, उसके द्वारा रोगी की मृत्यु न होने का संकेत होता है। ईशान कोण में फैलने पर एक माह का जीवन शेष रहना और अग्निकोण अथवा नैऋत्य कोण में फैलने पर मृत्यु निश्चित समझनी चाहिये। जबकि वायव्य कोण का फैलाव मृत्यु न होने का सूचक है। इसी प्रकार उस तेल से बनी कछुआ, सिंह, सियार, श्वान या गोलाकार आकृति असाध्य रोग की सूचक होती है। जबकि लम्बी लाइन और मस्तकहीन आकृति रोग द्वारा मृत्यु की सूचना होती है। किसी शस्त्र की आकृति भी शीघ्र मृत्यु का संकेत देती है। इसके विपरीत हंस, कमल, सरोवर जैसी आकृति बनने पर रोगी की ओर से निश्चिन्त हुआ जा सकता है। मनुष्य, मन्दिर, हाथी, चामर, छड़, तोरण आदि आकृतियां भी रोगी की दीर्घायु के प्रति आश्वस्त करती हैं।

आयुर्वेद और ज्योतिष विज्ञान में ऐसे ढेरों प्रयोग हैं। जल में सूर्य बिम्ब के द्वारा भी शेष आयु की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इस प्रयोग में कांसे की थाली में जल भर कर, मध्याह्न में रोगी को सूर्य बिम्ब के दर्शन करवाये जाते हैं। जल में पूर्ण बिम्ब दिखाई देने का अर्थ आयु शेष रहना होता है। किन्तु दक्षिण दिशा में खंडित बिम्ब 6 माह, उत्तर दिशा में खण्डित बिम्ब 3 माह, पश्चिम दिशा में 2 माह और पूर्ण खण्डित बिम्ब 1 माह आयु शेष रहने का परिचायक होता है। छिद्र-विच्छिद्र बिम्ब का अर्थ दस दिनों की आयु माननी चाहिये। इसके चार विश्व चार विदिशाओं के कोणों पर देखने वाला चार घड़ी में मर जाता है। सूर्यमण्डल को किरणविहीन देखने वाले की आयु ग्यारह माह ही शेष होती है। चरक संहिता के अनुसार व्यक्ति की पुतलियों का बिना किसी रोग के सफेद हो जाने का अर्थ निश्चित मृत्यु होती है। दर्पण में अपनी जीभ न देख पाने पर तीन दिन, नाक न देख पाने पर सात दिन और भृकुटि न देख पाने वाले की नौ दिनों में मृत्यु हो जाती है।

ज्योतिष शास्त्र में एक स्थिति होती है 'मारकेश' कौन-सा ग्रह किस स्थान पर बैठकर किसी अन्य को किस दृष्टि से देख रहा है, यह कोई ज्योतिषी ही बता सकता है। लघु पाराशर ग्रंथ में लिखा है कि जन्म लग्न से दूसरा और सातवाँ घर मारकेश होता है। यही सम्बद्ध ग्रह की छठे, आठवें या बारहवें घर में बैठने की स्थिति मारकेश बनाती है। द्वितीय और सप्तम के स्वामी ग्रह की दशा भी मारकेश बनाती है। जैमिनी कहते हैं कि यदि लग्नेश और अष्टमेश शनि एवं चन्द्रमा स्थिर राशि में हो, पाप ग्रह लग्न होरा से स्थिर राशि में आ जायें, तो जातक अल्पायु होता है। क्या समझे आप? कुछ पल्ले पड़ा? नहीं। यहीं से आरम्भ हो जाता है, ज्योतिषियों का गड़बड़झाला। समझने के लिये ज्योतिषी के पास आते ही वह इन ग्रहों को न जाने कहाँ-कहाँ बैठाता हुआ, उन्हें न जाने कैसी-कैसी दृष्टि से एक-दूसरे को देखना बताना शुरू कर देता है– अल्पायु, दीर्घायु, अभी चिन्ता की कोई बात नहीं, थोड़ी सावधानी बरतें, वाहन सावधानी से चलायें आदि-आदि कह कर संकेत रूप में गोलमोल नतीजा बता देता है। वैसे भी ज्यादातर ज्योतिषी चिकित्सकों की तरह अनिष्ट की स्पष्ट घोषणा करने से परहेज ही करते हैं।

मृत्यु की पूर्व सूचना के लक्षण– लेकिन ज्योतिष में कुछ आसान तरीके भी हैं-अनागत का अनुमान लगाने के। इन्हें समझने के लिये किसी ज्योतिषी के पास जाने की आवश्यकता भी नहीं होती। एकदम ठीक न सही, अनुमान तो लगाया ही जा सकता है। जैसे मल और मूत्र विसर्जन आगे-पीछे होने की जगह एक साथ होने से सात दिन की आयु शेष मानी जाती है। पूर्ण चन्द्रमा के चारों ओर आभामण्डल न देख पाना, चेहरे की कान्ति फीकी पड़ जाना, बुद्धि भ्रमित हो जाना, कानों से ॐ न सुनाई देना, नाक-कान टेढे हो जाना, सिर्फ बायीं आँख से आँसू गिरने लगना, शरीर से मृतक जैसी गन्ध आने लगना, मध्यमा अंगुली के नाखून पर रेखायें आडी हो जाना आदि-आदि। अन्त में यही कहा जाता है-'आयु कर्म च वित्तं च विद्यानि निधन मेव', ये सब गर्भ में ही निर्धारित हो जाते हैं। व्यक्ति तो उसके अनुसार कठपुतली की तरह आजीवन नाचता रहता है। ये तो कुछ उदाहरण हैं। वरना यह एक अलग पुस्तक का विषय है।

प्रकृति तो प्रत्येक इष्ट-निष्ट की सूचना देती रहती है। चन्द्रमा विभिन्न रूपों में और छिद्रयुक्त दिखाई देने का अर्थ एक वर्ष आयु शेष रह जाना होता है। चन्द्रमा

के लाल आभायुक्तऔर ग्रहण के बगैर ही खण्डित दिखाई देने पर एक वर्ष पूर्व ही मृत्यु योग उपस्थित हो जाता है। इसी प्रकार दीपक की लौ को अनेक रूप में देखनेवाला तुरन्त मर जाता है। रात्रि में रविमण्डल या इन्द्रधनुष और दिन में चन्द्र बिम्ब दिखाई देने का अर्थ भी तत्काल मृत्यु समझनी चाहिये। अपनी छाया न देख पानेवाला सिर्फ दस दिन जीवित रहता है। कोई इस अवधि को एक मास मानते हैं। कटी, विकृत, छिन्न-भित्र छाया का अर्थ भी तत्काल मृत्यु होती है। अपनी छाया को बैल, हाथी, कौवा, गधा, भैंसा या घोड़े के रूप में देखनेवाला भी तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। किन्तु पूर्ण छाया दिखाई देने पर मृत्यु का भय छोड़ देना चाहिये। चरक संहिता में छाया के रूप, आकार, रंग आदि के द्वारा आयु निर्धारण का विस्तृत उल्लेख मिलता है।

स्वप्नों का विज्ञान– आयुर्वेद के जन्मदाता महर्षि चरक की संहिता में अन्तिम समय का वैज्ञानिक पक्ष भी बताया गया है। स्वप्नों के द्वारा आयु शेष होने का ज्ञान कोई गपोड़ेबाजी नहीं, पराभौतिक विज्ञान है। चरक के अनुसार व्यक्ति की तीन अर्थात त्रिगुणात्मक अवस्थाएं होती हैं स्वप्न, सुषुप्ति और जाग्रत। स्वप्नावस्था में आत्मा 'तेजस अहंकार' से, सुषुप्ति अवस्था में आत्मा 'तामस' और जाग्रत अवस्था में आत्मा 'सात्त्विक' अहंकार से युक्त रहता है। तेजस अहंकार रजोगुण-प्रवर्तक होने के कारण मन को स्वप्नावस्था में कार्यों में प्रवृत्त रखता है। इसके शुद्ध राजोगुणी होने पर सौम्य किन्तु दोषकांत होने पर दारुण स्वप्न दिखते हैं।

रात्रि के प्रथम प्रहर में देखे स्वप्न का फल बहुत कम या विफल हो जाता है, किन्तु प्रातःकाल स्वप्न देखने के बाद दोबारा शयन न करने पर उसका फल तत्काल और महान् मिलता है। अशुभ स्वप्न देखने के बाद उसी समय सौम्य सपना भी देख लेने उसका फल शुभ ही होता है। दिन में देखा अथवा बहुत छोटा या बहुत बड़ा स्वप्न भी कोई फल नहीं देता।

स्वप्न में स्वयं को कुत्ते, ऊंट या गदहे की सवारी पर दक्षिण की ओर जाता दिखाई देना अथवा कुत्ते द्वारा दक्षिण दिशा में घसीटे जाता देखने का अर्थ शीघ्र मृत्यु का संकेत है। स्वप्न में स्वयं को लाल वस्त्रों में लाल शरीर युक्त होकर लाल माला धारण किये हुए, हँसता हुआ किसी स्त्री द्वारा दक्षिण दिशा में ले जाता देखने पर जीने की कोई आशा नहीं रहती। इसी प्रकार स्वयं को घृतलेपित निर्वस्त्र शरीर के साथ बिना अग्नि के कुण्ड में हवन करते देखना इस लोक से विदाई का संकेत होने पर भी उपचार द्वारा स्वस्थ हो जाने का संकेत भी है।

और भी लक्षण हैं– महाप्रस्थान के समय हमारा पंचभौतिक शरीर भी स्वयं ही अनेक संकेत देने लगता है। मरणासन्न व्यक्ति के शरीर पर मक्खी, मच्छर, जूँ, लीख आदि नहीं बैठते। केश और रोम खींचने पर बिना दर्द उखड़ जाने अथवा उसकी अंगुलियाँ चटकाने पर आवाज न निकलने की स्थिति व्यक्ति के गतायु होने के संकेत होते हैं। मरणासन्न व्यक्ति को सुगन्ध में दुर्गन्ध और दुर्गन्ध में सुगन्ध आने लगती है। स्पर्श करने पर ठण्डे को गर्म और गर्म को ठण्डा के साथ, चिकना रूखा और रूखा चिकना लगने लगता है। महर्षि चरक ने उसे मृतक ही माना है। इसी प्रकार सूर्य-चन्द्रमा को कान्तिहीन, सूर्य को प्रभाहीन अथवा निष्कलंक चन्द्रमा देखने वाला व्यक्ति जीवित नहीं रहता। जबकि स्वस्थ आँखों से देखने पर चन्द्रमा में अनेक धब्बे दिखाई देते हैं। बिना पर्व के ही सूर्य या चन्द्र ग्रहण देखने वाला व्यक्ति पूर्ण स्वस्थ होने पर भी शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है। इसी प्रकार अदृश्य वस्तुएँ यथा आकाश, वायु आदि दिखाई देने, किन्तु दृश्य वस्तु यथा घड़ा, टेबिल, पलंग आदि दिखाई न देने वाला यमपुरी की ओर प्रस्थान करने वाला होता है। शब्द न सुन पाने का अर्थ तो निश्चित मृत्यु है ही। अग्नि को नीली, काली, श्वेत या प्रभाहीन देखने वाला भी मृत्यु पथ का राही होता है।

चरक संहिता में अन्तिम समय पता करने के और भी ढेरों तरीके हैं। किन्तु इनमें से बहुत से लक्षणों के सही अर्थ जान पाना किसी कुशल चिकित्सक के लिए ही सम्भव होता है। मसलन लम्बा या छोटा श्वांस आने लगना, दाँत अधिक सफेद या गन्दे हो जाना, नेत्र पलकों के बाल जटाओं की तरह आपस में बंध जाना, अधिक अश्रुप्रवाह होने लगना, नेत्रों का जल्दी-जल्दी खुलना-बन्द होने लगना, उनका हल्दी की तरह पीला, सफेद,

ताम्बई या हरा रंग हो जाने आदि के सटीक परिणाम तो अनुभव से ही समझे जा सकते हैं।

आयु का पूर्व ज्ञान न होने के पक्ष में तर्क दिया जाता है कि मरना कौन चाहता है? वह अचानक आकर जीवन समाप्त कर दे, यही उचित है। मृत्यु का पूर्व ज्ञान हो जाने पर तो व्यक्ति मरने के भय से घुलता रहेगा। उसका सारा सुख-चैन समाप्त हो जायेगा। शेष जीवन नरक तुल्य हो जायेगा। इसलिये मृत्यु का पूर्व ज्ञान न होना ही उचित माना जाता है। किन्तु इसका दूसरा पक्ष भी है। व्यक्ति स्वयं भी जानता है कि मृत्यु उसके सुखी या दुखी होने से प्रभावित नहीं होती। वह तो निश्चित समय पर आकर ही रहती है। मृत्यु भी क्या है? चोला बदलना ही तो है। यह कहा जा सकता है कि यह सब कहने तक तो ठीक है। लेकिन उसे अपने जीवन में उतार पाना असम्भव नहीं, तो आसान भी नहीं होता। अपना तन, धन, पत्नी, पुत्र, पुत्री, बहू, पोते-पोतियाँ, मकान, सम्पत्ति आदि में विस्तारित आसक्ति को कैसे छिन-भिन्न किया जा सकता है। लेकिन करना तो होता ही है।

इसका प्रत्यक्ष लाभ तो यही होता है कि व्यक्ति यथासमय अपने अधूरे कार्यों को पूरा करने में जुट सकता है। धन-सम्पत्ति का समुचित उपयोग या विभाजन कर सकता है। अन्तिम समय में किसी आसक्ति में प्राण अटक जाने का भय तो समाप्त ही हो जाता है। भयभीत होने से कोई लाभ भी तो नहीं होता। पंचभौतिक शरीर को बचाये रखने का सामर्थ्य तो अवतारी पुरुष से लेकर योगी-महात्माओं के पास भी नहीं रहा। फिर सामान्य मानव की तो बात ही क्या? निर्भय होकर अपने अन्तिम समय का स्वागत करने में ही समझदारी है।

❐❐

- डॉ. आनन्द शर्मा, 645, किशोर कुंज,
किशनपोल बाजार, जयपुर-202001
मो. 8387020912

[इस लेख के लेखक डॉ. आनन्द शर्माजी का 8 मई 2025 को 78 वर्ष की अवस्था में निधन हो गया। उपन्यासकार और वरिष्ठ पत्रकार शर्माजी के कई शोध लेख 'वैचारिकी' में प्रकाशित हुए हैं। आपका उपन्यास 'रसकपुर' खूब चर्चित रहा। 'वैचारिकी' की ओर से स्मरणांजलि। परिवार के प्रति हार्दिक संवेदनाएं।
*- **सम्पादक**]*

- *ईश्वर की बही में हमारी करनी ही लिखी जाती है, हमारी पठनी-कथनी नहीं।*
- *चरित्र के बिना ज्ञान बुराई की ताकत बन जाता है, जैसा कि दुनिया के कितने ही 'चालाक चोरों' और 'भले मानुस बदमाशों' के उदाहरण से स्पष्ट है।*
- *सुख-दुःख देने वाली बाहरी चीजों पर आनन्द का आधार नहीं है। आनन्द सुख से भिन्न वस्तु है। मुझे धन मिले और मैं उसमें सुख मानूं– यह मोह है। मैं भिखारी होऊं, खाने का दुःख हो, फिर भी मेरे चोरी या किन्हीं दूसरे प्रलोभनों में न पड़ने में जो बात मौजूद है वह मुझे आनन्द देती है।*

– महात्मा गांधी

महाश्वेता रात्रि में साहित्य-वीणा

डॉ. श्रीराम परिहार

सृष्टि में एकता की अनेकता है। भारतीय विचार दर्शन इसी मूल बात पर आधारित है। एक परम सत्य ही अनेक रूपों में प्रकट है। जब मानसिक सृष्टि और प्रकृत सृष्टि का उत्स एक ही है। तब 'सब समान है', का सिद्धान्त स्वयं सिद्ध हो जाता है। भारतीय दर्शन में समानता का विचार बहुत महत्वपूर्ण इसलिए है कि यह सबको समानता की भूमि पर समरस करता है। इसीलिए सारे मत, संवाद, प्रश्न-उत्तर 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः' के निकट ही स्वयं को रखने का प्रयास करते हैं। भारतीय दर्शन सृष्टि के रहस्यों और दृश्यों को समझकर तथा जानकर उत्पन्न और विकसित हुआ है। दृश्य के भीतर के रहस्य को समझकर विचारों का उद्भव हुआ है। अतः भारतीय विचार-दर्शन की पीठिका का आधार परम सत्य द्वारा रचित सृष्टि है। रचने वाला एक है। जिससे विविध रूप उत्पन्न हुए। उनमें अन्तर्निहित तत्व एक है। सबकी प्राण-शक्ति एक है। उत्पत्ति, स्थिति, लय का नियंत्रक एक है। इस नाना रूप जगत के प्राण-प्राण में वह अमृत-सत्य पैठा हुआ है। सब एक ही सत्य से उत्पन्न हुए हैं। सब सृष्टि की गाड़ी में साथ-साथ बैठे हैं। समानता और समरसता सबके बीच प्राकृतिक रूप से बने सम्बन्धों की हरी दूब पर बैठकर विहँस रही हैं। वह परम सत्य 'रस' ही है। उससे उत्पन्न सभी कण-कण में रस भी प्रवाहित है। समरस होना प्रकृतितः है। स्वाभाविक है। सत्य की इच्छा से है।

प्रकृति के तत्वों में आपस में लड़ाई नहीं होती। पृथ्वी, आकाश, जल, वायु, अग्नि सब अपना-अपना काम करते रहते हैं। इनसे निपजी प्रकृति की सम्पूर्ण वैभव-सम्पदा भी तो शान्त-सरल होकर और रहकर अपना-अपना भाग और दाय जगत को गतिशील बनाये रखने हेतु देती रहती है। वन में छोटे-बड़े, पतले-मोटे सब प्रकार के और अनेक प्रजाति के पेड़ रहते हैं। वे कभी आपस में लड़ते-झगड़ते नहीं हैं। प्रकृति में- नभ में थल में, जल में असंख्य जीव-जन्तु रहते हैं। वे सब अपने-अपने गुण-कर्म अनुसार क्रियाएँ करते हुए जीवित रहते हैं। जनम-मरण, यश-अपयश, लाभ-हानि विधाता के हाथ में है। मनुष्य के हाथ में कर्म है। आलस्य महाशत्रु है। ज्ञान-गुरु है। अध्ययन मित्र है। अध्यवसाय उत्तम मार्ग है। भूमि माता है। आकाश पिता है। जल, अग्नि, वायु देवता हैं। इनका यजन करना और इनके प्रति सम्मान का भाव रखना मानवीय अच्छाई कही जा सकती है। सब तत्व दैव उपहार हैं। सभी जीव परमात्मा के बनाए हुए हैं। हम भी परमात्मा की रचना हैं। तब सभी मनुष्य हमारे बन्धु-भगिनी हैं। सभी जीव हमारे संगी-साथी हैं। भक्त शिरोमणि, तुलसीदास विनती करते हैं– 'सीय राममय सब जग जानी। करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी।'

भारतीय वाङ्मय के उद्गम के मूल स्रोत दो रहे हैं– पहला परम सत्य द्वारा रचित सृष्टि को सूक्ष्माति सूक्ष्म रूप में देखकर, समझकर, जानकर अनुभव समृद्ध होकर वाणी द्वारा प्रस्फुटन।

दूसरा स्वयं प्रतिभा द्वारा आत्मबोध प्राप्त कर अपरा और परा विद्या दोनों को मंत्र की शक्ति से देखकर उसे वाक् द्वारा जगत के सामने रखना। पूर्व जन्म संचित संस्कार, अध्ययन, अभ्यास, कर्म-प्रभाव, मनन, चिन्तन, सब बाद के सोपान हैं। अतः भारतीय वाङ्मय उद्‌गाता ऋषि और कवि के सामने प्रकृति और उसमें स्थित परमाप्रकृति का भद्र स्वरूप और शिव-संकल्प सदैव स्थायी रूप से रहा है। इसलिए वह प्रमाणित करता रहा है- भेद बाहरी है। विविधता रूपगत है। अन्तरतम में एक ही ज्योति का सत् प्रकाशित हो रहा है। रूपगत विविधता की छाया के पार एक अरूप, अनाम, अजर, अमर, अखण्ड सत्य आभासित हो रहा है। सब कुछ एक से अनेक प्रकार होकर नाना रूपों, विविध छवियों, अनेक वर्णों, अनन्त क्रियाओं में यशस्वी हो रहा है। बर्तन न्यारा-न्यारा है, सबमें पानी एक ही है। पानी की समानता और समरसता अखण्ड-अविभाज्य है।

विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद है। ऋग्वेद से लेकर वर्तमान तक भारतीय वाङ्मय की नर्मदा अविराम प्रवहमान है। वैदिक साहित्य और लौकिक साहित्य (वैदिक संस्कृत- लौकिक संस्कृत) वर्तमान साहित्य तक की सम्पूर्ण परम्परा का आदि और अक्षुण्ण स्रोत रहा है। वैदिक साहित्य-संहिता, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक और उपनिषदों के अक्षय भण्डार से समृद्ध है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद चारों भारतीय और विश्वसाहित्य की अनुपम निधि हैं। चारों वेदों के उपवेद भी है। ऋग्वेद का आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गंधर्ववेद और अथर्ववेद का भास्करवेद; ये चारों उपवेद भी वेदों के अंग ही हैं। चारों वेदों के चार महावाक्य हैं– ऋग्वेद का अहं ब्रह्मास्मि। यजुर्वेद– का तत्वमसि। अथर्ववेद का प्रज्ञानंब्रह्म। सामवेद का अयमात्माब्रह्म। 'वेदोऽसिलो धर्ममूलम्' वेद सभी धर्मों के मूल हैं। वेदों से उद्‌भूत धर्म ही वैदिक धर्म है। वेद अपौरुषेय हैं। वेद सनातन तत्वों और सनातन परमप्रकृति आधारित सत्य धर्म का समारम्भ करते हैं- अतः वह सनातन धर्म है। सनातन धर्म की अनेक विशेषताओं में समानता और समसरता भी प्रमुख हैं। ऋग्वेद के सामनस्य सूक्त का आह्वान है– *सङ्गच्छध्वं संवदध्वं, सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथापूर्वे, सञ्जानाना उपासते।। समानी वः आकूतिः, समाना हृदयानि वः। समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।*

(ऋग्वेद 10-191-2-4)।

एक समस्त भरी पुकार है– एक साथ जाओ, एक साथ बोलो, तुम्हारा मन एक हो। जिस प्रकार समस्त देव एकमत होकर यज्ञ भाग स्वीकार करते हैं। तुम्हारा संकल्प समान हो। तुम्हारा हृदय समान हो। तुम्हारा मन समान हो। तुम्हारा साथ सुन्दर हो। महर्षि पाणिनि ने वेद को शरीर का रूपक देते हुए छह वेदांगों को शिक्षा-नासिका, कल्प-हाथ, व्याकरण-मुख, निरुक्त- श्रोत, छन्द-पाद और ज्योतिष-नेत्र माना है। वेदों के दो भाग हैं– ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्ड। उपनिषद् ज्ञानकाण्ड है। वास्तुशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद कर्मकाण्ड हैं। वेदान्त दर्शन में वेदों के चिन्तन को विस्तार और प्रसार दिया गया है। आदि शंकराचार्य का अद्वैत दर्शन, रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत दर्शन, निम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैत दर्शन, मध्वाचार्य का द्वैत दर्शन, वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत दर्शन जीव और शिव की विशेष किन्तु एक और अभिन्न सारूप्य स्थितियों की अपने-अपने चिन्तन-शिखरों की यात्राएँ हैं। वृहदारण्यकोपनिषद में याज्ञवल्क्य कहते हैं– 'एष त आत्मा सर्वान्तरः (3.4.2)। छान्दोग्योपनिषद में आरुणि इसी बात को श्वेतकेतु को समझाते हुए कहता है– 'स आत्मा तत्वमसि' (6.8.7) वह आत्मा है। वही तू है। तुम भी वही हो। इसे और स्पष्ट रूप में भगवान श्रीकृष्ण श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के अठारहवें अध्याय के बीसवें श्लोक में अर्जुन से कहते है– ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। ईशावास्योपनिषद के मंगलाचरण में ब्रह्म के पूर्णत्व की सार्वकालिक, सार्वभौमिक अमृत-व्याख्या है– ॐ *पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।*

ब्रह्मसूत्र, उपनिषद और श्रीमद्‌भागवत गीता की प्रस्थान त्रयी आदि शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धांत की पीठिका है। छांदोग्योपनिषद का सिद्धांत है– 'एकमेव अद्वितीयं ब्रह्म'। आदि शंकराचार्य (सन् 788-820) सहित सभी अद्वैतवादियों-मनीषियों की व्याख्या है– सृष्टि-रचना

के पहले एकमात्र ब्रह्म का ही अस्तित्व (एकं एवं) था। 'अद्वितीयं का अर्थ है– वह अद्वितीय है। वह अपने साथ दूसरी सत्ता नहीं रखता है। एक मात्र वह ही सत्य है। अर्थात् चेतन और अचेतन सत्ताओं वाली सृष्टि अवास्तविक (मिथ्या) है। सर्वोच्च ब्रह्म माया से आच्छन्न है। आत्मा, ब्रह्म का ही दिव्य अंश है। जब आत्मा को पुण्य-प्रभाव से या पूर्व जन्म के संचित कर्मफल से या आध्यात्मिक गुरु के सान्निध्य से अपने मूल स्वरूप का भान होता है, तब आन्तरिक परिवर्तन की दिव्य प्रक्रिया प्रारंभ होती है। आत्मा अपनी मूल प्रकृति 'तत् त्वं असि' (वह तू है) के विषय में परिचित होती जाती है। वह स्वयं को भली-भाँति जानने लग जाती है। तब 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ) का उसे अनुभव होने लगता है। वह अपने वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार करने लग जाती है। वह ब्रह्म समान और फिर ब्रह्ममय हो जाती है। तब यह नाना नाम रूपधारी जगत अवास्तविक (मिथ्या) प्रतीत होता है। अद्वैतवादियों के मतानुसार यही सत्य उपनिषदों का सार है। छंदोग्योपनिषद का 'एकमेव अद्वितीयं ब्रह्म' सिद्धांत इसलिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह ब्रह्म-जगत के अंतिम सत्य की उद्घोषणा करता है।

हिमशिला का सिन्धु-जल में तैरता हुआ एक-चौथाई भाग ही दिखता है। तीन-चौथाई पानी में डूबा रहता है। भूमि की सतह पर हुल्ल से फूटकर बहता हुआ जल-स्रोत भूगर्भ से अनन्त-अदृश्य गहराई नापकर सतह पर आता है। हमारे भारतीय समाज की विविधवर्णी संरचना के वास्तविक अन्तःस्रोत जिस मानुषभाव के निर्झरों से अभिसिंचित हैं उनमें आचमन, मञ्जन, पान, परोपकार की गहरी दृष्टि लेकर ही प्रवेश करना हितकर है। यह समरस समझ सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रों, बादलों, पर्वतों, वृक्षों, नदियों, सरोवरों, सन्तों ने भारतीय समाज को अपने ज्ञान, अपने कर्म, अपने आचरण और अपने जीवन से दी है– *तरवर, सरवर, सन्त जन, चौथा बरसणै मेह। परमारथ के कारणै, चारों धारी देह।।*

भारतवर्ष सन्तों-भक्तों की भूमि है। यह कथन बहुत सार्थक, अर्थव्याप्त और प्रामाणिक है। सन्तों-भक्तों ने जैसा अनुभव किया, वैसा कथन किया और वैसा ही कार्य किया। इसलिए हमें उनमें मन की पवित्रता लगती है। वाणी की सत्यता प्रकट होती है। आचरण की शुद्धता आलोकित होती है। सन्तों-भक्तों ने तीनों स्तरों पर मन-वचन-कर्म की त्रिवेणी प्रकट की और उसकी सृष्टिहित में महत्ता प्रतिपादित की। वे कोरे उपदेशक नहीं हैं। वे केवल शब्द साधक नहीं हैं। वे मात्र उद्यमी भी नहीं हैं। वे जितने सन्त हैं। उतने ही भक्त हैं। उतने ही संस्कृति रक्षक हैं। उतने ही युग-चिन्तक हैं। उतने ही समाज कल्याणक हैं। उतने ही सनातन धर्म के पोषक हैं। आत्मा-परमात्मा, धर्म, दर्शन, अध्यात्म के शिखरों की चिन्तन और अनुभव यात्रा में भी मनुष्य जीवन का मोल और मानुषभाव की स्थापना का ज्योति-बिन्दु उनके आज्ञाचक्र में ज्योतित होता रहा है। इस आलोकवलय में से ही वेदान्त के अद्वैत दर्शन से एक रश्मि-रेख विशिष्टाद्वैत की प्रकीर्णित होती है। भगवद्पाद यामुनाचार्य के पटु शिष्य रामानुजाचार्य सन् 1017-1137 ने अनुभव किया कि सांसारिक जीवों और गृहस्थ जीवन जीने वाले मनुष्यों की मुक्ति अद्वैत के महाकठिन पंथ से नहीं हो सकती। साधारण जन के लिए तो ब्रह्म का सगुण स्वरूप ही उद्धारक हो सकता है। सगुण भक्ति की सहजता साधारण के लिए सध सकती है।

इसी चिन्तन पीठिका पर उन्होंने छांदोग्योपनिषद के सिद्धांत 'एकमेव अद्वितीयं ब्रह्म' की वास्तविक व्याख्या की– 'अद्वितीयं' का तात्पर्य है– जिसके समान कोई दूसरा नहीं है। समानता या तुलना के लिए कोई अन्य का होना आवश्यक है। अद्वितीय का अर्थ अन्य के न होने से नहीं है। बल्कि अन्य ब्रह्म के समान न था, न है, न होगा। रामानुजाचार्य और अद्वैत वेदान्ती यज्ञमूर्ति के मध्य इस बात पर सत्रह दिनों तक शास्त्रार्थ चला। उपर्युक्त व्याख्या से यज्ञमूर्ति ने अन्तःतोष का अनुभव किया। रामानुजाचार्य से पराजय स्वीकार कर शिष्य बन गये। वह ब्रह्म अद्वितीय है। एक है। विशेष स्थितियों में वह दो हो जाता है। यह विशेष स्थिति रचना के क्षणों की है। रचना-सृष्टि की, जीव की, जगत की, माया की है। 'ईश्वर अंश जीव अविनासी' यह सारी रचना उसी ब्रह्म की है। इसलिए यह रचना मिथ्या नहीं है। क्योंकि ईश्वर सत्य है। एक है। परन्तु अद्वितीय है। उसकी इस

रचना में उसके समान दूसरा नहीं है। उसकी रचना में सब समान हैं। सब विशिष्ट हैं। सब ईश्वर की रचना हैं। सब आत्मा सो परमात्मा हैं। वह अद्वितीय विशिष्ट बनकर सगुण रूप में असंख्य-असंख्य छवियां धारण करता है। वह सबमें समान रूप से बैठा है। वह सबमें समरस है।

वेद-वेदान्त के अद्वैत सिद्धान्त को रामानुजाचार्य ने व्यावहारिक स्तर पर उतारने का संकल्प किया। उसमें वे सफल हुए। उनके पास एक समृद्ध परम्परा-बोध था। वेद, शास्त्र, उपनिषद, पुराण, संस्कृत महाकाव्य, बौद्धमत, जैनमत, नाथमत, सिद्धमत, शांकरभाष्य, लोकमत, लोकविश्ववास, लोक अभिप्राय की अनटूटी अक्षुण्ण परम्परा थी। रूढ़ियों और भटकाव के आड़े-टेढ़े रास्तों पर चलते हुए समाज का अवांछनीय परिदृश्य था। विभेद की खाई थी। असमानता के पहाड़ थे। द्वैत की नदियाँ थीं। बीमार प्रतिस्पर्धा के अनेक टीले थे। समाज की समतल भूमि खुरदरी और उबड़-खाबड़ थी। विशिष्टाद्वैत के विचार-दर्शन से देश-काल की व्यवस्था को समरस और समान बनाने की बड़ी चुनौती रामानुजाचार्य के सामने थी। उन्होंने अपने दर्शन को समाज-सुधार की दिशा में व्यावहारिक बनाया। वे जितने महान सिद्धांत प्रतिपादक हैं, उतने ही बड़े समाज उद्धारक भी हैं। भोले, निर्दोष, निरक्षर, अपढ़, दीन-हीन, असहाय, निरुपाय जन के प्रति उनकी गहरी संवेदना थी। सुनने में आता है रामानुजाचार्य के संगी-साथियों और अनुयायियों में सात सौ गेरुआ वस्त्रधारी सन्यासी, बारह हजार एक वस्त्रधारी एकांगी, ब्रह्मचारी सेवक, तीन सौ स्त्रियाँ, अन्य समुदायों- सताङ मुदाली, नहाटू मुदाली, कोड्गिल मुदाली, स्थानात और अन्य समाजों से सम्बन्धित अनेक अब्राह्मण थे। वे सभी श्रीवैष्णव मुदाली के रूप में जाने जाते थे। जितना विशिष्ट कार्य उन्होंने धर्म संस्थापन के लिए, उतना ही आवश्यक कार्य उन्होंने दमितों-अस्पृश्यों के लिए किया। ईश्वर की दृष्टि में कोई उँचा या नीचा नहीं है। उनके आश्रम में उन्होंने सभी जातियों, पंथों, मतों के लोगों को सुगम मार्ग बताया। सगुण उपासना का मार्ग प्रशस्त किया। ईश्वर-जीव में स्वामी-सेवक के सम्बन्ध निरूपित किये। दास्यभाव की भक्ति का प्रवर्तन किया।

सगुणोपासना का एक अभिन्न भाग है- मंदिर में जाकर पूजा-अर्चना। रामानुजाचार्य ने मंदिरों की प्रचलित पूजा पद्धति को स्वीकार करते हुए उन्हें नया रूप दिया। अनावश्यक कर्मकाण्ड की जगह सहज भाव से समर्पण भक्ति को महत्ता प्रदान कीं। अपने समय में उन्होंने धर्म की नयी व्याख्या करते हुए आत्मा के विस्तार को समान और समरस स्तर पर सब तक, सब में बाँटकर जीवन को पर उपकार में अर्पित कर देना मुक्ति का धर्म निरूपित किया। दमित, उत्पीड़ित, अस्पृश्यों के लिए पूजा पद्धति का विस्तार कर उनके लिए मंदिरों में प्रवेश का अपूर्व-अद्वितीय, साहसिक कार्य किया। सभी को ईश्वर पूजा करने, ईश्वर को जानने, ईश्वर को पाने और जीवन मुक्त होने का अधिकार है। इतना ही नहीं अन्त्यज लोगों को उन्होंने 'थिरु कुलातार' सम्बोधन दिया, जिसका अर्थ तमिल भाषा में 'दिव्य माता लक्ष्मी के परिवार का सदस्य' होता है। रामानुजाचार्य ने कर्नाटक के मेलकोटे के भगवान तिरुनारायण के मंदिर में अछूतों का प्रवेश कराया। सारे आलवार संत दमित, शोषित, पीड़ित, वंचित वर्ग के थे। उन आलवार सन्तों के तमिल भाषा में रचित स्तुतिगान को वैष्णव पूजा पद्धति और मंदिर-पूजा पद्धति में स्थान दिलाया। यह स्तुति गान आज भी होता हैं। रामानुजाचार्य ने तिरुक्कोट्टियूर नाम्बी से उन्होंने अष्टाक्षरी मन्त्र 'उँ नमो नारायणाय' का गूढार्थ समझा। तिरुक्कोट्टियूर नाम्बी ने इस मन्त्र को अन्य जन या शिष्य को बताने से मना करने के बाद भी रामानुजाचार्य ने मंदिर के शिखर पर चढ़कर जनसामान्य को बताया और अपने साथ सबकी मुक्ति की कामना की। रामानुजाचार्य ने जो आध्यात्मिक और धार्मिक कायाकल्प हेतु समाज उद्धार की दिशा में कार्य किये, वे संत साहित्य के 'गुरु परमपारस', 'प्रपन्नमित्र' और 'दिव्यसूरिकारिका' में लिपिबद्ध हैं।

हमारे ऋषियों-मुनियों ने संसार को देखकर और जीवन को समझकर एक ध्रुव सत्य उद्‌घोषित किया– जीवन क्षणभंगुर है। एक दिन जीवन का अन्त होना ही है। परन्तु स्थितियाँ भिन्न ही दीखती हैं। एक दिन मरना सबको है। मरना कोई नहीं चाहता। भोजन सबको चाहिए। खेती कोई नहीं करना चाहता। दूध सबको

चाहिए। गाय-भैंस कोई नहीं पालना चाहता। छाया और प्राण-वायु सबको चाहिए। वृक्ष कोई नहीं लगाना चाहता। पानी सबको चाहिए। पानी कोई नहीं बचाना चाहता। पुराने जल-स्रोतों और नदियों के उद्‌गमों को पुनर्जीवित और सजल कोई नहीं करना चाहता। समाज में समता और समरसता सब चाहते हैं। समाज-जीवन में व्यावहारिक रूप से इसे लागू करने का जमीनी स्तर पर सद्‌प्रयास कोई नहीं करना चाहता। पर यह पावन और उजासमय कार्य हमारी संस्कृति-परम्परा में सन्तों ने किया। आचार्यों ने आलोक फैलाया। सृष्टि धर्म के साथ-साथ मानव-धर्म की चिन्तामणि को धरती की हरित हथेली पर रखा। उसके आलोक में सब (मनुष्य सहित अन्य प्राणी मात्र) अपना निज स्वरूप को ठीक-ठीक अवलोक सकें। धर्म की सही सरणियाँ बनायीं। उसके दस लक्षणों के अर्थ दीप जलाए– *धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।*

रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में मध्वाचार्य, बोपदेवाचार्य, देवाधिप, परुषोत्तम, गंगाधर, रामेश्वर, द्वारानन्द, देवानन्द, श्रीआनन्द, नरहर्यानन्द, राघवानन्द और रामानन्द आते हैं। इसका संकेत स्वामी रामानन्द के ग्रन्थ 'रामार्चनपद्धति' (श्लोक 3,4,5) में दिया है। स्वामी रामानन्द (सन् 1299-1410) स्वामी राघवानन्द के शिष्य थे। राघवानन्द दक्षिण भारत से भक्तिकी रसधार को अपने हृदय कमण्डल में भरकर लाये थे। उनसे दीक्षित होकर स्वामी रामानन्द ने 'रामावत सम्प्रदाय' का अभूतपूर्व प्रचार कर उसका प्रसार किया। रामानुजाचार्य द्वारा विशिष्टाद्वैत आधारित सगुण भक्ति परम्परा में रामभक्ति को जनमानस के हृदयांगण में कलश-मण्डित किया। उनकी बारह शिष्यों की परम्परा जग-जाहिर है। इन शिष्यों की भक्ति में निर्गुण-सगुण का मणिकाञ्चन योग है। स्वामी रामानन्द का व्यावहारिक प्रयास रहा कि उन्होंने भक्ति की निर्गुण-सगुण परम्परा में रामभक्तिको समाज में समानता और समरसता स्थापित करने का सहज, सजल, तरल, सरल आधार बनाया। उनके शिष्यों में अनन्तानन्द, पीपा, धन्ना, सुरसुरानन्द, सुखानन्द, कबीरदास, रैदास, भावानन्द, सेन, पद्मावती और सुरसुरी जगत प्रसिद्ध हैं। इन शिष्यों में सगुणोपासक-निर्गुणोपासक दोनों हैं। कबीर, रैदास, धन्ना, सेन आदि निर्गुणापासक हैं। अनन्तानन्द के शिष्य नरहर्यानन्द और उनके शिष्य गोस्वामी तुलसीदास हैं। तुलसीदास ने रामभक्तिकी अक्षय-अविरल नर्मदा प्रवाहित की। आज जो सनातन धर्म और हिन्दू संस्कृति का उदात्त रूप हमारे पास है, उसमें स्वामी रामानन्द का बहुत भद्र दाय है।

भागीरथी का शाश्वत प्रवाह है। पंचगंगा घाट हैं। शुभ्र कुटीर है। भद्र सन्यासी बैठा है। वह तपःपूत है। वह तपःसिद्ध है। वह ज्ञानमण्डित है। वह भक्ति द्रवित है। प्रातःकाल की वेला है। अरुणोदय होने वाला है। प्राची के आंगन में उषा का प्रवेश हो रहा है। संन्यासी का मुख-मण्डल तपःज्योति से दिपदिप है। तन पर गैरिक वसन हैं। मानो अरुणोदय की रश्मियों का रंग संन्यासी के वस्त्रों में आकर समा गया हो। जैसे गंगा ब्रह्मलोक से आकर शिवजी की जटा में समा गयी हो। कमण्डल है। कमण्डल में गंगा है। एक गंगा धरती पर अखण्ड-अजस्र-अनवरत-अविराम-अपरिमित बह रही है। वही गंगा संन्यासी के कमण्डल में ससीम-साकार होकर शान्त-मौन है। दोनों गंगा हैं। एक शाश्वत-निराकार अनन्त-अनन्त रूप में है। दूसरी कमण्डल में सीमित है। दोनों के मूल गुण-धर्म एक हैं। दोनों एक तत्व हैं। दो रूप हैं। यही ब्रह्म और जीव की स्थिति हैं। जल, जल है। ब्रह्म और जीव का मूल स्वरूप एक है। एक जल बाहर है। एक जल भीतर है। भेद नाम और रूप का है। कमण्डल का जल सुरसरि में मिलकर गंगा हो जाता हे। जीव ब्रह्म से मिलकर ब्रह्म हो जाता है। दोनों में अन्तः समानता है। दोनों में तरल समरसता है। जल मुक्ति चाहता है। जीवन भी मुक्ति चाहता है। जीवन की रक्षार्थ दण्ड है। यह संयमित करता है। संन्यासी के भीतर करोड़ों सूर्य उदित होते हैं। अखण्ड-अनन्त तेज प्रकाश में सन्यासी का ललाट मणि-सा दमक उठता है। समान प्रवृत्ति, समान हृदय, समान मन, परस्पर समान रहने का शिव-संकल्प अधरों से स्फुरित होने लगता है। भक्ति का अनुपम सुमन भारतवर्ष की अमृत नदी गंगा के तट की सिद्ध कुटिया के आँगन में महमह सुवासित हो जाता है। भारतजन वन्दना में गाने लगता है– *भक्ति द्राविड़*

उपजी, लाये रामानन्द। प्रकट किया कबीर ने, सप्तदीप नौ खण्ड।।

उत्साह प्रयास का जनक है। उसकी अँगुली पकड़कर ही गन्तव्य तक पहुँचा जा सकता है। भारतीय साहित्य के भक्ति काल का शब्द-शब्द सांस्कृतिक जागरण का निर्मल सन्देश देता है। भारतीय भाषाओं के सभी सन्तों ने संस्कृति की धरती पर शब्दों के बीज बोये। भक्ति की फसल उगायी। मुक्ति का अन्न जीवन की आतुर-क्षुधा तृप्ति हेतु जन-जन को दे दिया। अन्न से क्षुधा शान्त होती है। भक्ति से ही मुक्ति प्राप्त होती है। श्रीमद्भागवत में भक्ति के नौ स्वरूप निर्देशित किये हैं। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवा, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन। इनमें से किसी एक को भी पतवार रूप में थाम लेने से जीवन-नैया पार लग सकती है। रामानुजाचार्य से स्वामी रामानन्द तक आती हुई भक्ति रसधारा में विशिष्टाद्वैत और उसमें भी दास्यभाव प्रमुख है। अपने समय के मतों-पंथों सम्प्रदायों के विवादों के मध्य से रामानुजाचार्य ने सब से सामञ्जस्य स्थापित करते हुए विष्णु को परमब्रह्म रूप में आराध्य माना और उनकी शिष्य परम्परा में रामानन्द ने श्रीरामचन्द्र का विष्णु के अवतार रूप में वन्दन किया। उनके और भक्त के मध्य स्वामी-सेवक के सम्बन्ध निरूपित कर दास्य-भाव की भक्तिकी नीलनभ में धवल रेखा उकेरी। स्वामी रामानन्द ने 'रामावत' के माध्यम से श्रीराम के चरित्र को ऐसी सांस्कृतिक व्यापकता और गूढ़ता प्रदान की, जिससे तत्कालीन भारतीय समाज के सारे ऊंचे-नीचे, छोटे-बड़े, धनी-गरीब, नागर-ग्राम्य, स्पृश्य-अस्पृश्य, सगुण-निर्गुण, शैव-शाक्त, वैष्णव-अवैष्णव, देव-दनुज सब समरसभक्ति और हृदय की पावनता की राह पर चल पड़े। स्वामी रामानन्द के शिष्य कबीर के निर्गुण ब्रह्म भी 'राम' हैं। नरहर्यानन्द के शिष्य तुलसीदास के सगुण ब्रह्म भी 'राम' हैं। यह विभेद नहीं है। भक्ति के पावन उच्च शिखर पर निर्गुण-सगुण के समरस होने का चिद् बिन्दु है। 'समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेष्वरम्' (श्रीमद्भागवत् 13-27)। कबीर इसी भावभूमि पर विह्वलता अनुभव करते हैं– *'राम बुलावा भेजियो, दिया कबीरा रोय'।* तुलसीदास की अद्भुत वाणी फूटती है- *'ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता, व्यापक अजित अनादि अनन्ता।'*

स्वामी रामानन्द का चिन्तन-प्रवाह उनके शिष्यों और प्रशिष्यों में अनुभव का नया समरस बनता चला जाता है। विष्णु के दो अद्भुत अवतार– श्रीराम-श्रीकृष्ण भक्ति के केन्द्र और भक्तों के आराध्य बन जाते हैं। निर्गुणियों ने भी कहीं 'राम', कहीं 'गोविन्द', कहीं 'गोपाल' जपकर-भजकर ही अपना माधुर्य निवेदन किया है। तुलसीदास की दास्य भक्ति और सूरदास-रसखान-रहीम की सख्यभक्ति की रेवा में समाज के सब जन नहा-नहाकर निखर उठते है। स्वामी रामानन्द की सीख, प्रेरणा और सूझ से श्रीराम और श्रीकृष्ण के चरित्रों का दिगन्तव्यापी विस्तार हुआ। धर्म और संस्कृति की रक्षार्थ श्रीराम के पास धनुषबाण है। श्रीकृष्ण के हाथ सुदर्शनचक्र है। उनके बाद के सन्तों-भक्तों ने अपने साहित्य में श्रीराम श्रीकृष्ण का ऐसा लोकमर्यादित, लोकहितकारी, लोकसमन्वयकारी, लोकसमानताकारी, लोक समरसकारी, लोकअपनत्वकारी, लोकउद्धारक, लोकरंजक, लोकानुकरणीय स्वरूप वर्णित किया जिससे जातिगत, वर्णगत, पंथगत, सम्प्रदायगत, धर्मगत, संकुचित भेद मिट गये। एक संस्कृति, एक समाज, एक सांस्कृतिक राष्ट्र का सर्वथा नवीन समरस- सिन्धु लहराने लगा। गीध, गुह, निषाद, शबरी, सुरसा, लंकिनी, ताड़का, मारीच, सुग्रीव, अंगद, आंजनेय, नर-वानर, नगरवासी, ग्रामवासी, बाँसवन, वृदावन, मधुवन, निधिवन, यमुना, वंशीवट, गोप, धेनु , बच्छ सभी समरस -एकरस हो गये। रामरूप-कृष्णमय हो गये। गगन घटा गहराती है। गगन-मण्डल में अनहद गर्जना होती है। मेह की बदरिया बरसती है। वनराई हरी-भरी हो जाती है। स्वामी रामानन्द की अमृतवाणी झरती है– *जति-पाँति पूछे नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई।।*

विशिष्टाद्वैत शब्द-शब्द में से निकलकर समाज और संस्कृति के पन्नों पर काव्य में मुखर हो जाता है। स्वामी रामानन्द का समाज -सुधार के क्षेत्र में साहित्य के माध्यम से किया गया यह अनुष्ठान सगुण-निर्गुण पंथ के सन्त- भक्त कवियों के साथ-साथ लोककाव्य की वाणी में भी चमक पैदा करता है। परिणाम में

भेदभाव के किले को भेदने के चौतरफा प्रयास होते हैं। कबीर रैदास जैसे संतों ने सामूहिक भोजन बनाने और एकसाथ बैठकर पंगत में जीमने का व्यावहारिक काम किया। कबीर ने कहा– *मोहिं रामानन्द चेतायौ। उस चेतना का आधार लेकर कबीर ने घोषणा की 'हम वासी उस देस के, जहाँ जाति, वरण, कुल नाँहि'*। रैदास ने जाति-वर्ण की निस्सारता सिद्ध की -'जात-जात में जात है, ज्यों केलन में पात।' कबीर कपड़ा बुनते थे। रैदास जूता गांठते थे। पीपा कपड़ा सिलते थे। सेन बाल काटते थे। धन्ना तूम्बा की खेती करते थे। ये सन्त ज्ञान, भक्ति, कर्म की त्रिवेणी थे। सुरसुरि और पद्मावती दो शिष्याएँ स्वामी रामानन्द की प्रेरणा लेकर उस देशकाल में नारी जाति के जागरण और रुढ़ियों से मुक्तिका अलख जगाती हैं। भक्तिकाल में सुरसुरि, पद्मावती, गरीबाबाई, मीराँबाई, सहजोबाई, दयाबाई, बाबरी साहिबा और ताज बीवी जैसी भक्त कवयित्रियां स्त्री स्वतंत्रता का सूत्रपात करती हैं। परिणामतः स्त्री जाति की स्वतंत्रता, स्वाभिमान और गौरव के नये अध्याय लिखने का श्रीगणेश होता है। ताज बीवी कृष्ण भक्ति में स्नानकर, मगन होकर खुल्लम-खुल्ला घोषणा करती है–

सुनो दिलजानी, मेरे दिल की कहानी,
तुम दस्त की बिकानी, बदनामी भी सहूँगी मैं।
देव पूजा ठानी, मैं निमाज हूँ भुलानी।
तजे कलमा कुरान, साडे गुनन गहूँगी मैं,
साँवला -सलोना सिरताज सिर कुल्ले दिए,
तेरे नेह दाग में निदाघ ही रहूँगी मैं।
नन्द के कुमार, कुरबान तेरी सूरत पै,
हूँ तो मुगलानी, हिन्दूआनी ह्वै रहूँगी मैं।।

भक्ति के माध्यम से नारी-स्वाभिमान और नारी-स्वतंत्रता तथा जातिभेद समाप्ति का साहसिक कर्म मराठी साहित्य में भक्ति कान्होपात्रा से लेकर बहिणाबाई चौधरी करती रही हैं। सन्त ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, समर्थ रामदास जैसे सन्तों-भक्तों ने अपनी वाणी और कर्म दोनों से समाज में समता-समरसता स्थापित करने का अविस्मरणीय कार्य किया। इन्होंने धर्म सत्ता को बचाने का प्रण और व्रत लेकर भक्तियोग और कर्मयोग के सुमेल से समदृष्टि और समरस समाज बनाने का अभूतपूर्व प्रयास किया है। सन्त तुकड़ोजी ने समाजोत्थान में ही राष्ट्रोत्थान के सूत्र प्रकट किये। सन्त गाडगे महाराज धर्म और देवपूजा को नये सन्दर्भ देते हुए कहते हैं– भूखे को अन्न, प्यासे को पानी, नंगे को वस्त्र, गरीब बच्चों को शिक्षा, बेघर को आसरा, रोगी को उपचार, बेकार को रोजगार, गरीब युवक-युवती का विवाह, दुःखी व निराश को हिम्मत और पशु-पक्षी की रक्षा करना ही खरी भक्ति और देवपूजा है– *हाच आजचा रोकड़ा धर्म आहे। हीच खरी भक्ति व देवपूजा आहे।।*

विस्मित कर देने वाला सत्य यह है कि भक्ति के नभ मण्डल में प्रेम रस के नक्षत्र-आकाश-गंगाएं सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं के क्षितिजों तक उदित-प्रसारित-जगमगाती दृष्टिगत होती हैं। वर्तमान में भी यह नक्षत्र-आलोक कम नहीं हुआ है। पथ लम्बा है। दुर्गम है। यात्रा भी निरंतर है। सद्भाव भरी है। चैतन्य महाप्रभु की मृदंग की थाप, मंजीरों की झनकार अभी-भी सुनाई देती है। 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारि, हे नाथ-नारायण वासुदेवा' के धर्म-अर्थ हृदय को अभी भी झंकृत करते हैं। सन्त मुरारी बापू, सन्त रामदेव बाबा, सन्त अवधेशानन्द गिरि जैसे भक्त प्रवर सनातन धर्म के रेशमी तारों से सम्पूर्ण भारतीय समाज में समरसता और समानता की गांठे लगा रहे हैं। स्वामी सत्यमित्रानन्द गिरि स्वामी रामानन्द की भक्ति की समरस परम्परा के अनमोल मोती हैं। साहित्य की साधना निरंतर है। भक्ति की धारा निर्मल है। समाज और राष्ट्र में समानता और समरसता के सद्प्रयास भी अविरल-अविराम हैं। अनादिकाल से भारतवर्ष की मातृवत्सला भूमि पर महाश्वेता रात्रि में साहित्य की वीणा बज रही है। एक पवन, एक ही पाणी, एक ज्योति संसारा। एक ही माटी घड़े सब भांडे, एक ही सिरजनहारा।।

❐❐

आजाद नगर
खण्डवा-450001
मो. 9425342748

गीता की प्रासंगिकता

गीता भारतीय धर्म, साहित्य और संस्कृति का एक अनुपम, अनूठा और अमूल्य ग्रंथ है। यह एक साथ धर्म शाख, ज्ञान शास्त्र, कर्मशास्त्र, योग शास्त्र और अध्यात्म शास्त्र है। अर्थात इस ग्रंथ का सीधा संबंध ज्ञान-योग, कर्म-योग एवं भक्ति योग से है। इस विश्व प्रसिद्ध पवित्र ग्रंथ में हम एक साथ धर्म, दर्शन, अध्यात्म, मानव प्रबंधन, मानव व्यवहार और आत्मबोध की भरपूर सामाग्री पाते हैं। गीता मानव समाज को जीवन जीने की कला से अवगत कराती है। यह ग्रंथ मानव समाज को जीवन जीने की एक ऐसी तकनीक और कर्म विधान को दिशा, दशा और कौशल प्रदान करती है जिससे मानव जीवन की जटिलतम गुत्थियों को सहजता पूर्वक सुलझाया जा सकता है। कहना न होगा कि गीता भारतीय चिंतन का एक ऐसा अनुपम भण्डार है जो अनेक शताब्दियों से मानव समाज को अक्षय ज्ञान देता रहा है। इसका अनुकरण, अनुशरण और अनुशीलन हर युग में प्रासंगिक रहा है और आज भी इसकी प्रासंगिकता बनी हुई है। आज पूरा विश्व समाज और परिवेश नाना प्रकार की विसंगतियों, विषमताओं, प्रतिशोधों, अहंकारी प्रवृतियों और बाजारवादी संस्कृतियों के शिखर पर आसीन हो चुका है। वैश्वीकरण हम पर हावी हो चुका है। लोग अपनी-अपनी रीति-रिवाज, संस्कृतियों और परम्पराओं को भूलकर एक ऐसी संस्कृति का शिकार हो रहे हैं जहां मानव मूल्यों का पतन हो रहा है। ऐसा केवल भारतवर्ष में ही नहीं हो रहा है, बल्कि विश्व स्तर पर इसका व्यापक प्रचार प्रसार हो रहा है। पूरा विश्व युद्ध की विनाशकारी प्रवृतियों को ललकार रहा है। यह युद्ध मानव समाज की रक्षा के लिए नहीं, बल्कि बाजारवादी, पूंजीवादी और साम्राज्यवादी शक्तियों के विस्तार के लिए किया जा रहा है। 'महाभारत' का युद्ध आसुरी शक्तियों के विनाश के लिए किया गया था, परंतु आज जो युद्ध हो रहा है, वह आसुरी, अत्याचारी और मिथ्याचारी शक्तियों के विस्तार के लिए किया जा रहा है। दुनिया का कोई भी धर्म या धर्म ग्रंथ इस प्रकार के तंत्रों को बढ़ावा देने की बात नहीं करता है। लेकिन आज अपने स्वार्थ एवं अहंवादी प्रवृतियों के शिकार मनुष्य विनाशकरी शक्तियों के विस्तार के लिए धर्म और धर्म-ग्रन्थों का दुरुपयोग कर रहा है और धर्म के नाम पर खूनी लड़ाइयां लड़ रहा है। गीता में धर्म और कर्म की जो परिभाषा है, वह परिभाषा आज बदल गयी है। आज धर्म और कर्म को भोगवादी संस्कृति से जोड़कर देखा जा रहा है और इसी का कुपरिणाम है कि हम भोगवादी संस्कृति के मकड़ जाल में फँस कर राग-द्वेष, घृणा, काम, क्रोध और लिप्सा में वशीभूत होकर अहंकारी जीवन जीने को विवश हैं। कर्तव्यबोध, नैतिकता और सदाचार हमारे जीवन से मानो गायब हो गया है। इस विकट परिस्थिति में गीता ही विश्व समाज के लिए उपयोगी और अनुकरणीय हो सकता है।

वर्तमान समय में 'धर्म' शब्द का अर्थ बदल गया है। परिस्थिति कुछ इस तरह बदल गई है कि 'धर्म' को विनाशकारी रूप में देखा जा रहा है। अर्थात धर्म के अर्थ को आज सांप्रदायिक शक्तियों के साथ जोड़कर देखा जा रहा है।

शांतिनिकेतन में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी से एक अहम सवाल किया था कि भीष्म पितामह श्रीकृष्ण से अधिक ज्ञानी, वृद्ध, दृढ़प्रतिज्ञ और निष्ठावान थे, बावजूद इसके श्रीकृष्ण ही महान क्यों कहलाए? बहुत सोच-विचार के पश्चात द्विवेदी जी ने उत्तर देते हुए कहा था कि भीष्म पितामह ज्ञानी और निष्ठावान होते हुए भी रूढ़िवादी थे और उनकी प्रतिज्ञा से संसार का कोई हित नहीं हुआ। इतना ही नहीं, वे अधर्मवादी शक्तियों के पक्ष में युद्ध किए। दूसरी तरफ श्रीकृष्ण ने लोकहित को सर्वोपरि माना। उनमें लोकचेतना निहित थी और वे धर्मवादी थे। आज पूरे विश्व में जो क्रूर और विध्वंशकारी शक्तियां सिर उठा रही हैं, इसके पीछे धर्म के नाम पर धर्मवादी शक्तियां ही कार्यरत हैं। हम स्वार्थ में अंधे होते जा रहे हैं। मर्यादा, लोकहित, लोकचेतना आदि निष्क्रिय हो चुके हैं। प्रेम का स्थान घृणा, सत्य का स्थान असत्य, अहिंसा का स्थान हिंसा और सृजन का स्थान विनाश ले चुका है। लोग प्रेम की बात नहीं करते हैं, मार-काट की बात करते हैं। इस कठिन परिस्थिति में गीता का संदेश ही अनुकरणीय हो सकता है।

पूरा विश्व युद्ध के कगार पर खड़ा है। दो विश्व युद्ध हो चुके हैं। तीसरे की तैयारी हो रही है। पिछले दो विश्व युद्धों के भयानक परिणामों को भी हम देख चुके हैं। इससे मानवता का विनाश ही हुआ है। शक्तिपरीक्षण के नाम पर प्रतिहिंसावादी शक्तियां प्रकृति के सारे सृजनों को विनष्ट कर दिया। हवाएं तक सांस लेना छोड़ दिया। पेड़-पौधों की हरियाली समाप्त हो गई। जीव-जन्तु, पशु-पक्षी एवं प्रकृति के अन्य उपादान पत्थर की भांति प्राणहीन हो गए। बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष आदि सभी अपंग, अंधे, बहरे और गूंगे हो गए। उनकी आवाजें एवं स्मरण शक्तियां चली गई। हिरोशिमा और नागाशाकी की अस्पतालें आज भी इन मरीजों से भरा पड़ा है। प्रश्न यह है कि क्या इन्हीं परिणामों के लिए इतने बड़े और भयानक महा-युद्ध लड़े गए थे? आखिर विश्व समाज क्या चाहता है– सृजन या विनाश? इन भयानक परिणामों के भावजूद आज तीसरे महायुद्ध की तैयारी हो रही है जो किसी भी दृष्टिकोण से मानवता के पक्ष में नहीं है। गीता में युद्ध के महत्व को स्थापित करने का प्रयास किया गया है, लेकिन इसका अर्थ आज के युद्धों के अर्थ से बिलकुल भिन्न है। युद्ध तो मानवता और उनके अधिकारों की रक्षा के लिए किया जाता है न कि विनाश के लिए। महाभारत का युद्ध मानव अधिकारों और जीवन-मूल्यों की रक्षा के लिए किया गया था। महाभारत का युद्ध हिंसा के विरुद्ध अहिंसा का युद्ध था, असत्य के विरुद्ध सत्य का युद्ध था, पाप के विरुद्ध पुण्य का युद्ध था, दुराचार के विरुद्ध सदाचार का युद्ध था और घृणा के विरुद्ध प्रेम का युद्ध था। यही कारण है कि महाभारत का युद्ध 'धर्म-युद्ध' कहलाया। गीता के द्वितीय अध्याय के श्लोक 31 और 32 में भली-भाँति इसकी व्याख्या की गई है। परंतु आज जो युद्ध हो रहे हैं, मानवता के विरुद्ध युद्ध हैं। इस युद्ध से तो आतंकी और साम्राज्यवादी शक्तियां पनप रही हैं और फूल-फल रहे हैं। यह हमारे देश और समाज के लिए चिंता का विषय है। आज इन्हीं शक्तियों के विरुद्ध लड़ने और एकजुट होने की जरूरत है।

गीता ज्ञान का अथाह सागर है। गीता द्वारा मानसिक रोगों की चिकित्सा भी की जाती है। तो गीता क्या दवाई है? नहीं, गीता दवाई नहीं है, पर गीता के उपदेश से मन के विकार एवं अन्य व्याधियां अवश्य ही दूर हो जाता है जो दवाई से भी बड़ा काम कर जाता है। आज मानव समाज नाना प्रकार के उलझनों, चिंताओं, तनावों, कुंठाओं, रोगों और मानसिक व्यभिचारों से ग्रस्त और त्रस्त हैं। वे रास्ते से भटक गए हैं। बढ़ती भौतिक सुख-सुविधाएं और साधनों से मनुष्य में मानसिक रोगों की वृद्धि हो रही है। हमारी बढ़ती हुई महत्वाकांक्षाएं और असंतोष की प्रवृति भी मानसिक रोगों का कारण है। यही कारण है कि हम अकारण ही नाना प्रकार की व्याधियों के शिकार हैं। गीता में कहे गए उपदेशों के अनुसार यदि हम आचरण करें तो हमारे मन के सारे

विकार, व्याधियों एवं शारीरिक कष्टों से हम मुक्त हो सकते हैं। गीता के तृतीय अध्याय के श्लोक संख्या-9 की एक पंक्ति देखिये– 'तदर्थ कर्म कौन्तेय मुक्तसंग : समाचर' अर्थात श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं– 'हे कुंतीपुत्र! तुम आसक्ति छोड़कर ईश्वर के लिए कर्म करो'। दर असल आसक्ति हमारे मन को जकड़ लेता है और हम रास्ते से भटक जाते हैं। परिणाम स्वरूप हम नाना प्रकार की मानसिक व्याधियों के शिकार हो जाते हैं। फलतः हम कर्म से भी विमुख और वंचित होने लगते हैं। यही कारण है कि श्रीकृष्ण अर्जुन को अनासक्त होकर कर्म करने के लिए कहते हैं। द्वितीय अध्याय के श्लोक संख्या-48 में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं– 'योगस्थ : कुरु कर्मणि' अर्थात हे अर्जुन! योग में स्थिर होकर अनासक्त भाव से कर्म करो। इसी प्रकार द्वितीय अध्याय के ही श्लोक संख्या-45 में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं– 'निर्योगक्षेम आत्मवान' अर्थात हे अर्जुन! योगक्षेम की चिंता छोड़कर आत्मसंतुष्ट हो जाओ। गीता के ही तृतीय अध्याय के श्लोक संख्या-30 में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं– 'युध्यस्व विगतज्वर :' अर्थात हे अर्जुन! संताप रहित होकर युद्ध अर्थात कर्म करो। यहाँ युद्ध को कर्म से जोड़ा गया है। युद्ध जब कर्म से जुड़ जाता है तो इसका अर्थ विनाश न होकर सृजन हो जाता है।

शरीर के रोगों का इलाज तो चिकित्सक करता है, परंतु मानव के मन के रोगों का इलाज तो किसी भी चिकित्सक के पास नहीं है। गीता में अर्जुन के मन की व्याधियां कुछ ऐसी ही थी जिसके कारण वह विषादग्रस्त हो गया था। भगवान श्रीकृष्ण ने एक कुशल मनोचिकित्सक के रूप में अज्ञान और मोह में फंसे अर्जुन को मन की विपदा से निकालकर उसे अपने कर्तव्य का बोध कराया। लेकिन इस समय मन के विभिन्न विकारों और व्याधियों से कैसे छुटकारा पाया जाय यह एक बड़ा सवाल है, क्योंकि आज न तो कोई कृष्ण बनने के लिए तैयार है और ना ही कोई अर्जुन। न कोई सुनने वाला है और ना ही कोई सुनानेवाला। इस हौडवादी संस्कृति में कोई किसी का नहीं सुनता है। सभी अपने-अपने उल्लू सीधा करने में लगा हुआ है। फलतः समाज में लूट-पाट, मार-पीट, खून-खराबा छल-कपट, हत्या, अत्याचार, बलात्कार, शोषण आदि बढ़ाता ही जा रहा है। स्वार्थ और अभिमान में लिप्त मानव समाज एक दूसरे के जान के दुश्मन बने हुए हैं। आज पूरे विश्व में जो युद्ध हो रहा है, वह सत्य और असत्य का युद्ध नहीं, बल्कि पूंजी और शक्ति प्रसार का युद्ध है। पूरा विश्व विस्फोटक पदार्थों के ऊपर बैठा है। यहाँ कभी भी विस्फोट हो सकता है और सम्पूर्ण मानव समाज विनष्ट हो सकता है। जरूरत है– समय से पहले सचेतन होने की। आज मानव को गीता के उपदेशों की सख्त जरूरत है। इस रूप में आज भी गीता की प्रासंगिकता बनी हुई है। यदि हम गीता के उपदेशों को आत्मसात कर लें और उसके बताए गए रास्ते का अनुकरण करें तो हमारे समाज की लगभग सारी समस्याओं का समाधान हो सकता है।

गीता एक सार्वभौमिक ग्रंथ है। इसे किसी विशेष धर्म और संप्रदाय के ग्रंथ के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, क्योंकि इस ग्रंथ का संबंध किसी व्यक्ति जाति, धर्म या संप्रदाय से नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानव समाज और मानव जाति से है। यह ग्रंथ सभी प्रकार के वादों से परे है। अर्थात यह ग्रंथ द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, विशुद्धाद्वैत आदि किसी भी वाद को या किसी एक संप्रदाय के किसी एक सिद्धान्त को लेकर नहीं चला है। इसका एक ही लक्ष्य है कि मनुष्य किसी भी वाद, मत या सिद्धान्त को मानने वाला क्यों न हो, प्रत्येक स्थिति में उसका कल्याण हो। इसके दर्शन, सिद्धान्त और उपदेश सम्पूर्ण मानव जाति और समाज के लिए है। यह ग्रंथ अपने आप में किसी विशेष धर्म की व्याख्या नहीं करता है, बल्कि यह तो मानव के चरित्र और प्रवृतियों का विश्लेषण करता है। यह दूसरी बात है कि कुछ स्वार्थी तत्त्व इसका संबंध जाति, धर्म और संप्रदाय से जोड़कर पूरे देश में रायता फैलाने का प्रयास कर रहे हैं।

जबकि गीता की लोकप्रियता इसके महान उपदेश के कारण पूरे विश्व में है। विश्व के लगभग सभी प्रमुख भाषाओं में गीता का अनुवाद हुआ है। विश्व स्तर के आलोचक, दर्शन-शास्त्री, सिद्धांतकार एवं स्तंभकार इस

ग्रंथ में निहित तत्वों एवं तथ्यों पर शोध कार्य कर रहे हैं, इस ग्रंथ के लिए यह बहुत बड़ी बात है। वस्तुतः गीता की प्रासंगिकता कल भी थी, आज भी है और कल भी रहेगी।

❑❑

– डॉ. मकेश्वर रजक
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
मानकर कॉलेज,
मानकर, बर्धमान (प.बं.) 713213
मो. 9332653595

हिन्दू और हिन्दी का प्रचलन

सिन्ध से हिन्द शब्द बना है। सिन्धी भाषा में 'स' को 'ह' बोला जाता है। हिन्द शब्द से हिन्दू शब्द बना अर्थात सिन्ध में रहने वाले। फारसी भाषा में हिन्दू का एक अर्थ गुलाम भी दिया हुआ है। हिन्दू शब्द सबसे पहले अरबों ने प्रयोग किया था अर्थात सन 712 ई. के बाद। इंसाईक्लोपीडिया आफ रिलीजन में ईसा से 5वीं सदी पूर्व भी हिन्द शब्द दिया गया है। हिन्द के लिए सबसे पहले ग्रीक भाषा में 'इंडिया' का प्रयोग हुआ था। इण्डस शब्द से भी इण्डिया बनने की मान्यता है।

बाबर के समकालीन कवि नरसिंह मेव ने मेवाती भाषा में 'हसन खांकीकथा' (काव्य) रची है, जिसका रचना-काल संवत् 1582 (1526 ई.) था। प्रति का लिपिकाल संवत् 1629 वि. था। इस पुस्तक में 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग 3 छन्दों में किया है– *हिन्दू उतरे करत किलोल।/खांकहु भेजे राइहि गोल।।/आइहि गोल अलवर उतरौ।/ देखि खांन मन रंज्यो खरौ।।76।। .... हिन्दू को मनि कुचर कपटी।/ फेरि छानि तिनि औचे धरी।।/ खत्री खडग उधाडै लडै।/ वहसु राणांनकि महि पडै।।119।।* 'हसनखां की कथा' की प्रति टोंक जिले के टोड़ा रायसिंह कस्बे के जैन मंदिर में एक जैन गुटके में से श्री दुर्गाशंकर शर्मा, प्राचार्य ने उपलब्ध की थी। वे अलवर के महताबसिंह नोहरा के निवासी थे– *भली सुमति मेले कहुं चले।/ खुशी खान राणासिंह मिले।।/ 'हिन्दू' तुरक न कीण पिछाणि।/दरमह बैठि राले परवाण।।*

हिन्दू शब्द से पहले धर्म के लिए सनातन धर्म, मानव-धर्म शब्द प्रचलन में थे। श्रीमद्भागवद्गीता में आया है सनातन धर्म शब्द। आर्य शब्द का भी प्रचलन था। भरत खण्ड, भारत राष्ट्र (देश) के लिए प्रयुक्त हुआ। सिन्ध एक प्रांत था जो हिन्द पूरे देश को कहा जाता था। हिन्द में रहने वाले व्यक्ति हिन्दू कहलाये। हिन्दुस्तान में मुसलमानों ने शासन किया था, इस कारण हिन्दू गुलाम कहलाने लगे होंगे। इतिहासविद् डॉ. जगतनारायण श्रीवास्तव ने मुहम्मदबिन कासिम के भारत आगमन के समय से ही हिन्दू शब्द का प्रचलन का विचार व्यक्त किया है। डॉ. सत्येंद्र चौबे और मेरा मत है कि हिन्दू शब्द मोहम्मद गोरी के समय से ठीक प्रकार से प्रचलित हुआ होगा। क्योंकि मुसलमानों में पहला सुल्तान भारत का वही था। महमूद गजनवी तो भारत में लूटमार करके अपने वतन को लौट गया था।

बाद में हिन्दू शब्द धर्म के लिए रूढ़ हो गया। प्राचीन काल में धर्म के अर्थ में सनातन धर्म, आर्य, शैव, वैष्णव, शाक्त, भागवत धर्म नाम प्रचलित थे। किन्तु विदेशी शासकों ने 11वीं शदी के पश्चात हिन्दू शब्द दृढ़ कर दिया। भारतीयों ने भी इस शब्द को शासकों के अनुसार अपना लिया। दि. 24.10.2016 के दैनिक भास्कर में श्री वेदप्रताप वैदिक ने 11-12वीं सदी में हिन्दू शब्द चलना माना है। हिन्द देश में रहने वाले मुसलमान, सिख, ईसाई, बौद्ध, पारसी भी हैं। इस लिए हिन्द में रहने वाले इनको भी व्यापक रूप में हिन्दू कहा जा सकता है।

कवि अमीर खुसरो 13वीं शदी में हुए थे, जिन्होंने हिन्दवी हिन्द की तूती का प्रयोग किया है। अब्दुल फजल ने अकबरनामा में लिखा है– बादशाह का समुन्नत हृदय हिन्दी और फारसी काव्य रचना की ओर आकृष्ट हुआ था और वह कविताओं की विशेषताओं को समझने में एक आलोचक की दृष्टि रखता था। उसने हिन्दी कविता में उच्च भावनाएं व्यक्त की हैं, जो अपने ढंग की अनूठी है।

श्रीरामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में

हिन्दी को आदिकाल की भाषा माना है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. कृष्णलाल हंस एवं डॉ. नगेंद्र ने हिन्दी को आदिकाल की भाषा माना है। डॉ. ग्रियर्सन ने भी आदिकाल की भाषा माना है। आदिकाल के कवि अमीर खुसरो की हिन्दी (खड़ी बोली) का उदाहरण निम्न है–

श्यामवर्ण और दांत अनेक लचकत जैसे नारी/
एक हाथ से खुसरो खींचे, और कहे तू आरी।।

रीतिकालीन कवि राय अमृतराम पालीवाल के काव्य में रखता छन्दों का प्रयोग हुआ है। उनमें सहायक क्रियाएं व कारक हिन्दी की हैं। इनका रचनाकाल संवत 1869 वि. (सन् 1812 ई.) है। उदाहरणार्थ– यह कृष्णचन्द विलास रास, प्रकाश माता है। सो सुनत भव संसार माही, फिर न आता है।।26।।

पंडित राहुल सांकृत्यायन ने तो सरहपा को हिन्दी का पहला कवि माना है। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने भी हिन्दी को आदिकाल की भाषा माना है।

हिन्दू की परिभाषा करते हुए 'स्मृति' में मनु ने कहा है– 'हिंसया दूयते यस्मात् हिन्दूरिसभिंदीयते।' अर्थ- हिन्दू वह है जो हिंसात्मक कर्मो से घृणा करता है अथवा जिसे (हिं) हिंसात्मक कर्म से (दू) दुख होता है, वह हिन्दू है। 'मेरुतंत्र' में भी लिखा है–हीनं च दूषयत्येष हिन्दूरितभिधीयते। हिन्दू वह है जो हीन कर्म को अर्थात नीच कर्म से द्वेष करता है। इसी परिभाषा को और विस्तृत तथा स्पष्ट करते हुए 'रामकोषकार' ने लिखा है– *हिन्दुर्दुष्टो ना भवति ननार्यो न विदूषकः। सद्धर्मपालको विद्वान श्रौत धर्मपरायणः।।* अर्थ–हिन्दू दुष्ट, अनार्य और विदूषक अर्थात द्वेष करने वाला नहीं होता, इसके विपरीत वह सद्धर्म का पालक, विद्वान और श्रुति स्मृति में प्रतिपादित धर्म का आचरण करने वाला होता है। –हेमन्तकवि कोषकार भी 'हिन्दुहिं नारायणादि देवता भक्तः हिन्दू नारायण आदि देवताओं का भक्त होता है। कहकर हिन्दू की महिमा बताता है। अतः हिन्दू दुष्ट और काफिर न होकर आर्य श्रेष्ठ होता है और उसकी संस्कृति आर्य संस्कृति ही है। इस प्रकार हिन्दू संस्कृति, आर्य संस्कृति, भारतीय संस्कृति, वैदिक संस्कृति आदि शब्द परस्पर पर्यायवाची हैं। हिन्दू संस्कृति का एक ही उद्देश्य रहता है– राष्ट्र की एकता। (लोक शिक्षक- म.म.पं. श्री दा. सातवले कर, 30 अगस्त मित. 2018 से साभार)।

❑❑

- डॉ. रामकिशन पोहिया
पूर्व वरिष्ठ शोध अधिकारी-
1502, दीनदयाल नगर, आर.बी.एम. अस्पताल के पीछे, भरतपुर-321001

विश्वशान्ति के प्रेरक स्वामी निश्चलानन्द जी

श्री गोवर्द्धन मठ पुरी के वर्तमान 145वें जगद्गुरु-शंकराचार्य- स्वामी निश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज भारत के एक ऐसे युगपुरुष हैं जिनसे आधुनिक युग में विश्व के सर्वोच्च वैधानिक संगठनों संयुक्त राष्ट्र संघ तथा विश्व बैंक तक ने मार्गदर्शन प्राप्त किया है। संयुक्त राष्ट्रसंघ ने दिनांक 28 से 31 अगस्त 2000 की न्यूयार्क में आयोजित विश्व शांति शिखर सम्मेलन ने उनसे लिखित मार्गदर्शन प्राप्त किया था। 5 मई, 1999 को दिल्ली में विश्व बैंक द्वारा संस्थापित 'वर्ल्ड-फेथ्स-डिवेलपमेंट-डायलॉग' की प्रतिनिधि कु. वेण्डी टाइण्डले ने सांय छह बजे से रात्रि आठ बजे तक स्वस्थ मार्गदर्शन प्राप्त किया। श्रीगोवर्द्धन मठ से संबंधित स्वस्ति प्रकाशन संस्थान द्वारा इसे क्रमशः 'विश्व शांति का सनातन सिद्धांत' तथा 'सुखमय जीवन का सनातन सिद्धांत' शीर्षक से सन् 2000 में पुस्तक रूप में प्रकाशित किया है।

पूज्यपाद-जगदगुरु-शंकराचार्य स्वामी निश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज द्वारा रचित स्वस्तिक गणित, अंकपदीयम, गणितदर्शन, गणितचिन्तामणि नामक ग्रंथ शून्य की भावरूपता के प्रतिपादक हैं। शून्य पर दार्शनिक, वैज्ञानिक और व्यावहारिक धरातल पर

सांगोपांग आश्चर्यचकित करनेवाला चित्रण विश्वस्तर पर अद्‌भुत है। शून्य और एक से सम्बद्ध इन ग्रंथों पर विश्व स्तर के गणितज्ञों का ध्यान केन्द्रित होने लगा है। श्रीस्वामीजी ने श्रीगोवर्द्धनमठपुरी के 143वें श्रीमज्जगद्‌गुरुशंकराचार्य-श्री भारतीकृष्णतीर्थजी के 'वैदिकगणित' की अद्‌भुत व्याख्या वैदिकार्षगणित् के माध्यम से प्रारंभ की है, जो गणितजगत को स्वस्थ दिशा प्रदान करने में असमर्थ है। निश्चित ही विश्व मंच पर वैज्ञानिकों के लिए विभिन्न क्षेत्रों में नए आविष्कारों के लिए नए परिष्कृत मानदंडों की स्थापना करेंगे।

पूज्यपाद जगदगुरु शंकराचार्य स्वामी निश्चलानंद सरस्वतीजी महाराज इस धरा पर वैदिक सिद्धांतों की साक्षात वेदमूर्ति हैं। वैदिक सिद्धांत एक ओर जहां मानव जीवन एवं संपूर्ण जगत को सुखमय, आनंदमय एवं शांतिमय बनाने के लिए प्रत्येक मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु भोजन विज्ञान, वस्त्र विज्ञान, आवास विज्ञान, रक्षा विज्ञान, न्याय विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान, विवाह विज्ञान, पर्व विज्ञान, परिवहन विज्ञान आदि समस्त विधाओं का दार्शनिक, वैज्ञानिक एवं व्यवहारिक ज्ञान देते हैं वहीं दूसरी ओर वे मानव जीवन के मूल लक्ष्य एवं एसकी सार्थकता जो ईश्वर तत्व के निकट होने और उसे प्राप्त करने में निहित हैं, का आध्यात्मिक मार्ग भी प्रशस्त करते हैं।

अपनी भूमिका से भारतवर्ष को पुनः विश्वगुरु के रूप में उभारने वाले पूज्यपाद जगदगुरु शंकराचार्य स्वामी निश्चलानंद सरस्वती जी महाराज का जन्म बिहार प्रांत के मिथिलांचल में दरभंगा (वर्तमान में मधुबनी) जिले के हरिपुर बख्शीटोल नामक गांव में आषाढ़ कृष्ण त्रयोदशी, बुधवार रोहिणी नक्षत्र, विक्रम संवत 2000 तदानुसार दिनांक 30 जून ई. सन् 1943 को हुआ। देश-विदेश में उनके अनुयायी उनका प्राकट्य दिवस उमंग व उत्साहपूर्वक मनाते हैं। आपके पूज्य पिताजी पं. श्री लालवंशी झा क्षोत्रिय कुलभूषण दरभंगा नरेश के राज पंडित थे। आपकी माताजी का नाम गीता देवी था। आपके बचपन का नाम नीलाम्बर था।

पांच वर्ष की शैशव अवस्था में ही आपको अमृत स्वरुप मृत्युंजय होने का अपूर्व बोध हुआ था। मात्र ढाई वर्ष की बाल्यावस्था में आपको श्रीराधाकृष्ण का परम् अनुग्रह प्राप्त हुआ था। सोलह वर्ष की उम्र में वे अपने गृह ग्राम में संग्रहणी के कारण मरणासन्न हो गये थे। तब जीवन से निराशा होकर एक दिन संध्या के समय थके-मांदे अपने आम के बगीचे में जाकर पिताजी की समाधि पर दण्ड वत प्रार्थना की- 'यह शरीर इसी समय यहीं शव को जाय या स्वस्थ हो जाय'। कुछ ही क्षणों में किसी दिव्य शक्ति ने वेगपूर्वक आपको उठा दिया। उठते ही आपका ध्यान नभोमण्डल की ओर आकृष्ट हुआ, जहां श्वेत वस्त्र और पगड़ी धारण किये हुए गोलाकार पद्मासन पर बैठे दस हजार पितरों का दर्शन हुआ, पितरों की दिव्य शक्ति एवं अनुग्रह से तत्काल संग्रहणी दूर हुई और वे स्वस्थ हो गये।

आपकी प्रारंभिक शिक्षा बिहार और दिल्ली में संपन्न हुई है। दसवीं तक आप बिहार में विज्ञान के विद्यार्थी रहे। दो वर्षों तक तिब्बिया कॉलेज दिल्ली में अपने अग्रज डॉ. शुक्रदेव झा की छत्रछाया में शिक्षा ग्रहण की। पढ़ाई के साथ-साथ कुश्ती, कबड्डी और तैरने में अभिरुचि के अलावा आप फुटबाल के भी अच्छे खिलाड़ी थे। बिहार और दिल्ली में आप छात्र संघ विद्यार्थी परिषद के उपाध्यक्ष और महामंत्री भी रहे। दिल्ली में आपकी साधना आपके एक अन्य अग्रज पं. श्री श्रीदेव झा के मार्गदर्शन में संपन्न हुई। एक वर्ष में आपने बावन तंत्र ग्रंथों का अध्ययन किया तथा इष्टदेवी अन्नपूर्णा की तत्वबोधार्थ उपासना की। दिल्ली में तिब्बिया कॉलेज डी-8 ब्लॉक के ऊपर कक्षा में रहते हुए आपने भगवद्‌गीता का अध्ययन और ध्यान योग शुभारंभ किया। भगवत्कृपा से मिथिलांचल में प्रारंभ योग साधना यहां पूर्ण हुई तथा भुवन भास्कर भवभयकारक योगिवृंद से दुर्लभ तत्वबोध सुलभ हुआ।

अपने अग्रज पं. श्रीदेव झा की प्रेरणा से आपने दिल्ली में सर्व वेद शाखा सम्मेलन के अवसर पर पूज्यपाद धर्म सम्राट स्वामी करपात्रीजी महाराज एवं श्री ज्योतिर्मठ बदरिकाश्रम के पीठाधीश्वर पूज्यपाद जगदगुरु शंकराचार्य स्वामी श्री कृष्णबोधायजी महाराज का दर्शन प्राप्त किया। इस अवसर पर उन्होंने पूज्य करपात्रीजी महाराज को हृदय से अपना गुरुदेव मान लिया। तिब्बिया

कॉलेज में जब आपकी सन्यास की भावना अत्यंत तीव्र होने लगी तब वे बिना किसी को बताये काशी के लिए पैदल ही चल पड़े। इसके उपरांत आपने काशी, वृन्दावन, नैमिषारण्य, बदरिकाश्रम, ऋषिकेश, हरिद्वार, पुरी, श्रृंगेरी आदि प्रमुख धर्म स्थानों में रहकर वेद-वेदांग आदि का गहन अध्ययन किया। नैमिषारण्य के पूज्य स्वामी श्री नारदानंद सरस्वतीजी ने अपना नाम 'ध्रुवचैतन्य' रखा। आपने 7 नवम्बर 1966 को दिल्ली में देश के अनेक वरिष्ट संत- महात्माओं एवं गौ भक्तों के साथ गौ रक्षा आंदोलन में भाग लिया। इस पर उन्हें 9 नवम्बर को बंदी बनाकर 52 दिनों तक तिहाड़ जेल में रखा गया।

वैशाख कृष्ण एकादशी गुरुवार विक्रम संवत् 2031 तदनुसार दिनांक 18 अप्रैल सन् 1974 को हरिद्वार में आपका लगभग 31 वर्ष की आयु में पूज्यपाद धर्म सम्राट स्वामी परपात्री जी महाराज के करकमलों से सन्यास हुआ और उन्होंने आपका नाम 'निश्चलानन्द सरस्वती' रखा। श्री गोवर्द्धनमठ पुरी के 144वें शंकराचार्य पूज्यपाद स्वामी निरन्जनदेव तीर्थ जी महाराज ने स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती को अपना उपयुक्त उत्तराधिकारी मानकर माघ शुक्ल षष्ठी रविवार वि. संवत् 2048 तदनुसार दिनांक 9 फरवरी सन् 1992 को उन्हें अपने करकमलों से गोवर्द्धनमठ पुरी के 145वें शंकराचार्य पद पर पदासीन किया। 'शंकराचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के तुरंत बाद आपने अन्यों के हित का ध्यान रखते हुए हिन्दुओं के अस्तित्व और आदर्श की रक्षा, देश की सुरक्षा और अखण्डता' के उद्देश्य से प्रामाणित और समस्त आचार्यों को एक मंच पर लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए राष्ट्र रक्षा के इस अभियान को अखिल भारतीय स्वरुप प्रदान कराने की दिशा में अपने प्रयास आरंभ कर दिए। पूज्यपाद की भावना है कि भारत सरकार भगवान श्रीराम द्वारा निर्मित सेतुबंध रामेश्वरम को 'विश्व धरोहर' घोषित कर इस पर वैज्ञानिक शोध की व्यवस्था करे ताकि एक ओर भारत के पुरातन-ज्ञान-विज्ञान को विश्व में पुनः प्रतिष्ठित किया जा सकें वही आधुनिक विज्ञान भी इससे लाभांवित हो।

राष्ट्र रक्षा की अपनी राष्ट्र-व्यापी योजना को मूर्तरुप दिलाने हेतु उन्होंने देश के प्रबुद्ध नागरिकों के लिए 'पीठ परिषद' और उसके अंतर्गत युवकों की 'आदित्य वाहिनी' तथा मातृ शक्ति के लिए 'आनंद वाहिनी' के नाम से एक संगठनात्मक परियोजना तैयार की। इसमें बालकों के लिए 'बाल आदित्य वाहिनी' एवं बालिकाओं हेतु 'आनंद वाहिनी' की व्यवस्था भी की गई। पूज्यपाद जगदगुरु शंचराचार्य स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती जी महाराज ने चैत्र शुक्ल नवमी शनिवार विक्रम संवत् 2046 तदनुसार दिनांक 4 अप्रैल सन् 1992 को रामनवमी के शुभ दिन पर श्री गोवर्द्धनपुरी में 'पीठ परिषद' और उसके अंतर्गत 'आदित्य वाहिनी' एवं 'आनन्द वाहिनी' का शुभारंभ करवाया।

पूज्यपाद महाराज श्री का अभियान मानवमात्र को सुबुद्ध, सत्यसहिष्णु और स्वावलंबी बनाना है। उनका प्रयास है कि पार्टी और पंथ में विभक्त राष्ट्र को सार्वभौम सनातन सिद्धांतों के प्रति दार्शनिक, वैज्ञानिक और व्यवहारिक धरातल पर आस्थान्वित कराने का मार्ग प्रशस्त हो। उनका ध्येय है कि सत्तालोलुपता और अदूरदर्शिता के वशीभूत राजनेताओं की चपेट से देश को मुक्त कराया जाय। बड़े भाग्यशाली हैं वे लोग जिन्हें विश्व के सर्वोच्च ज्ञानी एवं शांति के प्रेरक स्तंभ के रूप में प्रतिष्ठित इन महात्मा द्वारा चलाये जा रहे अभियान में सहभागी बनने और जिम्मदारी निभाने का सुअवसर मिला हुआ है। परमपूज्य गुरुदेव के चरणों में कोटिशः नमन।

❑❑

ब्रह्चारी निर्विकल्पानन्द सरस्वतीजी महाराज
(निज सचिव) के मुखारविन्द से।
प्रोस्तोता
शंकरलाल सोमानी

स्वत्वाधिकारी भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता के लिए सचिव शंकरलाल सोमानी द्वारा कल्याणी प्रिंटर्स, अलखसागर रोड, बीकानेर के लिए कंप्यूटर-एन-मीडिया, 25ए, सी. आर. एवेन्यू, कोलकाता-72 में मुद्रित एवं भारतीय विद्या मंदिर से प्रकाशित। संपादक- डॉ. बाबूलाल शर्मा।

भारतीय विद्या मंदिर द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

मरुधरा के मोती
पुष्पा गोस्वामी
मूल्य 2250/- पृ.सं. 140

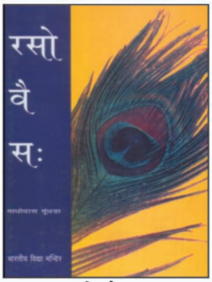

रसो वै सः
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 150/- पृ.सं. 165

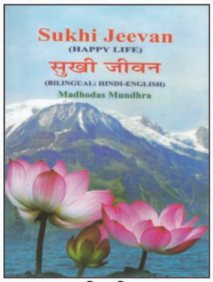

सुखी जीवन
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 275/- पृ. सं. 216

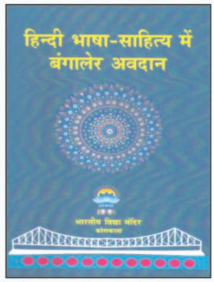

हिन्दी भाषा-साहित्य में बंगालेर अवदान
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 800/- पृ. सं. 352

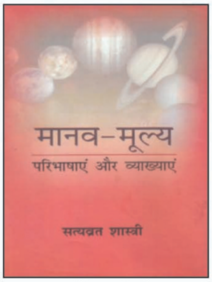

मानव मूल्य परिभाषाएं और व्याख्याएं
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 550/- पृ. सं. 304

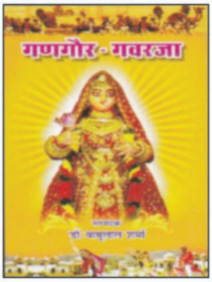

गणगौर-गवरजा
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 400/- पृ. सं. 264

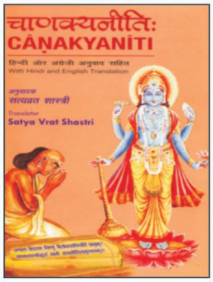

चाणक्यनीतिः
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 295/- पृ.सं. 194

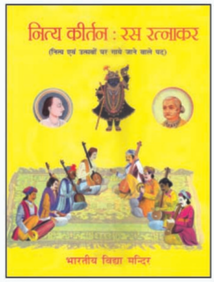

नित्य कीर्तन : रस रत्नाकर
मूल्य 900/-

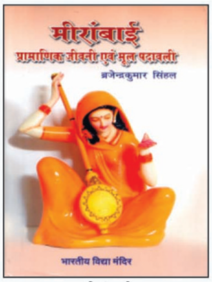

मीरांबाई
प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली
संपा. ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल
मूल्य 900/- पृ.सं. 584

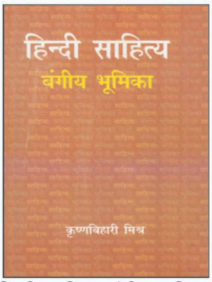

हिन्दी साहित्य बंगीय भूमिका
कृष्णबिहारी मिश्र
मूल्य 750/- पृ.सं. 551

श्रीरामकथा की कथा (प्रथम खण्ड)
आचार्य सोहनलाल रामरंग
मूल्य 600/- पृ. सं. 379

प्राचीन राजस्थान में वैष्णव धर्म
डॉ. सतीश कुमार त्रिगुणायत
मूल्य 550/- पृ. सं. 287

विश्व की कालयात्रा
डॉ. वासुदेव पोद्दार
मूल्य 700/- पृ. सं. 409

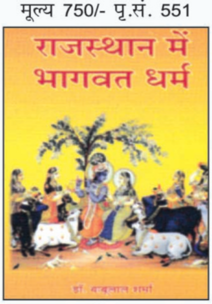

राजस्थान में भागवत धर्म
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 900/- पृ. सं. 468

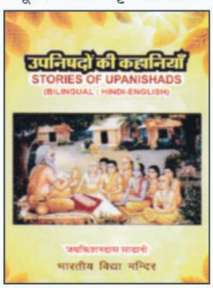

उपनिषदों की कहानियाँ
जयकिशन दास सदानी
मूल्य 400/- पृ. सं. 208

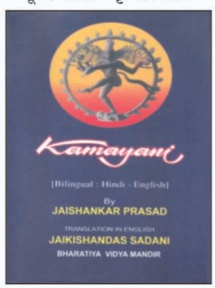

Kamayani
Tr. Jaikishandas Sadani
Price : Rs. 900/- Pages : 477

पुस्तकादेश हेतु संपर्क करें

शंकरलाल सोमानी, सिम्पलेक्स हाउस, 27, शेक्सपीयर सरणी, कोलकाता-700 017 मोबाइल : 09830559364 ई-मेल : shankar.somani@simplexinfra.com

VAICHARIKI Bi-Monthly • ₹50/- May-June 2025 R.N.I. No. 22298/71

From
BHARATIYA VIDYA MANDIR
12/1, Nellie Sengupta Sarani
Kolkata - 700087 *(W.B.)*

TO

डा. बी. डी. मूंधड़ाजी को पुष्प माला पहनाकर आशीर्वाद देते हुए निर्वाण पीठाधीश्वर आचार्य महामंडलेश्वर राजगुरु (बीकानेर) स्वामी विशोकानंदजी भारती महाराज।

डा. बी. डी. मूंधड़ाजी को साहित्यिक ग्रंथ भेंट करते हुए निर्वाण पीठाधीश्वर आचार्य महामंडलेश्वर राजगुरु (बीकानेर) स्वामी विशोकानंदजी भारती महाराज।

बीकानेर में भामाशाह श्री पूनमचंदजी राठी द्वारा राजकीय बालिका सैनिक विद्यालय के निर्माण हेतु करीब 150 करोड़ की भूमि भवन के लोकापर्ण कार्यक्रम में अध्यक्षता करते हुए दाहिने से डा. बी.डी. मूंधड़ा, श्री पूनमचंदजी राठी, अर्जुन रामजी मेघवाल, कानून मंत्री भारत सरकार एवं श्री मदनजी दिलावर, शिक्षा मंत्री राजस्थान सरकार परिलक्षित हैं।

भारतीय संस्कृति संसद पुस्तकालय में निर्वाण पीठाधीश्वर आचार्य महामंडलेश्वर राजगुरु (बीकानेर) स्वामी विशोकानंदजी भारती महाराज से सनातन संस्कृति पर विचार-विमर्श करते हुए अध्यक्ष डा. बी.डी. मूंधड़ा, श्री कुंजबिहारी अग्रवाल एवं शंकरलाल सोमानी सचिव, भारतीय विद्या मंदिर।

भारतीय संस्कृति संसद सभागार में श्रावण माह के अवसर पर श्रृंगी द्वारा दुध से रुद्राभिषेक करते हुए अध्यक्ष डा. बी.डी. मूंधड़ा एवं श्रीमती यमुना मूंधड़ा एवं उपाध्यक्ष श्री विजय झुनझुनवाला, डा. तारा दुगड़ एवं श्री शंकरलाल सोमानी।

भारतीय संस्कृति संसद सभागार में रुद्राभिषेक के पश्चात् बाबा महाकालेश्वर के श्रृंगार स्वरूप का दर्शन करते हुए दायें से आचार्य राकेश कुमार पाण्डेय, डा. बी.डी. मूंधड़ा, डा. बाबूलाल शर्मा एवं श्रीशंकरलाल सोमानी परिलक्षित हैं।